१८ श्राहु कर्म में योग्य (श्रिपिकारी) छीर श्रयोग्य (श्रनिधकारी) ब्राष्ट्रमणों का निर्णय छीर श्राहु भोका तथा कर्ता की श्राहु दिन में श्रवश्य ग्रास्त्रोक्त नियम से रहने की विधि॥ प्य १९ किल्युगर्ने समयानुकूल श्राहुदि कर्मकैयोग्य

सालयुगम समयानुकूल आहाद कमक्याय्य स्रापत्र आस्मर्थों का अत्युक्तम निर्णय । ८२ ८९ समयानुकूल स्रापत्र आस्मर्थ के न मि-काने में, आपत्ति काल में तथा तमाम दरिद्रता यानी कंगालयने की हालत में भी गीक आहु करने की अत्यन्त आ-सम्प्रम अध्याय में ॥ १ भिय आर्य्य समाजी महायगों से आहु

विषयक ३० तीस प्रश्नों का सभ्यता पूर्वक सप्रमास युक्तियुक्त शीघ्र २ उत्तर निस्तृते के लिये प्रार्थना। १०२

नम्रतया सूचना !

मेरे क्रिय सभ्यगलों को नखता से सूबित किया जाता है कि मेरी जन्म भूमिसिन्धु देश होने के कारण मेरा हिंदी भाषा लिखने का ऐसा सरल अभ्यास नहीं है इस लिये क दाचित कहीं हिन्दी लिखने में अक्षर-सब्द-या भाषा शैली

११५

की गलती मालून हो जाय तो लवा करके शमा करें श्रीर हम वृत्ति से इस पुस्तक में सेतन्त्र रूप दूध को ही ग्रहण करें भवदीय लवाभिलायी—गीकुलवन्द्र ॥ यह पुस्तक सनातनधर्मेमएडल करांची की सहायतार्थ-)।

यह पुस्तक सनातनधमनरडल कराचा का सहायताय") पांच पैसा धर्मार्थ लेकर विना मूल्य दिया जाता है॥



त्रत्पुरुपाय विद्महे 'त्रकृतुग्रहाय घीमहि, तन्नी दन्तिः प्रचीद्गात् ॥ कृ० गजु० आरुप्यक प्र० १० अनु० ५ ॥ स्रीगणेशायनमः । स्रीविद्रीतृरायनमः ॥ स्रीविद्रानाशायनमः ॥

॥ भूमिका ॥

मिय पाठक वृन्द ! ध्यान में रहे कि इस ह-मारे मनातनधर्म के विरोधी वितर्दावादी दुरा-ग्रही अशास्त्रीय सम्प्रदाय के जन पूर्वकाल से चले श्राते हैं और अपनी माया रूपी बंचना शक्ति से उक्त धर्म के प्रबंधों को अपत्य मानकर अनेक प्र-कारं के उपद्रवीं से झाझानत [पीड़ित] करते र-हते हैं परन्तु उन पद्मपातियों के विधातों से यह मनातन धर्म ऋद्यावधि सनविच्छन्न समिद्रन्थ सु-वर्ण की न्यांई अपनी कीर्ति रूप निर्मल कान्ति मे प्रकाशवान् ही रहा, प्रत्युत वेही द्वे पी निर्मूल हुए। सीर समय २ के अनुसार अनेक मत तथा पंच जो श्रुति स्मृति विरुद्ध प्रचरित हुये वे भी घोर रजनी में खद्योत (खुय् खुबीरे) के तुल्य अपना चम-त्कार चमकाय झणिक ख्रंधकारके गाय ही लय हो

गये। अब इस वर्तमान काल में आधुनिक नविध-िमत प्**वक जन समाजी माई** जिन्हों की बुद्धि में विपरीत भावका खानेश हो रहा है वे सनातनधर्म निवंध ग्रंथ कृत्य रीतियों की केवल कल्पित मान-कर अपनी प्रमत्त उक्ति युक्ति कपोश करपना की सत्य मान रहे हैं, खीर शास्त्र विरोधी जनों के मि-य्या प्रलाप क्रुष्ट निवंधों को सार्चक मानकर प्रत्यय कर बैठे हैं, प्रत्युत उन्हीं अघटित घटनाः प्रंपञ्च निबन्धों को वार २ मुद्रायन्त्रों द्वारा प्रवर्तन कर रहे हैं तथा यत्र निबद्ध रिशों ने देश दिया वा नि-इत्तर किया उन पंक्तियों की छोड़ंकर[ी] स्वकल्पित उक्ति युक्ति स्वापित कर रहे हैं। महा घोक हैं? कि इसी सनातन धर्मावलिवंदी के वंश में उत्पन्न होकर प्रथम अपने ही चनातर्न धर्म रूपी वन की व्यर्थ वितंडा वान्जाल फुठार में छैदन कर रहे हैं? सीर पूर्व ग्रंथ कर्ता चिपिगण तथा निज पूर्वज आं-चार्यों को ग्रल्पन्न मानकर अपने ही विशिष्ट वृद्धीं का उपहान कर रहे हैं। वद्यपि अनेक वार मत्येक मनातनधर्म सभागीं से ये वितंडावादीं निरुत्तर हों चुके हैं तथापि-"जानत हैं बूभत नहीं लानत ऐसी जिन्द। तुलवी इच गंगारको हुता मोतिवा विंद" इत्यादि केवल हठ मात्र स्वित होकर अनिभन्न मा-धारण जन समूह को सन्नार्ग से च्युत करने की

कोशिश कर रहे हैं को अब इन्होंके अस्विर जुनर्क

(3) ह्म वाग्जील को शुति स्मृति स्रादि धर्म शास्त्रींके प्रवल प्रमास प्रीर प्रकाटन युक्ति युक्त इस "ग्रा-द्ध पितृमीमांमा" नाम पुस्तक रूप वजू से निर्मूल

क्षेद्रन करने के लिये श्रीमान् सचिय कुल भूपण स-द्धमी प्रचारोत्साही उदार चित्त सेठ जी पते निज प्रेम पूरित प्रवंध करने में कोटिशः धन्यवाद देकर १ * गुप्त नाम में चन्मान पत्र अर्पच किया जाताहै। स्त्मानपत्रम् ॥

सुटुर्ममार्गं परिपोपविधावतन्द्रः । ठहु। ब्रजाऽधिपति किश्चत् क्षत्रिवीरः ॥ सत् श्राहु मण्डन मकार यदाज्ञ्यादः।

सच्छास्त्रसिद्धनयसंहतसर्ववादः ॥१॥ अर्थात-प्रेष्ठ धर्म मार्ग के पालन विधिमें आ-

लस्य रहित "ठहा" नाम ब्रजके अधिपति खिंक्कुल में बीर किसी एक पुरुष ने पूर्ण प्रेम से, सम्पूर्ण कु-तर्की के निवारण करने वाले ग्रेष्ट ग्रास्त्रों से विद्व किये गये बुक्तियुक्त इस "श्राह्-पितृ-मीमांबा" नाम पुस्तक के रचनार्च (सर्वीपकार होने में) ला-

चा की पाश सी- श्वास क्षेत्रय सीर चेठ जी ने ऐसे परमार्थ कर छ। क्षम दान में अथना नाम प्रसिद्ध (प्रगट) न कराने में पूर्ण

उदारता दिखलाई है, आर्थात् "गुप्तदान महापुराण का डी अनुमृत्या किया है। इन लिये बेठ जी के कहे अनुवार नाम प्रगट नहीं किया गया है।

दुस्तर्कमानव पराकृतशास्त्रसिद्धश्राद्वप्रयोग सम नुष्टितसिद्धिसाधुम्। संदर्भमेतदखिलंरचयामिनूनं ठठ्ठाव्रजाधिपतिक्षत्रिवरेणयुक्तः ॥२॥

शास्त्र विरुद्ध खोटे तर्क करने वाले मनुष्यों से हूर किये गये जो वेदादि ग्रेष्ठ शास्त्र सिद्ध "श्राह्म कर्म प्रयोग" उन के अनुष्ठान को पुनः चिद्ध

करने वाले इस संदर्भ अर्थात् व्याख्यान रूप लघ् यन्य को ठठठा नाम बजके । अधिपति श्रेष्ठ सविय की आज्ञा से निश्चय पूर्वक रचता हूं * ॥२॥ सो यह-

"ठठ्ठाव्रजस्थितसुधर्म समास्यंसम्य-विप्रेणवीरभानवात्मज तद्विलेखि ॥ श्राह्वीयकर्मणि कुतर्किकृतानुयोग-स्तस्योत्तरभवतु आस्तिकवर्यतुष्ट्यै" ॥३॥

ठठठा नाम ब्रजमें स्थित ,सनातन धर्म सभाके संरक्षक सभ्य श्रीवर पं० वीरभानु शर्मात्मज श्री-स्मण करके लिखा गया (ब्राह्म कर्ममें सुतर्कि लोगों * यदापि मेरे प्रिय सिंधी श्वाताओं की शुगनता से स-

गफने के कारण यह पुस्तक मैंने सिंधी भाषा में ही रचा या विषकी सूचना मेरे बनाये "आधुनिक महर्पिकी पोल और "येद संज्ञा विचार" इन दोनों ट्रैक्टों से पिछारी में छपाई गई घी परन्तु यन्त्रालय वालों से सिंधी भाषा की भाषा शै-सी ठीक पुढ़ न छाप सकते के कारण पुनः ग्रह हिन्ही में ही

होना ठीक धमफ कर दिन्दी में छपाया गया है इस लिये मेरे सिंधी भाई मुक्ते चना करें।।

में किये गये मिण्या कुतकों का) सत्य समाधान रूप उत्तर श्रास्तिक जनों के प्रसन्नतार्थ होय ॥ ३ ॥ हे श्रीमान् ! श्राप सनातनधर्म एसक के कर कमलों में श्रीनंदनन्दन के प्रसाद रूप, तथा श्राशी-र्वाद की कुसुमाञ्जली रूप यह ''श्राद्ध पितृ मीगांसा' नामक ग्रन्थ श्रापित है। जैसा है श्राप का है लीजिये ॥ श्रानिएस्तु ! आरोजनस्तु !! आयुव्यनस्त !!!

तदीय सार्वदिक गुभचिन्तक गोकुलचन्द्र।



ม 🧙 ม

उत्तिष्ठतजाग्रत प्राप्यवरान्निवोधत ॥ नहिसत्यात्परोधर्मी नाऽनृतात्पातकंपरम्॥

सत्यमेव जयतिनाऽनृतम् ॥

"एकं विवेकं नुमः"

॥ प्रार्थना ॥

जीइम् नमेः श्रीराम्बसदा शिवाय ॥ जीइम् सहनाबीबतुसहनी युनक्तुसहवीर्थकरबाबहै। तेजस्विनावधीतमस्तु माविद्विपाबहै ॥ १॥

ॐ स्रुतिनिर्गाद्दतधर्माकः स्मृतिगतधर्मार णोद्यःशस्वत् । पौराणिकधर्मोढः पाखण्डध्या न्तनाशनीजयत् ॥२॥

शुक्कांब्रह्मविचारसारपरमामाद्यांजगद्वव्या-पिनीम् । वीणापुरुतकचारिणीमभवदांजाड्याः ऽन्धकोरापहास् ॥ हस्तेरफाटिकमालिकां विद्-धतींपद्वमासने संस्थिताम् । वस्देतांपरमेश्वरी-

दोहा धन बीवन उड जांबने, जैसे उड़त कपूर। मन मृत्य गोविन्द भज क्यों चाटे जगधा।

म्भगवतीं वृद्धिप्रदांशारदाम् ॥ ३॥

(c) सभयो ! आज में आप महोदयों के सन्मुख शास्त्रोक्त क्राद्ध कर्म पर विचार करने के निमित्त उपस्थित हुआ हूं। आप इस बातको उत्तमता से जानते हो कि मैं न कोई ऐसा व्याख्यान दाता हूं फ़ीर न महामहीपाध्याय हूं तथान कदापि इस कार्य को पूर्णतया करने में समर्थ हूं, परन्तु आप धर्म वीरों के उत्साह और [परब्रह्म सञ्चिदानन्द कंद श्रीकृष्णचन्द्र जी की सहायतासे साधारण शास्तिक जनों के सदेह निवृत्त्यर्थ धर्मरक्षक कतिपय क्षत्रिय-वरों की आजाको शिरोधार्य करके, अपना ही क-र्तव्य समभ कर प्रश्न-उत्तर रूप में विविध गहन सं-

देहोंके निर्मल करने वाले इस "त्राद्ध पितृ मीमांसा" नाम ग्रंथ को ग्रीसद्गुर निखिल शास्त्र निष्णात [ग्रीबालराम जी] (उदासीन) एवं विद्यावाच-स्पति विद्वद्वर पं० [थी भीमचेन धर्मा जी] धास्त्री विद्यावारिधि विद्वद्वर पण्डित [श्री ज्वालामसा-

द जी] मिग्र तथा कूर्मचिल भूषण अपिकुल सं-स्यापक वाग्मिवर पंडित [श्री दुर्गादत्त पन्त जी] मादि महामहोपदेशकों की पूर्ण कृपाचे एवं उन्हों के युक्ति युक्त विद्धान्तानुसार अलंकृत करके आप धर्म रक्षकों के फर कमलों में प्रेम से खर्पण किया

जाता है आया है कि हर्ष पूर्वक इस रत्नकी आदि से जन्त तक ज़बश्य देखकर (पढ़कर) सद्वर्म पूर्ण लाभ लेकर दीन की कृत कृत्य करेंगे। प्रार्थी-गोकुछचन्द्र शर्मा ।

11 350 11

नमोऽन्तर्यामिणे अथ श्राद्धपितृमीमांसा ।

प्रथमोऽध्यायः ।

"धर्मे शिक्षासमानानां प्रसासं परमं श्रुति." सनुव ॥ प्रश्नकर्ता समाजी महाशय और

समाजी-ग्री परिडत जी महाराज ! द्यापाले मेरे इस संदेह का निवारण करी कि "ब्राह्म" क्या है ? अर्थात् ब्राह्स किस-कर्मका नाम है और इस का रहस्य क्या है ?

उत्तरदाता सनातनी पण्डित

मनातनी-महाशय जी ! आप यदि सनातन एवं वेदोक्त ग्राह्म समझने की सञ्ची श्रमिलापा क-रते हो तो मैं आप को प्रवल प्रमाण एव अकाटण

युक्तियों से श्रेष्ठ शास्त्रोक्त श्राद्ध का भावार्थ और उनका रहस्य भी सुनाना चाहता हूं। जिसको सु-नकर् और पूर्णतया समक्षकर तथा अपने अन्य मित्र समाजी भाइयों को भी समफाकर इस ग्राह्म कर्म [वितृयद्य] का घास्त्रानुकूल ग्रद्धा से अनु-ष्ठान करके सद्धर्भ एवं नील का पूर्ण २ लाभ लेकर

दुर्लभ इस मनुष्य देह की साफल्य करें, यही मेरी दूढ़ आया है। अर्थतन्मनु:--(श्राहुमिति शब्दो बाच-को यम्य तत्कर्म श्राद्वशब्दम् इति-मदनपारि

जात:) श्राद्व शब्दं कर्म प्रोत्राच प्रजानिःश्रे यसार्थं तत्र पितरो देवता ब्राह्मणस्त्वाहवनीया-र्थे मासि मासि कार्य मपरपक्षस्याऽपरोह्णः श्रेयान्। [।] इत्यादि स्नापस्तम्बीय मनु सम्मत वचनों से मृत पितरों के निमित्त पितृ देवों के पूजनार्य होम, पिण्डदान मादि बाह्यण भोजन रूप जो सत्कर्म, यही शास्त्रोक्त ब्राद्ध शब्दका मुख्य भावार्थ है। तात्पर्य यह कि प्रजाके कल्याणार्थ वेदार्थ जाता श्री महर्षि मनु महाराजने एक ऐसे शुभ कर्मका उ-पदेश किया है कि जिसका नाम "श्राद्ध" वा "पि-तृयज्ञ" है। सो जिसे देवयज्ञ में बन्द्रादि देवताओं का पूजन सत्कार होता है और आहवनीय अग्नि

उन के तृष्ट्यर्थ होन का आधार है-तमें इस पितृ यद्म में पितर देवों का पूजन मत्कार और हन्होंके तृष्ट्यर्थ होन का आधार अग्नि के जगह ब्राह्मणों का मुख है। यह कर्म महीने २ करना चाहिये और इस कर्म के अनुष्ठान में कृष्णपद्म का अपराह्न (म-

ध्यान्ह) काल अत्यन्त श्रेष्ठ है। तथा- "अपर पक्षे आहं कुर्वीत" दित कातीयश्राह्म चे। कातीय श्राह्म कुर्वीत" दिति कातीयश्राह्म चे। कातीय श्राह्म कुर्वी कहा है कि कुन्णपत्त में श्राह्म करे। तथा श्रातप्य श्राह्मण में लिखा है कि जिस दिन न पूर्व में श्रीर न पश्चिम में चन्द्रमा दीखे उसी दिन पि॰ तरों के निमित्त पिण्डदान करे। एवं—

"अमावास्यायां यदहश्चन्द्रमसं न पश्यन्ति तदहः पिण्डपित्यज्ञं कुरुते"॥

आपस्तम्बीय श्रीत सूत्र तथा कात्यायन श्रीत सूत्र १।१।१---प्रथम प्रश्न, तृ० परल ७ क्० ॥

"अपराह्मी पिगडपित्यज्ञश्चन्द्राऽदर्शनेऽमा-वास्याम्"।

अर्थात्-दो महरों के वाद जिस दिन चन्द्रमा देखने में न खावे, उस ख्रमावास्या में पिएड पितृ यज्ञ करे। मयोजन यह कि विवाह ख़ौर यज्ञोप-वीतादि के तुल्य एक खास कर्म का नाम "श्राद्ध" वा पितृयस है। इसी ब्राद्ध में जो जो कृत्य जिस

२ प्रकार करना चाहिये और इस ग्राद्ध के जितने .प्रवान्तर भेद हैं वे सब ज़ुति स्मृति जीत गृह्मसूच फ़्रीर इतिहास पुराणादि में ख़ित प्राचीन समय से

विस्तार पूर्वक लिखे हुए हैं जिन्हों के अनुसार अ-मादि काल से पद्धतियां भी चली खाती हैं। जिस कृत्य में अद्युपर्यन्त किसी भी आस्तिक को कदापि मंदेह महीं होता कि श्राद्ध किसको कहते हैं ? परन्तु श्रव अनुमान ३० वर्षों से किन्हीं श्रासुरी सम्प्रदायों के मन्दरों ने स्वधर्म मर्माउनिभन्न स्वयं भी धर्म से

च्यत स्त्रीर सन्य सास्तिक साधारण जन समृह की भी कलिकालके प्रभाव से अधीगति में पहुंचाने के

लिये प्रत्यक्ष नेवीमें धूलफॉकते हुए केवल धींगा धींगी

(१२)

से यह प्रकट किया है कि जीवित माता पिता की सेवा करने का नाम ब्राह्म है। परन्तु इसके लिये लेख प्रमाण वा प्रवल युक्ति इन्हों के पास कोई नहीं। सो अव यह कटता भी जाता है। सारांग्र यह है कि जेसे विवाह यद्योपवीतादि एक २ विग्रेष विधिषहित्त कर्म के नाम हैं वैसे ही ब्राह्म-भी एक कर्म का नाम हें-ख़ौर जो (ब्रह्म्या क्रियते तच्छ्राह्म) अहासे किया जाय वह ब्राह्म हैं " ऐसा अर्थ करके समाजी लींग ब्राह्म को यौगिक मानते हैं वे लोग यह तो

यंदि समाजीत्मव व्याख्यानादि सभी काम श्रद्धा से करते हैं तो तुम्हारे सभी कामों का नाम श्राद्ध ही गया फिर यह क्यों कहते ही कि, जीवित माता पिता की सेवा का नाम श्राद्ध हैं"। क्या मद्य, मंस खाने पीने वाले श्रार्थ समाजियों का मांस मद्य खाना पीना श्रादि काम तुम्हारे मत में श्राद्ध नहीं हैं ? क्या उन कामों को वे श्रश्रद्धा से करते हैं ? तथा यदि कोई शां० समाजी महाश्रय किसी, समय

बतावें कि वे अग्रद्धां अपने कीन र काम करते हैं?

मारव्ध कर्मानु चार रोग ग्रमित हो जाय तो फिर जय यह महाग्रय अपने रोग के गान्त्यर्च द्वा औ-पध) वा लन्य कोई उपाय करें तो क्या वो अथ-द्धा में करेगा ? क्या अपने शरीर के आरोग्यतार्थ उपाय करने में उचको यद्धा मेम न होगा ? अर्घात् यह रोगी चमाजी अयश्य ही ब्रद्धा ने अपने शरीर श्रद्धा प्रेम से किये हुये उस उपाय को भी "श्राद्ध" कहना पड़ेगा। क्योंकि उसने श्रद्धा में उपाय किया

एवं आ० समाजी अपने शरीर पोपणार्थ जो भोज-न करते हैं- मो वह क्या अग्रद्धा में करते हैं। तथा निद्रा (नींद) करना पायखाने में जाना छीर शास्त्र नियमानुशार बेन्तान उत्पत्ति के लिये स्व-स्त्रीचे मंभीग करना इत्यादि सब कुछ वे श्रद्धा ंश्रीर पूर्ण चाहना से करते हैं-तो फिर इन उपरोक्त मब कर्मी का नाम ब्राह्म हुआ! फिर "ब्रह्मचा क्रियते तच्छाद्वम्" इस पत्तिका स्रक्षरार्थं करके चरंत ए-नातनी मनुष्यों की क्यों नाहक भ्रमाते हो । श्रीर "जीवित माता पिना की सेवा" यह अर्थ उपरोक्त संस्कृत वावय में से किन सक्तरों का है और कहां चे निकालते हो ? यदि कही कि हम अनुमान चे यह अर्थ निकालते हैं तो अन्य कर्म जो जपर दि-खलाये गये, (उन्हों को भी श्रद्धा से होने के का-रण ब्राह्म कहना) ऐसा अर्थ आप लोगों के वि-शाल वृद्धि में नहीं समा सक्ता ? अर्थात् अनुमानसे जींसा यह अर्थ कि श्रद्धा से जीवित माता पिताकी सेवा का नाम श्राह्म वैसा शृह्मा से उपरोक्त अन्य कर्मी को करने का भी नाम भाद्ध ही सकता है। फिर यह क्यों वेद गास्त्र विरुद्ध अर्थ करके ठगीने

सरल आस्तिकों को पन्मार्ग से गिराने के लिये

पितादि की सेवा का ही नाम गुद्ध है। इसके लिये

ग्रापके पास कोई वेदादि शास्त्रों का प्रमाण है कि जिससे यह स्पष्ट सिद्ध हो जाय कि जीवित माता पितादि की सेवा को ही ग्राह्म कहना और न कदापि मृतकों के निमित्त दिया जाय उसकी। यदि कोई ऐसा (मृतकों के निमित्त पिएडदान के निषेध रूप) वेदशास्त्रों में से प्रमाण ज्ञाप जिद्दि-यों के पात हो तो कृपाकरके शीप्र स्पष्ट (जाहिर) करके अपना मुख उज्बल करी, अथवा ऐसा साबि-त करदेने के लिये यदि कटिबद्ध न होगे तो क्या सनातनी धर्मात्मा जन यह नहीं समर्भेंगे कि-इन न्ना॰ समाजियों का वेदोक्त धर्म ग्रीर जीविनों का गाद्ध भक्तना मिच्या हल्ला ख्रीर ख्रास्तिक संप्रदाय को धोखा देना मात्र ही है! परन्तु शास्त्रोक्त शुद्ध कर्म जिस किसी को भी देखना हो तो वह पार-स्कर गृह्यसुच आखलायन गुीत सूच, तथा परिधि-पृ कातीय गुद्ध सूत्र खाखलायन गृह्यसूत्र में एवं शांखायन श्रीत, ज्ञापस्तम्ब श्रीत इत्यादि श्रन्थोंमें दे-खे तो स्पष्ट चात हो जायगा कि "ब्राह्स" किसको कहते हैं और उनका रहस्य क्या है "श्राद्व" कोई श्रमिद्ध (खिपा हुसा) कर्म नहीं है जिसके लिये ममाण देने की जावश्यकता पड़े, तथापि वेद विक द्ध मतावलम्बी जिट्टी मनुष्यों के मद श्रहंकार रूप

(84) श्रंधकार को सत्शास्त्र रूपी श्रखरड सर्घ्य के प्रखर तेज से निवारण करने के लिये दिग्दर्शन मात्र इस प्रथम अध्याय में और विस्तार पूर्वक द्वितीर्य अ-ध्याय में यथायीग्य समाधान किया जायगा कि श्राद्ध ग्रब्द्का शास्त्रों में कैश अर्थ दिखाया गया है और उस का रहस्य क्या है ॥ यथा महर्षि मरीचि मुनिजन स्पष्ट करते हैं कि-मेतं पित्रंश्च निर्दिश्य भोज्यं यत् प्रियमात्मनः। श्रद्धया दीयते यत्र तच्छुद्धं परिकीर्तितम् ॥ सर्थ-सात्विक भोजन जो स्रपने को प्रियहोय वह प्रेतयोनि में गये उस मृतक के निमित्त यथा नाम उच्चारण करके श्रद्धारे जो कुछ दिया जाय उसकी ही श्राद्ध कहते हैं वा उसी कृत्य का ही नाम श्राद्ध है। तथा महर्षि पुलस्त्य मुनिजनभी स्पष्ट कहते हैं कि संस्कृतंव्यंजनाद्यंच पयोद्धिवृतान्वितम्। श्रद्वयादीयतैयस्मात्तेन श्राद्वनिगदाते ॥ देशेकालेचपात्रेच श्रद्वया विधिनाचयत् । पित्नुदिश्यविप्रेभ्यो दत्तंत्राहुमुदाहृतम् ॥ भावार्थ-हुध दही और घी से पकाया हुआ अन आदि, मद्धा और ग्रास्त्रं विधि पूर्वक देश कालं

एवं मुपान ब्राह्मणों का ठीक २ विचार करके पितरों के निमित्त बाह्य के योग्य ब्राह्मणों को जो कुछ दिया काय उसको ही श्राद्ध कहा गया है। तथा श्री योगी याच्चवल्वय मुनिजी ने खाचाराध्याय में भी-

वसुरुद्गाऽदितिसुनाः पितरःश्राहदेवताः । े प्रीणयन्तिमनुष्याणां पितृन्श्रीहेनतपिनाः २६०॥

आयुःप्रजांधनंबिद्यां स्वर्गमोक्षंसुखानिच । प्रयच्छन्तितधाराज्यं प्रीतान्णांपितामहाः। २००॥ अर्थ-वसु तथा रह एवं अदिति सुत ये तीनों

पितर जो ब्राह्म देवता हैं वो ब्राह्म करके स्वयं तृप्त हुए मनुष्यों के पितरों को भी तृप्त करते हैं। ब्रोर ब्राह्म कर्ता के प्रतिभी ब्रायु, प्रजा, धन, विद्यास्वर्ग

मोसयया योग्य सुख मदान करते हैं। इन वाक्यों से मृत पितरों का श्राद्ध किंद्ध किया है। तात्पर्य यह कि जैसे परमात्मा के मृष्टि में देवलीक श्रादि श्रम्य लोक

हैं और उन्हीं के अधिष्ठांता इन्द्रादि देव हैं तैंचे कर्म-णो पितृलोर्कः वृहदारण्यक॥ दक्षिणाप्रवणोर्विपितृलोकः शतपृथु—१३। दार्शणा

इत्यादि मुतियों के ममाण पे एक पितृकोक भी स्वतन्त्र लोक है जिसके अधिष्ठाता अर्व्यमा अग्निष्वान एवं व्युक्द्राऽदिति सुतादि पितृदेव हैं। (पितृणामर्था-माचास्मि' श्रीमद्भगवद्गीता अ० १० व्लो० १९५

तर है वद मेरा स्वरूप है। सो येजो सर्पमादि पितृ-देव हैं वेही इस आड कर्म में पूजनीय देवता हैं स्वीर इन्हों को ही बेद में देवगन्धवीं में सत्त्वासित अधिक आनन्द की भागी कहा है। * और मरण श्रनन्तर पुरुष किस योनि में गया है-और कीनदेश में है और उसके नाम पर उंच के वंशीय पृथ्वों ने क्या २ शास्त्रानुकुल कृत्य किया है, इत्यादि सब कर्म के वह समालोचक हैं ? और वही पितृ देव वैदिक मन्त्रोंसे लाहत हुये मृत पितरों के वंशीय पुरुषों करके किये हुये ब्राद्ध कर्म में उपस्थित होते हैं और ब्राद्ध प्रदत्तन्त्राहुति तथा भश्व भोज्य स्नादिशामग्री के मारांग(तत्व)को वासना रूपसे ग्रहण करके शाह कर्ताके मित प्रसन्नता पूर्वक स्नाधीवदि देकर वैदिक्ष मंत्री से विसर्जित हुये मृतपुरवों को यथा योंग्यं सुख का भागीकरते हैं। (यह सब आगे सममाण स्पष्ट होगा) यदापि उन पितरीं का स्वरूप हम इन चर्म चन्न-

यदापि उन पितरों का स्वरूप हम इन घम चतु-फ्रांचे सबलोकन नहीं कर चकते हैं नवीपि शास्त्रीय क सबींह, सार्वभीम, चक्रवर्ती, निष्केटक राज्य भीको,

निश्चिल कलाविशिष्ट को अति बलिष्ठ राजा है उसकी को आनम्द है (जिसको मनुष्यानम्दकी सीमा देही जाती है) उस मनुष्यानम्द से अत्युचित अधिक आनन्दमनुष्य गंधवी को , है। और उम्हों से अत्युचित अधिक आनन्द देवगंथवीं को

, हैं। और उन्हों से ग्रत्युचित अधिक आनन्द देवगंपवाँ को है और उन से भ्रत्युचित अधिक आनन्द पिष्टलोक निवा-सी पितरों की है, यह सब तैत्तिरीयारवयक तथा एडदा-रस्यक में स्पष्ट है। इस लिये वे पित्यनोक निवासी पिष्टिय

सहात् वेभव झाले समर्थ और सर्वेश हैं।

पुरुष (अत्यन्त सत्यवादी पूर्णरीति से शास्त्र मर्या-दा पालन करने वाले टूड़ यद्धालु पुरुष) के मन में पितरों का ऋदूष्य होकर स्नाना स्रयवा यों कहें कि उस पूर्ण ब्रद्धावान पुरुपको ज्ञानचक्षु से पितरों का दर्शन होना कुछ असंभव नहीं है। क्योंकि योग ग्रास्त्र में यह विषय स्पष्ट है कि यदि काय किपमें पुरुष संयम करे तो वह पुरुष अन्यों से सदूष्य हो

कर यावत् व्यवहार कर असकता है। ('योग' दर्शन के तृतीय विभूति पाद के २१ वें सूत्र में यह स्पष्ट

है।) तथा श्री वाल्मीकि रामायण में सती श्री सी-ताजी ने अपने मृतं ऋगुर श्री दशरय जी का श्रा-

द्धभोक्ता मुनी खरों के देह में दर्शन किया यह प्रसंग आगे चतुर्थ प्रध्यायमें स्पष्ट खोला गयाहै।इति॥ महाश्य जी । अव आपंकी निःसदेह'स्पष्ट ज्ञात

हुआ होगा कि त्राद्ध गव्द का ग्रास्त्रोक्त अर्थ क्या है और किस कर्म का नाम श्राद्ध है। तथा उसका रहस्य क्या है सो भी मालूम हुआ होगा॥ इति ग्री ग्राद्धपितृ मीमांगायां ग्राद्धगन्दार्थ तत्स्वरूप रहस्यंच प्रदर्शने प्रवमोऽध्यायः ॥

स्रय द्वितीयोऽध्यायः।

समाजी-भी प्रिड़त जी ! यह आहू शब्द का शास्त्र सम्मत शुद्ध अर्थ तो अच्छी तरह मेरी सम-भ में आया प्रन्तु अब कृषा करके इस विषय में मुभे कुछ और ज्यादा वेद शास्त्रों के प्रवत प्रमा-शों से स्पष्ट करके बतलाओं कि श्राद्ध मृतकों का ही होता है वा कभी जीवित माता पितादिका भी ?

सनातनी-महायय जी ! यदि आप जिज्ञासु होकर इस विषय का पूर्ण रीति से वेदादि शास्त्रों द्वारा निर्णय कराता चाहते हो तो मैं भी इस तु-म्हारी शंका का वेद शास्त्रों के प्रवल प्रमाण व सद्युक्तियों से निवारण करता हूं आप अब साव-धान होकर और पद्मपात रूप जिद्द की लाठी को कोडकर भेमसे सुनो !

"श्राह्म" जिस कुर्म का नाम है यह तो सदेव मृतकों का हो होता चला आया है और हो एका है-जीवित माता पिता आदिकों की सेवा धर्म शा-स्त्रों में लिखे अनुसार अवश्य करना, चाहिये वह पितृ मातृ सेवा एवं गुरु सेवा बाद्ध से भिन्न एक धर्म संस्वन्धी कर्म है जीवितों की ख्रद्ध पद्धति अद्यापर्यन्त विका आयेसमाजियों में भी न बनी और न बनी देखने में आती और न कभी जीवि-तों का श्राद्ध होना कहीं देखने में आता है। तथा श्राद्ध कर्म की पद्धतियें जिन ब्राह्मयार्थय. मंत्र तथा श्रीत गृह्मयूत्रों से बनी हैं उन सबों में मृतकों का ही श्राद्ध सिंह है। इस लिये जीवितों का श्राद्ध कहना निर्मूल केवल हठ मात्र है। श्रवह्म विषय को सिद्ध करने के लिये प्रथम मंत्र संहिता (वेद) के ही म-माण दिये जाते हैं। सचेत होकर सुनी।

अधर्वेवेद कां० १६ अनु० २ मंत्र १८॥
"उदन्वतीचौरवमापीलुमतीतिमध्यमा ।
तृतीयाइम्रसौरितियस्यां पितरआसते"॥

अर्थ-ब्रह्मायड के तीन लोकों में बीच का अ-न्तरिक्ष (भुवः) लोक कहाता है इस मध्य लोकके मंत्र में तीन भाग किये [उदन्वती द्यीरवमा] सूर्य चन्द्र नक्षपादि ज्योतियों का मकाश जिसमें फैल-ता है इव लिथे वह (अन्तरिस द्यी) कहाता है। उस में पृथ्वी की श्रीर का भाग जल वाला अर्थात् र्ज्ञतरिस (स्नाकाय) में जो नीलापन द्याया हुआ दीखता है यह चूदम जल है इस जल वाले अन्त-रित भाग का नाम "उदन्वती द्यी" है। (पीलुम-तीति दध्यमा) और जल ने ऊपरी श्राकाण का मध्यम भाग "पीलुमतीद्यी" कहाता है। श्रीर (तृ-तीयाह मधीरिति) [सब से जपरी अन्तरिक्ष का तीवरा भाग मूर्व्यादि के प्रखर प्रकाश वाला होने से "प्रद्यीः" कहाता है (यस्यां पितर खासते) इसी "मद्यी" नामक अन्तरिक्ष के तृतीय भाग में पितृ-

(२१) देव रहते हैं। प्रिय महाश्रय जी ! इन्हीं पितरींका याद्ध होता है। मंत्र में कहे तीसरे आकाश में रह-ने वाले स्यूल देहधारी जीवित पितर विद्व नहीं हो सकते । स्यूल देहधारी पितर पृथ्वीमें रह सक-ते हैं तृतीय खाकाश में नहीं। इससे जीवितों का पितर होना ख़ौर उनका ब्राद्ध मानना दोनों संग्र खिएडत हो जाते हैं। हमारा पक्ष केवल यह नहीं है कि हम मृतक का ही ग्राद्ध सिद्ध करें किन्तु ह-मारा मुख्य पक्ष यह है कि स्थल देहधारी अपने

विद्यमान माता पितादि की सेवा का नाम ब्राह्म नहीं है। जीवित और मृत शब्दों में कई कुतर्क हो सकते हैं जो मृत हैं वो भी जीवित हैं और जो जीवित हैं वे भी मृत हैं। क्यों कि जो मरे हैं वे कहीं नकहीं किसी योनि में जन्म लेकर जीवित कहे जा मकते हैं। देव तथा पि-तरों की भी योनि हैं उन में जीवित कहना बन स-कता है। और जी मनुष्यादि जीवित हैं वे भी पूर्व जन्मान्तर में भर चुकने से मृत कहे जा सकते हैं.। मृत शब्द की भाषा मुर्दा नहीं है क्योंकि मुर्दा शब्द का संस्कृत यब है। इस लिये यब नाम मुर्दा शरीर का ग्राह्म करना शास्त्रों का चिद्धान्त नहीं। मुद्दीं

का श्राद्ध कहना उन कुतर्की लोगों का प्रलाप माच

है। स्नात्मा वा क्षेत्रज्ञ न मरता है न जन्म लेता है किन्तु भूतात्मा मरता जन्मता है इस लिये [अधा मृताः पितृषु सम्भवन्तु । श्रयर्व० १८ । ४८ ॥]

हों। इस अथर्ववेद के मनाग से भी सिद्ध है कि मृत

नाम मुद्दं का नहीं किन्तु भूतात्मा का है। शुभ प्र-गुभ जन्म भरण भूतात्मा के होते हैं यह अंश मेन्यु पनिपद् के तृतीय प्रपाठक में अच्छी तरह से वरान किया है। याद मृत शब्द का भाषानुवाद कोई लोग करते हैं तो यह उनको समभ है किन्तु शास्त्रानुकूल नहीं है। इस खिखने से मेरा प्रयोजन यह है कि यदि कोई सुतर्की हमको पकड़े (कि जो लोग पि-तादि मर गये उन्होंने किसी योनिमे जन्म ले लिया तो वे जीवित हुये उन्हों का ब्राद्ध तुम करते मानते हो इस लिये जीवितोंका ही श्राद्ध तुम ने भी माना वा मान लिया) इस लिये इर्प कुतर्क की पहिले से ही निर्मल काट देने के लिये हम प्रपने साध्य पक्ष-स्य प्रतिचा का स्पष्ट व्याख्यान कर देते हैं कि हम उन पिता मातादि का श्राद्ध शास्त्रानुकुल मानते हैं ज़ीर करते हैं कि जिस भौतिक गरीर से वे हमारे माता पितादि कहाते ये उन शरीर को छोडकर फ़ान्य किसी योनि में 'परिशात (प्राप्त) हो गये हो। यही उनका मरना वा मृतक कहाना है। तया-मंत्रसंहिता शु० यजुबैद अ० १८। ६० मंच में स्रशिष्वात सनिष्वात दी प्रकार के पि-तर लिखे हैं। यथा--चेअग्निष्यात्ताचे अनिनिष्यात्ता मध्येदिवः स्त्र वयामादयन्ते० ॥ यजु० १६ १ ६०

चे अग्निदग्धाचे अनग्निदग्धा मध्येदिवः स्त्र-धया मादयन्ते०॥ ऋग्वेद मगडल १० सू० १५ मं० ११ तथा अधर्व० १८। २। ३५

जपर लिखे पतों पर उक्त मन वेद की तीन चंहिताओं में है, यजुः चंहिता में (अग्निष्वात्त अनग्निष्वात्त) पद हैं उन्हीं दो पदों के स्थान में

(अग्निदग्ध अनिगदग्ध) पद सम्बेद अधवंवेदमें लाये गये हैं (मध्येदिव स्वध्या मादयन्ते) इत्यादि पाठ तीनों वेदों में एकचा ही है इससे सिद्ध होता है कि सम्बेद तथा अधवं० में जिनको (अग्निदग्ध अनिध

दर्भ) कहा है उन्हीं को यजुर में (अधिष्वात्त अन-धिष्वात्त)कहा है। क्यों कि चार्येद तथा अधर्व में अग्निष्वात्त अनिष्वात्त अध्द उन मनों में नहीं आये तथा अग्निदग्ध अनिग्नदग्ध पद यजुर में नहीं आये इस से सिद्ध होता है कि अग्निष्वात्त और अ-

ग्निद्ग्ध को तथा अनिग्नव्वात्त और अनिग्नद्ग्ध का एक ही अर्थ है ॥ पाणिनीय व्याकरण के अनुसार इन ग्रव्हों का अर्थ यह है कि---"आंग्नना + स्वादिताः = अग्निप्वात्ताः १ अग्नि-

ना + द्रश्याः = अग्निद्रश्याः । जलाते हुए अग्निने जिनका स्वाद से लियां वा अग्निने जिनको जलाया वे पितर अग्निष्वात्तवा सन् ग्रिद्रश्य कहाते हैं। इसीयकार तृतीया समासमें वेदों में- लिखा सन्तोदात्तस्वर[यायघञ्क्ताजिबन्नकाणाम् ॥
पा० ६। २। १८८ मूत्र ॥ (गत्यादिभ्यः परेषां यादि
प्रत्ययान्तानामुत्तरपदानामन्त उदात्तो भवति ॥)]
प्रत्ययान्तानामुत्तरपदानामन्त उदात्तो भवति ॥)]

इस सूत्र से सिद्ध होता है। सूत्रार्थ यह है कि गित कारक ज़ौर उपपदसे परे थ, अथ, घज्, क्त, अस्, अप्, इत्र, और क प्रत्ययान्त उत्तर पदीं को अन्तो-

दात्त हो, दसमे अग्निकरण कारक से परे व्वात्त श्री-दात्त हो, दसमे अग्निकरण कारक से परे व्वात्त श्री-र दग्ध दन त्त प्रत्ययान्त उत्तर पदों को अन्तोदात्त स्वर हुआ है। यदापि ऐसी दशा में जब कि पाणि-नीय व्याकरण के अनुसार तथा संहिताओं के पर-

नाव व्यापार्य न जुड़े स्पर मेल से अग्निष्वात्त पद का अर्थ सिद्ध होगया कि जो अग्नि से जलाये गये वही पितर अग्निष्वात तथा अग्निद्ध हैं तब हमको अन्य प्रमाण की अ-पेक्षा नहीं। तथापि (अधिकस्याधिकं फलम्) के

अनुसार शतपथ ब्राह्मण वेंद्र का भी प्रमाण देते हैं। अनुसार शतपथ ब्राह्मण वेंद्र का भी प्रमाण देते हैं। अनुसार शतपथ ब्राह्मण वेंद्र का भी प्रमाण देते हैं। आसीत्-जला-ताः॥ शतपथ ब्राह्मण १।२।३॥ असीत्-जला-

ताः ॥ शतपय अ।० र । र । र । र । जनार् जनार् ता हुआ अग्निही जिनका स्वाद से लेता है वे पि-तर अग्निष्वात्त कहाते हैं। इस शतपय आ।० वेद के प्रमाणवे भी चिद्ध हो गया कि मरने पश्चात् जो अ-ग्नि से जलाये गये वेही मृतपितर पितृयच वा आ-द्ध में सिये जाते हैं, मरने परही मनुष्य के शरीरं अग्नि से जलाए जाते हैं, तथा जो जलाए गये ये जीवित नहीं रह सक्ते हैं इससे श्राद्ध में मृत पितरीं

(२५) का ही ग्रहण मन्त्र संहिता के प्रमाणों से सिद्ध हो चुका। सम्वेदादि भाव भूमिका पुस्तक के पितृयद्य प्रकरण में स्वामीदयानन्द जी ने अग्निष्वात्त शब्द का अर्थ यह किया है कि "अग्नि की अच्छे प्रकार जिसने ग्रहण किया है वे अग्निष्वास कहाते हैं"। यह अर्थ चंहिताओं के परस्पर मेलने तथा शतपय ब्रा० वेद से और पाणिनीय व्याकरण इन तीनों से विरुद्ध है। उक्त स्वामीजी की प्रतिचा उसी भूमिका पुस्तकमें यह यी कि महीधरादि भाष्य-कारों का किया हुआ वेदार्थ शतपथादि से विरुद्ध है और हमारा किया अर्थ गतपवादि ब्राह्मण भाग के अनुकुल होनेसे सर्वया याह्य होगा सी वह मित-चा अब निर्मूल हो गई, स्वमुखमे स्वात्मारलाचा करनी मानो विद्वताको धर्माना है स्वामीजीकी च-त्यप्रतिचाकी, एवं संस्कृत में विद्वत्ता की छीर सत्य-वादीपने की तो बात ही क्या कही जाय! स्नापती पूर्ण संस्कृतज्ञ, सत्यवादी और पूर्ण त्यागी महर्षियों में मुक्ट ये इसीलिये तो छाप ऋषिजीकी सेवा में "छा-धुनिक महर्षिकी पोल"नामक एक ट्रैक्ट मेंट की ग-ई है कि जिस में आप ब्री की विद्वत्ताका पूरा २

तान किया है अस्तु तात्पर्य यह कि स्वा० द० जी का किया अग्निष्वात्त शब्दका अर्थ शतप्य आर्
है, संहिता हे तथा पाणिनीय व्याकरणहे विकृद्ध वा अग्रुद्ध अवस्य है जिसका समाधान वर्तमान आर्यमन्यों

में से कोई भी नहीं कर सकता ख़ौर जो कोई गिरा पड़ा समाधान करेगा वह युक्ति प्रमाणों से झवश्य कट जायगा और अग्निष्वात्त तथा अग्निदग्ध आ-दि मंहिता के मत्रों से मरे हुए पितरोंका ब्राद्धवापूजन होना अवश्यसिद्ध है जिसमें लेश मात्रभी सन्देह नहीं। मनुष्यके मरने परदो प्रकारकी क्रिया होती है। एक तो मरें हुए मुर्दा को खरिन में जला देना द्वितीय दो वर्षके भीतर जिन बालकों को वा कुष्ठादि (कोड़) रोग वालों को वा जिन संन्यासी आदि के लिये शास्त्र में अग्निदाह नहीं कहा है उन को तथा जिनका अग्निदाह किसी खास कारण से न क्षी सके उन सबको जल वा बन में फैंक देना वा खोद के गाड़ देना यह दो प्रकार की क्रिया होती है। ये सब अ-निग्निष्वात्त वा अनिग्नदम्ध कहाते हैं। (अनिग्न-दग्ध) वा (अनिग्नष्वात्त) का यह अर्थ होगा कि जो र अग्नि से नहीं जलाए गये। उनके विषय में वेद का यह मंत्र ममाण है कि ख्रयर्व कां १८।२।३॥॥ येनिखातायेपरोप्ता येदग्धायेचोद्धिताः। सर्वो स्तानमुभावह पितृन्हविपेअत्तवे॥ अर्थ-मरने पर जिनको खोदके गाढ़ दिया, जो बन वा जंगल में छोड़ दिये गए, जो श्रीय में जलाए ग-र तथा जो युधिष्ठिरादिके तुल्य इसी ग्ररीरचे स्वर्ग को चले गए, है! अग्रिदेय उन सब पितरों को हविष् कानेके लिये इस बाद्वादि पितृकर्ममें ब्लासी।

इस मंत्रके निर्विकल्प सीधे रख्नतरार्थसे स्पष्ट ही सिद्ध है कि मरने पश्चात् ही पृथ्वीमें गाढ़देना ख़ादि हो सकता है इस से ग्राद्ध में मृत पितरीं का जावाहन करना चिद्ध है। वर्त्तमान पार्वणादि श्राद्धोंमें---आयन्तुनः वितरः से।म्यासे।ऽग्निष्वात्ताः प-थिभिर्देवयानै:०॥ अग्निमें जिनका दाहकर्म होचुका है ऐसे सीम गुणों वाले हमारे पितर देवयान अन्तरिक्ष मार्गसे इस ग्राह्म में ख़ावें। इस मन्त्रके ख़र्यसे भी मरे हुए पितरींका ग्राह्म सिद्ध है। तथा---

ये पूर्वापरागताअपराःपितरस्र ये । तेभ्या षृतस्य कुल्यैतु शतधारा व्युन्दती ॥ अथर्व**०** कॉ० १८ अनु० २। मं० १२॥ अर्थात् पूर्व जो गये और जो जा रहे हैं उन पितरोंके लिये चृतकुल्या शतधारा होकर प्राप्त होवें।

यहां मृतकग्राद्ध निन्दकाँ रे प्छना चाहिये कि वे यह तो वतावें कि उक्त मन्त्र में वो आपके कीन जी-वित पितर हैं जो पूर्व चलेगये और जा रहे हैं? स्रीर किस तरहसे स्नाप उन चलेगए पितरींकी घत की ख़ाहुतियें दे क्ती हो ! क्योंकि वे तो गए और आहुति लेने वाला तो जब समझमें अर्थात् सामने हाजिए होता है तव ले सक्ता है सो तो उक्त मन्त्र

के "ये पर्वापरागता" इस पक्ति में वर्त्त मान क्रिया है ही नहीं वहां तो पूर्व चलेगये पितरोंका जिकित है-िफर साप किस रीति से उन प्रापके चले गये जी-वित पितरों को चृतकी स्नाहुतियें देकर मन्त्रको सा-र्थक करोगे ! नहीं तो इस वेद मन्त्रको प्रक्षिप्त (वानी किसी ने मिला दिया होगा ऐसा भूठा) मानो। तथा— इदं पित्रस्यो नमे।ऽस्त्यद्य ये पूर्वासी यउन

परोस ईयु: । ये पार्थिये रजस्यानियत्ता ये वा नूनं सुवृजनासु विक्षु ॥ ऋग्वेद छाष्टक ७ अध्याठ ६ वर्ग १७ मराइल १० अनुवाक १ सूक्त १५ मंत्र २ । शुक्रयजुर्वेद अध्याय १८ मंत्र ६८ ॥ छठ यजुठ कांठ २ प्रपाटक ६ अनुठ १२ मंठ ६ ॥

२ । सुक्रयजुवेद अध्याय १६ मंत्र ६ ॥ कृ यजु कां २ प्रपाठक ६ अनु १२ मं १ ॥ कि यजु १२ मं १ ॥ कि यजु १२ मं १ ॥ कि यजु १२ मं १ ॥ विषय के प्रकार के प्र

येच (उपरावः) यजमानजन्मन उपर्युत्पन्ना किनष्ठभानुस्वपुत्राद्धः (ईयुः) पितृलोकं माप्ताः, येप्यन्ये (पार्थिये रजिष) पृथिवी संविन्धिन रजोगुणकार्य्येऽस्मिन् पितृयज्ञास्ये कर्मणि (प्रानिपत्ताः)
हिवः स्वीकर्तुमागत्योपिष्टाः, ये या(मुनुजनामु) श्रः
धनसमृद्धया श्राद्धादिकर्मपरामु (वित्तु) वन्धुक्ष्पामु
मजाम्न (नर्ना) निष्नयेन (प्रानिपत्ताः) श्राद्धादिस्वी-

भनसमृद्ध्या श्राद्घादिकर्मपरासु (विसु) वन्धुक्रपासु मजासु (नूर्न) निष्ययेन (आनिपत्ताः) श्राद्धादिस्वी-कारासागत्योपविष्टाः, तेभ्यः सर्वेभ्यः पितृभ्यो (अ-॥ वृज्यते-परित्यज्यते दारिद्वयननेनेति वृजनं धर्न

तत् शोभनं यासां ताः सुवृजनाः, तादृशीयुण्दति सायणः।

द्य) अस्मिन् पितृयज्ञाख्ये कर्मणि (ननोऽस्तु) श्र-यमाहृतिप्रदानपूर्वको नमस्कारो भवतु ॥ भाषा—(ये पूर्वामः) जो हम मे पूर्व हुए ज्येष्ठ

भाता, पिता, पितामह आदि पितर और जो (उ-पराशः) इनने पद्यात् हुए किनष्ठ भाता बन्धु आदि (र्श्युः) मरकर पितृलोकको माम हुए हैं, और जो

(इंयुः) भरकर पितृलोकको माम हुए हैं, स्नोर जो (पार्थिव रजिस) पृथिवी संबन्धी रजोगुणयुक्त इस पितृयज्ञरूप कर्म में (स्नानियत्ताः) सदृश्य रूप से हिंदः ग्रहण करने को उपस्थित हुए हैं, सीर जो(सु-यजनास विस्न) स्नाद कममें निस्नवाले बन्धवर्गीमें

हिंवः ग्रहण करने को उपस्थित हुए हैं, ग्रीर जो(सु-रूजनासु विक्षु) ग्राद्ध कममें निष्ठावाले बन्धुवर्गोंमें (नूनं) निश्चय कर (ग्रानियत्ताः) ग्राद्धके स्वीकारार्थ उपस्थित हुये हैं, तिन सब पितरों के प्रति (ग्रद्ध) इस ग्रारव्ध पितृयद्ध कमें में ग्राहुति प्रादनपूर्वक मेरी नमस्कार होय तथा—

"आच्याजानु दक्षिणतो निषद्येमं यज्ञम-भिगृणीत विश्वे, माहिंसिष्ठ पितरः केनचिन्नो यद्व आगः पुरुषता कराम,"। ऋग्वेद अ०६ व० १८ मण्ड० १० अनु० १ सूक्त १५ अष्ट० मन्त्र ६ शुक्र यजुर्वेद अध्या० १६ मन्त्र ६१॥ अन्वयार्थः—हे विश्वे चेचे पितरः, यूर्य (जानु-आच्य) वामजानु भूमी पातियत्वा (दिश्विणतो नि-

सन्वयादाः—ह विश्व सव पितरः, यूय (जानु-स्राच्य) वासजानु भूमी पातियत्वा (दक्षिणतो नि-पदा) दक्षिणपार्श्वे उपविश्य दममस्मदीयं यद्धं (स्र-भिगृणीत) साधुर्यं यज्ञ दृत्यवमिष्टुत स्रिप्य (द:) युष्माकं, यत्किच्चिद्ध् (स्रागः) कर्मवैगुरुय- जनितमपराधम् (पुरुषता) मनुष्यत्वेन हेतुना (कः राम) वर्षं कृतवन्तः, हे पितरः तेन केन विद्पराधेन (नः) अस्मान् मा (हिंचिष्ट) विधिष्ठ ।

भाषार्च-है (विषवे) निखिल पितरो ! स्राप(जा-नुसार्च्य) बाम जानु यानी बार्चे चाँटु को भूमि पर निपात (खोर लगाकर) कर (दक्षिणतः निषदा) इस स्नाग्ने चे दक्षिणकी छोर स्थित होकर (इमं यज्ञम्ं) इस हमारे यज्ञ को [स्राभगृणीत] स्तवन यानी अं-गीकार कीजिये, और [पुरुषता] चाञ्चल्य स्वभावकृष मनुष्यपने से, सापका [यद् स्नागः] [कराम] जो कुछ कर्म वैगुषयपुक्त [स्नर्यात् इस यज्ञ कर्म में कुछ कमी वा चुटि होजाने क्पी] स्नपराध किया हो तो तिस किसी स्नपराध हिनः] हमको [माहिसिष्ट] हिं-सन मत करो। इत्यादि

दिग्दर्शन मात्र दिखायेदन वेद मंत्रो द्वारा मृत पितरों के ही निमित्त ब्राद्धादि यज्ञ कमें में पितृ-स्रोक के अधिष्ठाची देवों का आवाहन-नमस्कारा-दि स्तुति स्रोर पूजन सिद्ध है। तथा---

"तिरइव वै पितरो मनुष्येभ्यस्तिर इवैतद्गः वति"॥ शतपथ बा० २।३।१।२१॥

अर्थात्-पितर लोग मनुष्यों से अट्टूरय होते हैं और पितरों का भोजन भी अट्टूरय सूहम होता है। इस कथन से भी सिद्ध हैं कि स्यूल देहधारी पितर होते तो अद्रय नहीं कहें जाते। इसलिये पियखदा- न संबन्ध में प्रदृश्य पितर कहने से वे ही प्राण श-रीरी वायुकाय सूक्ष्म झद्रश्य पितर लेने हैं। इस से भी जीविनों का खरडन तथा मृत पितरों का ग्राह्म चिद्ध है। तथा-*शतपथ ब्राह्मण में पितशें के लिये म-त्येक महीने में एक बार और मनुष्यों के लिये प्रति दिन सार्य प्रातःकाल दोवार भोजन प्रजापति ने नियत किया। यदि जीवित पितरों को मानें तो वे मनुष्य ही हुए तब बताओं कि वे ऐसे कीन मनुष्य

हैं जो महीने में एक बार ख़मावास्या के दिन ही भोजन करते हों ? ऐसा मनुष्य कोई न हो सकने के कारण मनुष्यों से भिन्न मरणानन्तर पितृयोनि गये पितर ऐसे समर्थ होजाते हैं-जिनको महीने भर में एक वार ही भोजन मिलने से तृप्ति रहती कष्ट नहीं होता। इषषे भी मृतकों का ग्राह्म सिद्ध है। शांखायन श्रीतसूत्र पिण्डपित्यज्ञ प्रकरण में "न जीव पित्रस्ते," अ० १ कं०१ सू० ०॥

श्चर्यात्--जिनका पिता जीवितं ही वह पिषड पितृयज्ञ न करे उसं के लिये पिगडपित यज्ञ नहीं है। इस प्रमाण से भी जीवित का निष्धे करने से मरे पितरों का ब्राह्म अर्थापत्ति से सिद्ध है। अर्थात् जि-सका पिता जीवित हो वह ग्राद्ध न करे तो यह ग्रा-या कि जिसका पिता मर गया हो वह । पिएडपित

 शतपथ ब्रा० कां०२ प्र०३ मं०२ ख्रीर ३ ये संघ्र स्प-ष्ट रूप से आगे अध्याय ५ में वर्णन किये गये हैं वहां देखी।

यज्ञ करे तथा शांबायन श्रीत सूत्र साकमेध पर्वस्य महापितृयर्च प्रकरण छ०३ कं० १६ सूच २।

[पित्रभ्यो वा सोमवदुवः पित्रभ्योवर्हिष

द्वभ्यः पित्रभ्योऽश्निष्वात्त्रभयः 🗍 । सोमवान्, बर्हिषद् और अग्निष्वात्त इन तीन नाम वाले वितरों के लिये महापित्यज्ञ में भाग

दिये जाते हैं। इन में अग्निष्वातं पितर बोही हैं जो

मरणानन्तर अग्निदाह की प्राप्त हुए। इस से भी मृत पितरोंके लिये बाद्ध होना सिद्ध है तथा पिएंड पित यं ज मकर्ण कात्यायन ग्रीत सूच २३ छ० ४ कं०९।

ि प्रेतेभ्योददाति] मेत नाम मरे हुए पिता पितामहादि के लिये

पिएड देता है अर्थात् देने चाहिये। अर्थापत्तिने आया कि जीवितों के लिये नहीं। इस से भी मरे हर्जा के

लिये पिरछदान देना सिद्ध है तथा आपस्तम्ब श्रीत सुम पिएडपित्यज्ञ प्रकारण ।

यदि जीवितपिता न दद्यादाहीमात्कृत्वा विरमेत्॥ यदि जिसका पिता जीवित हो वह पिएउदा-

न न करें तो होम पर्यन्त ही पिएड पितृ यच्च करके

ठहर जावे । इससे भी मरे हुआं के लिये पिरडदान चिद्ध है। तथा मानव कल्प चुत्र में लिखा है कि।

यदि ददाद येभ्य एवं पिता ददात् तेभ्यो

ददात्॥

तो जिन पितामहादि मरों के नाम से पिता देखें उन्होंके लिये पुत्र भी पिराडदान करे सर्थात् स्रपने जीवित पिता के नाम से पिराडदान न करें। इससे भी मरे हुए पितादि के लिए पिराडदान सिद्ध है।

जिसका पिता जीवित हो वह यदि पिएड देवे

भा भर हुए पितादि के लिए पिएडदान विद्व है।

तथा--यजुर्वेदीय कठ शाखा के काठकश्रीत
यूच में लिखा है कि-

्रिता पुत्री चेदाहिताग्नी स्वातां येभ्यः पिता तेभ्यः पुत्री दद्यात्। पिता प्रेतः स्वात् पितामहो जीवेत् पित्रे पिण्डं निधाय पितामहा त्पराभ्याम् द्वाभ्यां दद्यादिति ॥

यदि पिता पुत्र दोनों ने विधिपूर्वक श्रीत स्मा-र्म अग्नियों का स्वापन किया हो तो अत्येक अ-मायास्या के दिन दोनों को पिषड पितृशच्च करना चाहिये। इस दशा में जिन तीन के नाम ये पिता पिणसदान करें उन्होंके लिये पुत्र भी पिणड देवे किन्तु पुत्र अपने जीवित पिता के नाम ये पिणस-

दान न करे। और यदि पिता मर गया हो पितामह (दादा)जीवित हो तो पुत्र को चाहिये कि पिता के नाम से पियछदान देशे जीवित पितागह (टादे) को छोड़ उपसे पूर्वके प्रपितामह मुद्ध प्रपितागह दोनों के लिये पियछदान देये। यह यिषय रेजाही ज्यों

का त्यों सन्० अ० ३ प्रती० २२० । २२१ में भी शिखा

है जिस से सिद्ध है कि मृत पितादिके लिये पिण्ड-दान होता है इसीका नाम श्राद्ध है। प्रयोजन यह कि प्रमाणां से तो अच्छी प्रकार सिद्ध है कि "श्राद्ध" मरे हुए पितादिका होता है जीवितों के सत्कारका नाम "श्राद्ध" किसी श्रंथ से कदापि सिद्ध नहीं हो सक्ता है, इत्यत्म विद्वत्सु ॥

इति स्त्री स्नाद्धपित्रमीमांसोयां मृत पितृणाः मेव स्नाद्धसिद्धप्रदर्शने द्वितीयोऽध्यायः ॥

॥ ऋष तृतीयोऽध्यायः॥ समाजी-भ्री पण्डितजी महाराज ! मृतकोंकी ब्राद्धिसिद्ध में ये अत्यन्त प्रवल, बास्त्रप्रमाण और सद्युक्तियां सुनकर स्रव मेरे हृद्यके संशय रूप क-पाट खुल गये हैं फ़ीर मुक्ते दूढ विकास हुआ है कि "म्राद्ध" मृतकों का ही होना निःभंदेह मत्य एवं घेदानुक्ल है। इसलिये हम-अब इन आपके दिये शास्त्र ममाग्र रूप अस्त्रोंको लेकर अपने आर्ग्यस-माजी महाश्रयोंको ख्रविद्या-हट ख्रीर पक्षपात रूपी महाश्रचुश्रोंके पञ्जेषे खुड़ाने की एवं वेदोक्त सन्मार्ग पर लाने की यथार्यभव को शिश करते रहेंगे। परन्तु है परिखतजी! मुभे यह तो बतास्रो कि पिता पुत्र का संबन्ध शरीरों के साथ है वा जीवात्मा के साथ ?। यदि ग्रारीर के साथ मानो तो यह ग्र-रीर यहीं जला दिया राख भस्म होकर मट्टी में मिल

गया अर्थात् रहा ही नहीं उस ग्ररीर रूप पिताका भाद्ध पुत्र करही नहीं सकता। और जीवात्मा किसी का पिता वा पुत्र होता ही नहीं। क्योंकि जैसे जी-वात्मा नस्त्री न पुरुष और न नपुंसक होता [ग्रुतिः-

नैव स्त्री न पुमानेप नचेंवायं नपुंगकः । वेंसे ही यह किसीका पिता वा पुत्र भी 'नहीं होता। फिर तुम पिएडदान का फल किस को पहुंचाते हो ?। प्रणीत् मरने पद्मात् उस २ पितादिको सुख पहुंचाने के लिये

घाद्धकरना व्यर्थ समभा जाता है।
सनातनी—पिय महाययजी ! क्या खाप गुरु
शिष्य पिता पुत्रादिका संवन्ध नहीं मानते ? यदि
मानते हो तो शरीर के साथ वा जीवके साथ, किस
के साथ मानते हो ? यदि कही कि हम मत्यक्ष वि-

के साथ मानते हो ? यदि कहो कि हम मत्यक्ष वि-द्यमान संबन्ध मानते हैं मरने पश्चात् किसी के साथ नहीं मानते तो यह बताफ़ो कि स्वा० द्यानन्द को स्वर्गवास हुआ कहने में मसन्न फ्रोर नरक हुआ कह-ने में ग्रमसन्न क्यों होते हो ? तथा स्वा०द०को कोई बुरा कहे वा लिखे तो उसके साथ। लडने को तथ्यार

ने में अप्रमन्न क्यों होते हो ! तथा स्वा० द०को कोई बुरा कहे वा लिखे तो उनके नाथ लिखेन को तथ्यार क्यों होते हो ! क्यों कि स्वा० द० का घरीर भस्म हो के पंचतत्व में मिल गया उनके नाथ तुम्हारा कोई संवन्ध हो ही नहीं नकता रहा जीवात्मा को जैसे .वह किनी का पिता वा पुत्र नहीं वैसे ही वह किनी का गृह वा उपदेशक भी नहीं ठहर सकता। इनिलये

तुन को स्वा० द्यानन्द का कभी नाम भी नहीं लेना
चाहिये। छोर यदि तुम अब उन की प्रश्रमा में सन्तुष्ट प्रस्त्र होते छोर उन को दुरा कहने वाले पर
अपम्बद्ध होते हो तो तुम्हारे मन ये ही मरे जीवींके
साथ संबन्ध सिद्ध हो गया। यह उत्तर तो वैसा ही
है जैसा प्रश्न था अब आगे आप जिज्ञासु महाण्य
को तत्यांश सम्भाने के लिये इसी अंश पर कुछ वि
चार लिखते हैं वह प्रश्नका समाधान भी होगा और
शास्त्रानुकृष सिद्धान्त ज्ञान का हेतु भी होगा। परन्तु इस गहन विषय को आप पूर्ण ध्यान लगाकर
चैर्य से सुनेंगे तो आशा है कि आप प्रीप्र ही इस उच्च
सिद्धान्त को ठीक रसम्भ कर पूर्ण लाभ से सकेंगे॥

अवीय वाजीयात्मा स्था है" इस विषय पर अ-

नेक विचार ग्रंथों में मिलते हैं जिनका व्याख्यानं यहां छेड़ा जाय तो एक यही बड़ा व्याख्यान चर्ल जावे। इस लिये प्रधिक शास्त्र सम्मत सिद्धान्त जो वास्तव में वेदानुकूल है वही यहां कहते हैं कि—

घेदेके (द्वासुपर्णा०) मन्त्रमें दो आत्मा कहे हैं इन दोनोंमें (अनम्बन्यो अभिषाकणीति) जो गुभागुभ फल सुख दुःखभोग नक्तता हुआ केवल मकाण करता साक्षीरूपने स्थित है जिसके लिये उपनिषदोंमें (साक्षी-चेताकेवलो निर्मुण्यु) इत्यादि कथन लिखा गया है। गो जैसे जपा पुन्पकी छाया (फलक वा शामास) स्व-च्छ फांच छादि में सभीप होने के कारण पड़ने से कांच आदि ठीक उसी पुष्पके रंग से रंगा दीखता है। उसी के अनुसार ऊपर लिखा गया साक्षी आ-त्मा का आभास अन्तः करणमें पड़ता है। वास्तबमें अन्तः करण जड़ है पर चेतन के आभास से चेतन ही अतीत हुआ करता है। अपने आभास हारा अन्तः क-रण को सचेत करता है इसी लिये उपनिषदों में इस आत्मा की चेता कहा गया है। इसी चेता का नाम

फ़ात्मा की चती कहा गया ह। इस चता का नाम सेवज है यही साक्षात् ईखर परब्रह्म परमात्मा है। श्री गीता में लिखा है कि— "होवजं चापि मां विद्वि चर्वक्षेत्रेषु भारत!" अर्थात् चब सेव रूप शरीरों में सेवज मुक्ते परमेखर को ही जानो। तथा मनुष्य्रष्ट से लिखा है कि—

्रयीत्स्यात्मनः कार्रायता तंक्षेत्रज्ञं प्रचक्षते । यः करातितु कर्माणि समूतात्माच्यते वुधैः १२ जीव संज्ञीऽन्तरात्माऽन्यः सहजः सर्वदेहिनाम् ।

येन वेद्यते सर्वं सुखं दुःखं च जनमसु ॥१३॥
ताबुमी भूतसपृक्ती महान्क्षेत्रज्ञ एवच ।
उञ्चावचेषु भूतेषु स्थितंतं व्याप्य तिष्ठतः"॥१४॥
प्रर्थ-जो इस सर्वेत ग्रारिये कर्म कराने वाला
है उसको परिडत लोग सेवच कहते हैं, और जो

अय-जा इस स्वत शरारस कम करान वाला है उसको पण्डित लोग खेवज कहते हैं, और जो सुभाशुभ कर्म करता है यह भूतात्मा नाम शरीर क-हाता है। तथा शरीर के साथ ही आविर्भूत प्रकट होने वाला जीव बंजक तीसरा आत्मा उन दोनों

से भिन्न है। शरीरधारी इसी जीव रूप साधन से श-रीर धारण के समय सब मुख दुःख को जानता है। वे दोनों जीव नाम महत्तत्व वा बुद्धि तथा क्षेत्रज्ञ पंचभूत रूप स्यूल मूक्त शरीर में मिले हुए सब छोटे बड़े गरीरों में व्यापक परमात्मा के महारे से उहरे हुए हैं। जैसे कृर्य्य वा दीपकादि का वाहरी प्रकाश आंखों से दिखवाता है वैसे ही सेत्रज्ञ सासीहर से अपनी चेतना द्वारा स्थ्ल मूक्त गरीर से कर्मक-राता है। इसी लिये उपनिषदों में ईखरको [चेतन-श्वेतनानाम्] चेतनोंका भी चेतन कहा है। जाननेका साधन जिससे मुख दुख जानते हैं वही जीव है फ़ौर जानने वाला वा करने वाला भूतात्मा है। भूतात्मा फ़ीर गरीर एक ही के नाम हैं। ग्ररीर तीन मकार का है-एक स्यूल द्वितीय यूदम तया तीयरा कारण गरीर है। यद्योपि मत्यस में स्यूल गरीर कमं करता हुं ग्रा दीखता है। परन्तु स्यूल वास्तव में कर्त्ता नहीं किन्तु सूक्ष्म श्ररीर सुख्य कर कर्म करने वाला है। स्युल गरीर का नाम अनुमयकोप है। प्राणमय और मनीमय कोप का मुख्य संवन्ध सूक्ष्म ग्रारीर के साथ है। मैं ज्युपनिषद् में भूतात्मा शब्द में इसी सूक्ष्म श्र-रोरका गमनागमन जन्म भरण के साथ माना है। यह पर्वतन्त्र नियम है कि जो पदार्थ जैसा स्यूल दीख-ता है यह वैशा ही उवों का त्वों मुदम दया में भी समय होता है। क्योंकि मूदम में ही सब स्यूल प-

दार्थ वृद्धिको प्राप्त हो जाते हैं और स्यूल के अंदर मूक्म रहा करते हैं। जैसे स्यूल वृक्ष अपने सब अंशों , महित प्रत्येक बीज (फ्राम की गुठली फ्रादि) में विद्यमान रहता है और ख़ाम ख़ादिके पेड़ (युर) में आम के फल और बीज का भी सूदम कारण वि-द्यमान है वैसे ही मनुष्यादि के स्यूल ग्ररीरों के भी-तर मूक्त और कारण भरीर विद्यमान हैं। यही मुक्त शरीर नामक भूतात्मा देव-मनुष्य खीर तिर्यम् छादि योनियोंमें जाता है यही देव-पितर बनता है इसीके साय जीवसंज्ञक महत्तत्व भी तिरोभूत दशामें मर्-यानंन्तर रहता है। सूद्दम शरीर के साथ स्यूल श रीर कां ऐसा ही संबन्ध है जैसा घी के साथ दूधका है। अर्थात् स्यूल का सारक्य घृतके नगह पर मूक्स शरीर है स्त्रीर घृत के निकल जाने पर जो देशा दूध की होती वही दशा मूक्ष्मश्रीर के निकल जाने पर स्यूल देह की हो जाती है। ख़ीर जब तक दोनों मिले हुए हैं तब तक दूध के समान हैं। सूक्ष्म श-रीर स्यूल ग्रारीर का सार (तत्व) है इसकी सिद्धि के लिये छान्दोग्य उपनिषद् में स्पष्ट ही खोलकर लिख दिया है। तदाया--**"दभ्र: सोम्य मध्यमानस्य योऽणिमा स ऊ**-र्ध्वः समुदीपति तत्सपिर्भवति ॥१॥ एनमेव खलु

सोम्यान्त्रस्याश्यमानस्य योऽणिमा स अर्घ्यः सम्-

पीयमानानां योऽणिमा स ऊर्ध्वः समुदीपति सप्राणी भवति"।शाइत्यादिछान्दी० प्र०६।खं०६॥ हे सोम्य खेतकेतु ! जैसे दही के मधने पर जो सूक्ष्म सार भाग ऊपर खाजाता वह घी होता है वैसे

ही खाये हुए ख़न्न का जो मूहम सारभाग उदर से ज-पर हृदयादि में आ जाता है वह मन होता है। इस मेमन ख़ादि मूक्म शरीर स्यूल देहका सार होना स्प-ष्ट चिद्ध है। यही यूक्म श्ररीर देव पितृ आदि यो-नियों में जाता है। इसी भूतात्मा नामक सूक्ष्म य-रीर के साथ पिता पुत्रादि सब संबन्ध मरणाऽनन्तर भी रहता है और मुझम ग्रहीर में सब खंगीपाड़ बैसे ही बने होते हैं जैसे स्युल में हैं। हरएक वस्तु अन्य द्या में पहुंचने पर भी अपने संबन्ध को अपनी आ-कर्षण शक्ति है खेंचता है और वह खिंचा हुआ वहीं पहुंच जाता है। वैसे ही सूझ्म शरीर जहां जिस यो-नि में जन्म लेता वहां ख़पने स्यूल ग्ररीर के परमा-णुष्टों को खेंच कर फिर नया गरीर बनाता है। इ-त्यादि सब का सारांश यह है कि जीवात्मा कर्मा-नुसार स्यूल देह को छोड़ कर मृस्म देहसे कड़ा हो-कर अन्य २ योनियों में जन्म लेता है फ़ौर चूक्ष्म गरीर को भी वह जीवात्मा तब छो छता है जब कि वह संसार की वासना (अर्थात् वंधन रूप संकल्प विकरप शादि कामनाओं) से निवृत होकर निर्वाण

पद (मोल को प्राप्त करने का अधिकारी बनता है। इस लिये हरएक ग्रास्तिक को चाहिये कि ग्रपने वेद शास्त्रों के साचानुसार शास्त्रविधि से शपने मा-ता-पिता=गुरु लादिकों के मृक्ष्म ग्ररीरोंचे मुख्य मं-बन्ध मानकर अवश्य ही उन मृत प्राची के सुख पा-प्त्यर्थ श्रीर उन की सद्गत्वर्थ यथायक्ति एवं पूर्ण ग्रद्धाचे मन्न-जल मादिचे विधिप्वंक चत्कार (ग्राद्ध) करना चाहिये। ख़ौर जब कि [ख़ोत्माचै पुत्र नामा-सि॰] [सात्माचे जायते पुत्रः] इत्यादि श्रुति और [गर्भी भूतवेह जायते] [भार्या पुत्रः स्वकातन् :0] इ-

त्यादि स्मृतियों में पुत्र से पिता का अभेद एकता मंबन्ध स्पष्ट दिखाया गया है तो फिर धिक्कार है उन्हों को जो फूट रूप भेद डालते हुए भी यह क-हते रहते हैं कि हम ही माता पितादिके बच्चे छे-वक और देश भक्त हैं। वाहरे सुपात्र पुत्र ! और दे-श भक्तो !! क्या यह दलील देना तो नहीं चाहते हो कि पितादि ने युरे कर्म किये तो उन की अप-ने कर्मानुसार ईखरव्यवस्या से दुःख मिलना नि-यत है तब पुत्र यदि उनको दुःख से खुड़ाना चाह-ता है तो ईश्वर की व्यवस्था नष्ट होगी, ईश्वर की इच्छासे विसद्ध होगा। यदि तुम्हारी ऐसी दलील है तो जीवित माता पितागुरु आदि की सेवा शुधू-षा भी तुम लोगों को नहीं करनी वाहिये। क्योंकि

पिछले जन्म के कर्मी का जैसा र शुभा शुभ फल ई-

ध्वर ने उनको देना नियत किया है उस ईश्वरीय व्यवस्था में बाधा डालने वाले तुम क्यों नहीं हुए! ऐसी दशामें जीवित माता पिता की सेवा भी तुम

को छोडना क्यों नहीं पड़ेगी ?॥ अर्थात् अवश्यही इस तुम्हारी दी हुई दलील से जीवित माता पितादि की सेवा गुग्रूपा छोड़ना पड़ेगी। तो फिर बताओ

कि स्नाप कैसे माता पितादिके सेवक स्नीर देश भ-क्त हुए ? श्रीर क्या अपने मृत पितादिकों की मि-

लिक्यत (धन माल) के मालिक होने के लिये तो हीक २ उस मृतक पितादि से संबन्ध मानकर अप-नेको उचका हकदार दताओ परन्तु उस मृत

पितादि के लिये ग्रास्त्र ग्राचा में किंचित् जल फ्रीर अन मात्र दान करनेमें वहाने और कुतर्क करते हो? वाहरे कृतज्ञ आर्थाभासियो ! अफ्रुसेस ! और ल-

ज्जा !!! देखो तो सही कि अन्य धर्मी मुमलमान धाद्याह शाहजहां अपने पुत्र औरंगजेब से हि-

न्दुओं की मातृ पितृभक्ति की प्रशंसाकरते हुए तथा हिन्दुमों के प्रतिधन्यवाद देकर यह कहते हैं कि-"ए पिसर तो अजब मुसलमानी । जिन्दगारा व आव तरसानी॥ जाफरीं हिन्दुआंरा सदवार।

मुदं गांरा दिहन्द दाय में आव"॥॥॥ इत्यसम् विद्वत्स् ॥ इति श्री श्राद्ध-पितृ मीमांशायां मृत संवन्ध निक्ष्पणे नृतीयोऽध्यायः ॥

त्र्रथ चतुर्थोऽध्यायः॥

समाजी—श्री पिएडत जी महाराज ! श्रव मेरे हृदय के संदेह निवृत्त होते जाते हैं। श्रापने बहुत ग्रच्छे ढंग से एवं धर्म शास्त्रोंके प्रवल प्रमाणोंसे
मृतकों के साथ [ग्रर्थात् श्रपने मृत माता पितादि
रूप पितरों के सूरम शरीरों से] संबन्ध होना ठीक
२ सिद्ध किया इसलिये में श्राप को श्रनेक धन्यसाद देकर फिर प्रार्थना रूप में यह भी पूदना चाहता हूं कि कर्मानुसार उच्च नीच योनि में प्राप्त उन्त
हमारे मृत पितादि की श्राद्ध कर्म में दिया हुआ
पिएड-भोजनादि कैसे पहुंचता है ? श्रयवा उन
को श्राद्ध भोजन पहुंचाने साले वे कीन हैं जिन
में द्वतनी खलीकिक सामर्थ्य है ?
सनातनी—महाशयनी! ठीक श्रापने पृद्धा है

यह प्रश्न इस समय बहुधा समाजी लोग सरल सीधे भोले सनातिनयों से पूंछकर फूले छंगों नहीं समानते, ख़र्यात् इस प्रश्न का पूरा ठीक २ उत्तर व समाधान न होने से कठोर इदय बाले एवं शास्त्रानम्भ समाजी भाई उन विचारे आस्तिक एवं कोम्मल इदय बाले सनातिनयों को क्षण भर में घबरा देते हैं और-अपनी जय मान बैठते हैं। अस्तु जो हो॥ अब आप ध्यान देकर सुनो। जैसे गर्भिणी अन्वला स्व पुरुष करके दिये गर्भपोषणार्थ अन्न आनदि को भक्षण कर,स्वतः तृष्त हुई अपने उदर गत

गर्भ (वालक) को भी तृष्त करती है छोर गर्भपो-पणोपयुक्त सन्न देने वाले को भी प्रत्युपकार रूप फल में मंयुक्त करती है सर्घात् उस पुरुष को भी फल भागी करती है। तैमें ही ब्राद्ध के देवता जो व-सु रुद्ध स्वित्तमुतादि पितर हैं वह ब्राद्ध करके तृप्त हुए स्वसंगत पितरों को भी तृष्त करते हैं ख़ौर ब्रा-द्ध कर्ता को भी स्वर्गदि फल में संयुक्त करते हैं इस स्राम्याय में ही—

"देवान् वे पितॄन् प्रीतान्,म-

नुष्याः पितरोऽनुप्रीयन्ते, तिस्र स्राहृतीर्जुहोति,त्रिनिंदधाति,षट् संपद्यन्ते,, ॥॥

त पद्मगत्तः ॥४॥ कृष्ण यज्ञ् आरण्यक अष्टु०१ अष्याञ्जनूर्०॥

अर्थात् देवता रूप पितरों के तृष्त होने के अन् नन्तर मनुष्य रूप पितर भी तृष्त हो जाते हैं, इंगी मे ही प्रथम देवता रूप पितरों के अर्थ तीन आहु-ति करनी चाहिये और फिर मृत मनुष्य रूप पि-तरों के अर्थ तीन पियड देने चाहिये, इस प्रकार पट् ६ संपन्न होते हैं॥ तात्पर्य यह कि आद्धके दे-वता वसु रुद्रादि पितर आद्ध कर्म में—

निमन्नितान्हि पितर उपतिष्ठन्ति तान् द्विजान् । वायुवच्चानुगच्छन्ति तथाऽऽधीनानुपासते १८६ अध्या० ३ ॥ मन्० निमंत्रित ब्राह्मकों के शरीर में अदूरिय वायुका-य सूक्ष्म रूप से प्रवेश करके पिगड एवं ब्राह्मका भो-जनादि के तत्व # को ब्रह्क करं स्वयं तृष्त होके

* शका—किस प्रकार वे पितृदेव श्राहु भोजन के तत्त्व को पहण करते हैं?

समाधान—यह भी हमारे लिये कुछ आद्यर्ध्य जनक नहीं है क्योंकि जब हम पशु पति कीटों में परमेश्वर प-द्त्त अलीकिक सामर्थ्य को प्रत्यक्ष देख रहे हैं तो वितरोंके प्रति प्रद्त्त अलीकिक सामर्थ्य हम को कैसे आद्यर्थ जनक होगी।

दत्त अलाकिक सामध्य को प्रत्यक्ष देख रहे है तो वितरोक्षे
प्रति प्रदत्त अलौकिक सामध्ये हम को कैसे आद्ययं जनक होगी। अर्थात्—जैसे परमारमा प्रदत्त अलौकिक शक्ति विशेष् प से हस्ती (हाथी) कपित्य फल को भवण कर उस के

श्रम्तर्गत सारांग्र की ग्रहण कर किर लीद के संगयणाविस्यत (जैसे आगे या वैसाही सारा विना स्वाया हुआ) उस फल को निकाल देता है। और जैसे मधुमिक्खयां पुष्पों से मक्तरन्द ग्रहण कर मधुरचना करती हुई पुष्प के किसी अंग्र की हुंस (तोर) न कर उस के सारांग्र कर सुगंधि की ही ग्रहण कर लेती हैं। या जैसे जलौका (जोंक) मिश्रित रक्त

में थे बिक्त रफ केप एकांग को ग्रहण कर लेती है। बाजैये कमल के किसी अग्र को भीन पटाता हुआ अनर (भी-रा) कमल गर्भ केग्रर मकरन्द्र का ग्रहण कर लेता है। जैसे जल भिन्नित दुग्प (चीर) में से हंस पद्यी। जल को एग्य्

जल निवास पुर्व (जार) ने उ हुए नवान्ति सा पुर्व करके केवल तत्व करवूप को ही ग्रहण कर लेता है। और इसी प्रकार अंगुली के स्पर्ध करने से लक्ष्मावती लता (श-मं बूटी) में सकुषित होने की शक्ति भी जान लेनी। और जह लोई में भी चुंबक के सिल्धान से अलीकिक शक्ति जानती। इत्यादि यदि पदार्थों की विचित्र शक्तियों का नि-

फिर उन मृत मनुष्य पितरों को भी तृष्त करते हैं जिन के निमित्त श्राह किया गया है। श्रीर श्राह करने वाले पुरमातमा को भी यथा योग्य स्वर्गीद फल प्रदान करते हैं। इस श्रीभप्रायको ठीक रिष्क हु करने के लिये श्री योगीयाच वल्क्य मुनि जी ने भी श्राचाराऽध्यायमें स्वष्ट दर्शाया है दि—

वसुरुद्राऽदितिसुताः पितरः श्राद्ध देत्रताः ।
प्रीणयन्ति मनुष्याणांपितृन् श्राद्धेन तर्पिताः २६६
आयुः प्रजां धनं विद्यां स्वर्गं मीक्षं सुखानि च।
प्रयच्छन्तितथा राज्य प्रीता नृणां पितामहाः२००
वसु तथा रुद्र एवं श्रदितिसुत, ये तीनों पितर जो
श्राद्ध के देवता हैं वह श्राद्ध करके तृष्त हुए-मनुष्यों के पितरों को भी तृष्त करते हैं ॥ और श्राद्ध कर्ताक प्रतिभी श्रायु, प्रजा धन, विद्या, स्वर्ग, मोस्र यथायोग्य सुख प्रदान करते हैं ॥

एवं ग्रंतनुजीने भीष्मपितामह जी के प्रति भी
यहो समाधान किया है कि—

आध्यायितास्रते सर्वे पुनराध्यायन्ति ॥ (महाभारते) रूपण किया नाय तो एक यही शहरक्या होनाय, श्लीने

इतने में ही सन्तुष्टहोना चाहिये। सारांग्र यह है कि इस ही प्रकार परमारना प्रदृत्त प्रात्तीकिक शक्ति विशेष से पितर देवता भी त्राहीय पदार्थों के सारांग्र (तत्व) की प्रहणक-रतेते हैं ॥ इति॥ सब देवता रूप पितर प्रथम आप स्वयं तृष्त होकर किर अन्य मनुष्य पितरों को तृष्त करते हैं।

तथा च--एते स्राहुं सदा भुवत्वा पितृन् संतर्पयन्त्युत ।

यत्र क्षचने धर्मज्ञा वर्तमोनान्हि ग्रीगतः ॥ विष्णधम्मीत्तरः॥

ये जो वसु बद्ध सितिसुत, श्राद्ध भोजन से तृ-पत होकर फिर मृत पुरुषोंकों तृप्त करते हैं वाहे वे मृत मनुष्य पितर किसी भी योनि में हों। क्योंकि वह धर्मज पितृदेव योग वस रूप सलीकिक सामर्थ्य से हरस्क प्राची को जानते हैं ॥ इत्यादि धर्मग्रा-स्त्रोंके प्रमाणोंसे स्पष्ट सिद्ध है कि हमारे मृत पितर स्र-पने श्रन्थ वा व्रेकर्मानुसार चाहे वे किसी भी यो-

पन अच्छ वा बुर कमानुसार चाह व किसी भी यो-नि में क्यों न हों तो भी उन्हों, को वहां उसी ही यो-नि में पिनृदेवों के अलौकिक सामर्थ्य से पिएडभोज-नादि खाद्धीय पदार्थ सूक्ष्म रूप में पहुंच जाते हैं। और जो श्री द्यारय * महाराजादि जैसे अत्यन्त उ-तम पुषय कर्मों के प्रभाव से देव पितर खादि उत्तम योनियों में गये हुए हैं वे स्वयं अग्निदेवकी सहायतासे

चेद मंत्रों द्वारा आहूत होकर आद्ध कम में निमंत्रि
• यह श्री दगरण महाराजकी कया आने पंचन श्रध्याय मेः स्पष्टक पचे वर्णन की गयी है—जहां श्री जानकी
जी निमन्नित मुनियो के देह में श्रपने श्र्यंगुर दगरणकी
का दर्शन करके लिन्जित होकर खिप गई थीं।

त ब्राह्मणों के देह में अदूर्य रूप में आकर पिंगडभी-जनादि का तत्व (सारांश) ग्रहण करके तुप्त होजा-ते हैं। इस की सिद्धि में वेद,का प्रमाण यह है कि-

येऽग्निदग्धा † येऽनग्निद-ग्धा मध्येदिवः स्वधया मादय-न्ते। तेभिः स्वराडससुनोतिमे-तां यथावशं तन्वं कल्पयस्व, मंत्र १४॥

ऋग्वेद अ० ६ घ० १८ मरड० १० अन्० १ स्०१५ प्राप्ट । भाग्र यज् अध्या १८ मं १६ में (प्रतिन-च्वात्ताः) यह पद हैं॥

स्रन्ववार्थ .- ये (स्रग्निद्ग्धाः) श्नशानमा-

प्ताः ये च (स्निग्निद्ग्धाः) श्मशानकृत्यरिहतः ये च (दिवो) द्यु लोकस्य मध्ये स्वधया (मादयन्ते) त्प्ताश्वरन्ति, है (स्वराट्) दीप्यमान अग्ने ! (तैः पित्मि) तेभ्यः पित्भय (प्रमुनीतिम् (प्राणयुक्तां (ए-

करपयस्य । महा पर को अग्निदम्य पद से कीवित वितरी का प्र-

ताम्) भक्षण योग्या तन् (ययावश) यथा कामं त्व

एक करें तो उन महाययो को अवश्य ही द्वितीय शध्याय में उक्त पद की मीमासा देख कर प्रपना सम्देह निरुत्त क-रना चाहिये ॥

भाषा-हे स्वराट्-दीप्यमान अग्ने! (ये अग्नि-दग्धाः) जो हमारे पितर अग्नि में दग्ध हुए प्रमणान **पंस्कार को प्राप्त हुए हैं फ़ौर (येऽनिग्नदग्धाः)जो** प्रमणान संस्कार को [संन्यासी होने के कारण वा कि ही अन्य कारण है] नहीं प्राप्त हुए हैं और (दि-बोमध्ये) अन्तरिक्ष लोक में वा स्वर्ग लोक में स्वधा मन्त्र संस्कृत अञ्चली प्राप्ति से जो (मादयन्ते) तृष्त हो कर विचर रहे हैं (तैं: पितृभि:) तिन पितरों के प्रति (अधुनीतीम्) प्राणयुक्त (स्ताम्) हवि भक्षणके योग्यता वाली इस (तन्म्) देहकी कल्पना करो जिससे (यथाकायम्) यथेष्ट यहां खाकर हवि भक्षण करें। इस वेदमन्त्र के सीधे २ भाषार्थते स्पष्ट सिद्ध है कि स्वर्गादि उत्तम लोकों में जो प्रत्यन्त प्रयक्तमाँ से गये हैं वे हमारे पितर अग्निदेव की कृपा एवं महायताचे मूक्म श्रोभन देह धारण करके यथेष्ट यहां हमारे पितृयज्ञ (ग्राद्ध) में आ़कर हिव भक्षण करते हैं। इचलिये नीचे लिखे वेदमन्त्रों से पुरुषदात्र समर्थ पितरों को यसमें यहां बुलाने के लिये तथा मध्यम यानी साधारण पुर्यकर्म से म-न्द्ययोनिमें प्राप्त एवं (निकृष्टं) पापकर्मान्तार पशुपक्षीसादि योनिमें प्राप्त समर्थ पितरोंकी व-हांही उसी योनिमें तृष्त करनेके लिये वा उन्होंकी उच्चगति करने के लिये ग्राह्मकर्म में अग्निदेव की मार्थना पूर्वक स्थापना करके उस में आहुती दी

कराया जाता है। सो ययां—

जुणन्तंस्त्वानिधीमस्युणन्तः समिधीमहि । जुणन्नु'ण्तः स्रावंह

प्रितॄन्ह्विष् अत्तवे॥ ७० । ग्इ०

अध्यारं १९॥ ७०॥ मन्त्रार्थ – (उग्रन्तः त्वा निधीमहि) हे अग्ने! तुम्हारी इच्छा करते हुए हम तुमको स्थापन करते हैं (उग्रन्तः समिधीमहि) यज्ञ की इच्छा से तुम

को प्रज्वलित करते। हैं (उँग्रम्, उधतः पितृम्, ह-विषे, अत्वर्वे, आंवह) चाहते हुए तुम, हिव चा-हने वाले हमारे पितरों की ईप यद्य में हिव भन्नण करने के लिये बुलाओ ॥ ९० ॥ और——

ये चे ह पितरो येचनेह यां इचे विद्य याँ शार्ज च न प्रविद्य । त्वं वेत्य यतिते जातवेदः स्व-धार्भिय्ये ज्ञु सुस्तिज्ञ पस्व।६०॥

धाभिष्ठये ज्ञश्च सुस्तंतञ्ज पस्त्र १६०॥

यज्ञुः कं १९॥ ६०॥

जो मेरे पितर इंचे लोक में हैं स्रचीत साधारण पुरुष वा निकृष्ट कर्मानुसार मनुष्य वा पशु

पहनादि योनि में प्राप्त होकर इस पृथ्वीलोक में रहते हैं। फ़ीर जो पितर इस लोक मे नहीं हैं फ़-चात् फ़ल्पन्त उत्तम पुराय से स्वर्गादि उत्तम लोकों में हैं (च, यान्, विद्वः च, यान्, न, प्रविद्मः) फ़्रीर जिन पितरोंको हम जानते हैं, तथा जिन को स्म-

रण न होने से नहीं जानते हैं, (जातवेदः, ते, य-ति, त्वम्, उ, वेत्य,) हे अग्ने ! वह पितर जितने हैं वे तुम हीं जानते हो (स्वधाभिः, सुम्नुतं, जुप-स्व) सो पितृयच द्वारा उन पितरों के तृष्त्यर्थ अ ह अन्न को सेवन कारो, ॥ ई०॥

यहां ''इह,, शब्द में जीते पितरों का ग्रहण नहीं होता किन्तु जिन्हों ने कर्मवग्र इस लोक में देह धारण किया है अन्यया "न "प्रविद्म,, इस का शब्दार्थ नहीं घट सकता ''विद्म,, शब्द का अर्थ यह है कि जिनको मैं अपना पितर जानता है परन्त कहां हैं यह नहीं जानता है अयवा जिन

शर्म यह है कि जिनको मैं अपना पितर जानता हूं परन्तु कहां हैं यह नहीं जानता हूं अयदा जिन को जानता हूं बाप-दादे-परदादे, जिन को नहीं जानता हक्कीब पीढ़ी तक यह तात्पर्य है। तथा-श्रमंग्ने कव्यवाहन त्विञ्च-

नमन्यसे र्यिम् । तन्त्री गीर्मिः श्र-वार्यन्देवत्रापनया युर्जम् ॥६४॥

वज्ञुठ, स्वर्ण ५४ ॥ हे पितरों को हव्य पहुंचाने वाले अग्ने ! तुम भी जिम्र हवि रूप अन्नको उत्तम जानते हो (नः, तं, गीर्भिः, श्रवाय्यं युजम्, देवजा, आपनय) इस लिये हमारे उस वषट्कार स्नादि वाणियों से सुनने योग्य्ं उचित हिंद को पितृ देवताओं के मित सब स्नोरसे पहुंचाओं ॥ ६४ ॥

इत्यादि वेदमन्त्रों के आग्रय में स्पष्ट सिद्ध हैं कि अग्नि देवता भी स्वधारूप अन्नकी आहुतियोंको सूक्ष्मरूप में लेजा कर वहां पितरों के प्रति पहुंचा देता है।

समाजी-परिडत जी महाराज! यह भी तो सुनास्रो कि जब यह किसी को भी मालूम नहीं कि

हमारे पितर स्वर्ग में गये वा नरक में तब उन्होंको अन्न चस्त्रादि भेजना क्या विना पते के पुरुष को खांक द्वारा वस्तु भेजनेके तुल्य नहीं और ऐसी अवस्त्रा में उन को भेजने के लिये अन्न वस्त्रा ब्राग्नणों के हवाले करना और फिर उन की रसीद का न

स हवाल करना झार किर उन का रसाद का न पहुंचना क्या यह सन्देह पैदा नहीं करता कि न जाने यह माल भेजने वालोंने ही खा लिया हो? इसलिये हमारे पितरों से माल पहुंचने की रसीद न मिलनेसे हमें विप्याय केंसे हो कि ठीक २ उन्हों को मिला?

मनातनी-महाग्रय जी ! यह तो मैं पहिले शास्त्र ममार्थों स्पष्ट चिद्ध करचुका हूं कि हमारे मृत पि-

मनाषाच स्पष्ट चिद्ध करचुका हू कि हमारे मृत पि-तर•कर्मानुचार चाहे किसी भी उच्च, नीच, योनि में वा स्वगं नकेंमें क्यों न गये हों तो भी पितृसोक के श्रिष्ठाता वसु−स्द्र−श्रदिति सुतादि पितृदेव

एवं अग्नि देवता भी, अपने योगयलचे तथा अली-किक सामर्थ्य से उन पितरों को जानकर वहां ही उन्होंको तृप्त करते हुए मुखभागी करते हैं। वाकी रही हम लोगोंको पूरा २ विश्वास हो जानेके लिये उन्हों की "रसीद,,। सो यह भी ठीक नहीं क्योंकि

श्राद्धका संकल्प करते ही समय रसीद लिखी जाती है कि सृष्टिके आरम्भसे वैवस्वतादि अमुक २ मन्व-न्तर, चतुर्युगी,युग, सवत्वर, तिथि, वार, मुहूर्त्तादि स-

मयमें, अमुक देशमें, अमुक वर्ण, नाम गोजादि, वाला में पुरुष वा स्त्री अमुक २ गोत्र(दि वाले ब्राह्मण को श्रमक २ पिता मातादि के निमित्त श्रमुक वस्तु दा भोजन वस्तादि देता हूं। वहां उस समय बैठे सब स-नुच्यों की साक्षी वा गवाही लिखी जाती है। सौर

देवता लोग भी उसमें साझी लिखे जाते हैं इसी वि-चार से मनुजी ने कहा है कि---मन्यन्तेवेपापकृतो नकश्चित्पश्चतीतिनः। तांस्तुदेत्राः प्रपश्यन्ति स्वस्यैवान्तरपूरुपः॥

मन० अ० ८॥ पापी लोग मानते हैं कि यहां एकान्त में हम को पाप करते कोई नहीं देखता, परन्तु यह भूल है क्यों कि उन की देवता लोग और अन्तर्यामी ईव्रवर

देखा करता है। जी देवादि पाप के गवाह होते हैं वेही भ्राद्वादि पुरवकर्म के भी गवाह हो जाते हैं।

वह रसीद आकाशमण्डल रूप कागन में वाणीरूप स्याही से तथा वायुरूप लेखनी से लिखी जाती है।

जिये फोनोग्राफ के छोटे से साकाश्रमें बोले हुए शन्द (राग) भर जाते हैं वैसे ही श्राद्धादि के दान की यह संकल्पात्मक रखीद महाकाश्र में भर जाती है इसीलिये पतञ्जलि मुनि जी ने शब्दों का स्थान स्नावाश्र (स्नाकाश्रदेश: शब्द:), को कहा है। स्नानकाश्र के ही प्रदेशान्तर में स्वर्गादि किसी मोनि में श्राद्धादि दान का सुख सन्तोय प्रसन्नतादि रूप फल जब पितरों की माप्त हो जाता है तब यही पाने वाले के उस रसीद पर हस्ताक्षर होते हैं। और जब शाद्ध करते ही समय वा करचुकने पर मन वाणी शरीर में वा स्त्री पुत्रादि सब कुटुम्ब में सर्वंव कुश्रस्ता प्रसन्नता स्नानन्द मंगल दीख पड़े तब यही शाद्धफल पाने की हस्ताक्षरी रसीद स्नार्क्ष तब यही शाद्धफल पाने की हस्ताक्षरी रसीद स्नार्क्ष

पडलस्य रसीद पर दस्तखत हो आये। श्रीर यदि श्रमधन्नता अमंगलादि प्रतीत हों तो मानलो कि सपल नहीं हुआ और रसीद पर दस्तखत नहीं किये
तब यजमान तथा श्राद्धादि भीक्ता ब्राह्मण का श्रास्लमर्यादा से विसद्ध करना रूप श्रपराध दोनों वा
किसी एक का हो सकता है उस दशामें केवल ब्राग्रण का ही श्रपराध मान लेना भी इसतर्फी उडारो कर देना है। श्रमिशाय यह है कि रसीद नाम

विश्वास हो जाने का है-पदि विदेश से आई रसीद पर भी विश्वास न हो तो वा अन्देद हो जाय कि अन्य कैंसे हस्तासर अन्य भी वना सफता है और फिर पमद्वारा पूर्वने पर भी उसी और से लिख

मान लेना चाहिये अर्थात् जानो उसी आकाश म-

सकता है कि हां मुक्ते रु० मिलगये तब विश्वास न हो तो यहां की रसीद भी रही जानो खीर प्रव्दम-माण रूप वेदादि शास्त्रों पर जिनका अठल विश्वास है उन को संदिग्धात्मक रशोद की श्रपेक्षा (इच्छा वां जरूरत) ही नहीं है। यदि किसी ऐसे निकट-वर्ती। अथवा परमं मित्र द्वारा कोई वस्तु समाजो भनुष्य अपने जीवित विता के पास भेजे कि जिस का सर्वांग में पूरा २ विश्वास हो तो वहां समाजी कदापि रधीद नहीं मांगेगा और मांगे तो जानी उस चक्र वा परम मित्र का पूरा २ विश्वास नहीं तव वह चंक वा बनावटी भी रसीद पेश कर सकता है। अ-न्तमें जबतक विश्वास न करो सभी रसीद आदि रही हैं जब विश्वास टूढ़ होगया तब रसीद की आवश्य-कता सनातनधर्मियों की नहीं है। और सर्वशुद्ध स-नातन धर्मावलम्बियों को वेदादि शास्त्रों पर दह विश्वास है कि इस निम्नदर्शित वेदमन्त्र में अग्नि-देवने हमारे पितरींको श्राद्धान पहुंचाया । श्रीर इसी ही वेदमन्त्र की हमारे पितरों की तरफ से ईखर द्वारा लाई हुई भन्नी रसीद समभते हैं लीर यह भी विश्वास करते हैं कि ब्राह्म करने से हमारे पितरों की तृष्ति, तथा निःचन्देह चद्गति होती है। स्त्रीर भाद्ध करने वाले हम लोगों को भी यथायोग्य धन पुच-स्वर्गीद मुंख प्राप्त होता है--यवा सञ्ची र-सीद कप घेदमन्त्र-

त्वमग्न ईडितो जातवेदोऽवा-ड्ढव्यानि सुरभीणि क्रत्वी, प्रादाः पित्रभ्यः स्वध्या ते ऋक्षत्रद्धि त्वं देव-प्रयता हवीं षि,,।

ऋ० अ० ६ व० १८ मगढ १० अनु० १ सू० १५ अष्ट १ वर्ग शुक्तपज्जु प्रा १८ में ६६॥ कृत्र यज्ञु का० २ प्रा०२६ प्रानु

अन्वयार्थ:-हे अग्ने ! त्वमस्माभिः (ईडितः)

स्तुतः हव्यानि ग्रस्मदीयानि मुगन्धीनि कृत्वा (ग्र-वाट्) ख़वासीत् प्राप्तवानिव ऊड्ह्वा च (स्वधवा) पितृमंत्रेण पितृभ्यः (प्रादाः) दत्तवानिस ते च पि-तरस्तद् हविः (स्रक्षन्) भित्ततवन्तः, हे जोतवेदस्त्व-मपि (प्रयता) पवित्राणि हवींपि (ग्रद्धि) भक्षय ।

भाषा—हे ग्रग्ने ! हम करके स्तुत हुये (त्वम्) न्नाप हमारे दिये हुए हव्य को सुगन्धित कर हवन द्वारा स्वीकार किया, और स्वीकार कर फिर (स्वध-या) पित्त्रिय स्वधा इस मंत्र से हमारे पितरों के प्र-

ति प्रदान किया है स्रतः स्नाप करके दिया हुसा जी हिव है उस हिव को (ते) वे हमारे पितर भन्नण क-रते हैं । हे (जातवेदः) दिव्यप्रकाशस्वरूप अग्ने! (त्व-म्) स्नाप भी इन शुद्ध हिवयों को भक्षण करो स्नीर-

''उदीरतामवर उत्परास उन्म-

ध्यमाः पितरः सोम्यासः । ऋसुं

यईयुरवका ऋतज्ञास्ते नोऽवन्तु पितरो हवेषु ॥ म्हवेद बाजवने० व्य०१८ मर्ग ४८॥

अन्वयार्थः—अवरेऽरिमन् मूलोकेऽविध्य ताः पितर उदोरतामूध्वं लोकं गच्छन्तु । मध्य-

मा मध्यमस्था अन्तरिक्षस्थाः पितरः उदीरतां पर् रासः परलोकेचु लोकेऽवस्थिता देवत्वं प्राप्ताः पि तर उदीरतां तताऽ प्यूष्वं ब्रह्मलोकादिषु गच्छ-

न्तु । कोदृशाः पितरः सोम्यासः शान्तिशोखाः सो-मपानाहां वो। ये च असुमीयुर्वायुरूपं प्राप्ताः वा-युकायाः सूक्ष्मादृश्याः स्यूखित्रहाः । अवृकाः

युकायाः सूक्ष्मादृश्याः स्यूलावग्रहाः । अवृकाः शत्रुमावरहिताः समदर्शिनः ऋतज्ञाः सत्वज्ञाः यज्ञज्ञा वा स्वाध्यायनिष्ठाः वाते नेाऽस्मान्हवेषु आहूानेषु अवन्तु रक्षन्तु इति प्रार्थयामः॥

भाषा-(अवरे) इस भूलोक में रहने वाले पि-तर लोग (उदीरताम्) जपरी खर्गलोक की प्राप्त हों (सोम्यासः) आन्तिशील चन्द्रलोक वासी वा यज्ञों में सोमपान करने वाले (मध्यमाः) मध्य-

यज्ञों में सोमपान करने वाले (मध्यमाः) मध्य-अन्तरिक्ष लोकस्य पितर (उदीरताम्) जध्वंगति को माप्त हों और (परायः, उत्) * स्वर्गलोकस्य * स्वर्गादि लोकों में रहने वाले पितरीका गरीर वा-

युकाय मूक्ष्म आहर्य होता है यह बात उपरोक्त "आकु य हैयुः" इस बेद वाक्यार्य से स्पष्ट सिद्ध है कि जिन्होंने के-बल प्रायमात्र को ही धारण किया है। यहा स्यूल गरीर का स्पष्ट निपेष है। वे पितर कैंसे हैं कि (असं य ईयुः) जिन्होंने प्रा-गमात्र को धारण किया है अर्थात् वायुकाय मुक्त अदृश्य ग्ररीर वाले स्यूल मनुष्यादि कासा शरीर जिन का नहीं है। (स्रवृक्ताः) जिन का कीई शब नहीं (ऋतज्ञाः) जो सत्य की वा यज्ञ की जानने बालें हैं (ते, पितरः) वे पितर लोग (नः) ह-मारी (हवेषु) ग्राद्धादि में आवाहनके समय (अ-वन्तु) रक्षा करें यह हमारी पार्थना है ॥ प्रिय महाश्रय जी ! इन दो मन्त्रों से स्पष्ट िसद्ध है कि अग्नि देवता श्राह्मकर्म में निमन्त्रित ब्राह्मणोंके मन्त्रोच्चारणचे दी हुई पितरों के निमित्त आहुतियों को हमारे पितरों के प्रति वहां पहुंचाके फ़ाया, ज़ीर उन हमारे पितरों की क्रमपूर्वक जपर स्वर्गीद लोकों में गति होना एवं स्वर्गीद लोकों में रहने वाले हमारे सामर्थवान् पितर ब्राह्म से तृप्त हो कर हमारी रक्षा करना इत्यादि चय वार्तों का विख्वाच कराने वाली सच्ची साझीरूप "रमीद" जब हम को परब्रह्म द्वारा वेदादि शास्त्रों में लिखी मिली है तब हम की संसारी काग़ज़ी रसीद की कीनसी आवश्यकता है अर्थात् संसारी कागन के रसीद की उन नास्तिकों की छावरय-कता है कि जिन्होंका हमारे वेदादि धर्मशास्त्रीं पर विश्वाम नहीं। इस लिये कहा है कि "नास्तिकी षेदनिन्दकः" जिन्हों का वेदशास्त्री पर विश्वास

नहीं अर्थात् जो वेद की निन्दा करते हैं वेही म-नुष्य नास्तिक कहाते हैं इसलिये हम लोगोंको चा-हिये कि वेद से दिखाये गये गुद्ध ब्राद्ध को विधि-पूर्वक करके अपने मृत पितरोंकी मद्गति करें और वेद की आजाको पालन करके अपने हिन्दू मनु ष्यत्त्व को सार्थक करें यही मेरी पार्थना है ॥ समाजी-श्री परिडत जी महाराज ! यह तो बहुत अच्छी न्यायरूप सत्य दलील एवं वेद मन्त्रों के प्रवल प्रमाण से ठीक श्विष्वास दायक "रसीद" दिखलाई । अब मुभे टूड विखास हुआ लेकिन एक बात और पूछने की है सो यह कि मृतमाणी अपने किये पाप-पूर्व कर्मों के अनुसार यदि वह पशु, पसी वा यस, रासस, पिशाच अयवा देवता होजाय तो फिर ब्राद्धकर्म में हमारा दिया हुआ सीर, घी, हलुख़ा, लड्डू, पकवान कचीड़ी वगैरः पदार्थ उन्हों

को कैसे देहानुकूल रुचिकर (प्रिय) होंगे ! अर्थात् पगुओं की घास, मिस्ओं को मांस, राह्मस-पि-शाचों को रुधिर और मांस एवं देवताओं को अ-मृत वगैरः जब अपने २ शरीरों के अनुकूल मिय हैं तब हमारे दिये हुए उक्त सङ्डू कचीड़ी आदि पूरी पक्तवानीं से उन्हों की कैंसे रुचिपूर्वक तृष्ति होगी? श्रयात् मेरा दिया हुआ सब उन्होंके प्रतिकृत होने से वृथा ही जायगा ! ॥ सनातनी-महाशय जी! पबराख़ी मत कुछ

अपनी भी सक्क वा बुद्धि काममें लाखी केवल मन

करने ही पर सवार न हो जाज़ो ! महाशय जी सुनो जब कि हमारी खंबेज सरकार के राज्यमें भी ऐसा अन्धेर नहीं है कि जब हम लोग, जर्मन-फ्रान्स वा जापान, रिश्रया वगैरः विलायतींमें गये हुए अपने मित्र को यदि कुछ रुपया भेज देना चोहें तो क्या येही हमारे एक तोलेके वजन वाले विक्टोरिया बा एडवर्ड अयवा शहन्शाह जार्ज दी फिफ्य के मु-हर (प्रतिमा) वाले रुपये वा नोट वगैरह जी यहां पोस्ट आफिस में मनीआर्डर करके दिये जाते हैं वो क्या वहां उक्त विलायतों में भी हूबहू उनही मुद्रर वाले रुपये वा उस ही नम्बर वाले नोट ह-मारे मित्रको मिलेंगे वा उक्त रुपये नीट वहां अन्य बादगाहत होनेके कारण उपयोगी हो सकेंगे ? नही कदापि नही। क्योंकि जैसा २देश और जैसी २ राज्य-मत्ता होती है उस के ही अनुकूल रवाज व हुक्स मू जिब उसी ही सिक्क्षेव मुहर के गिनी वा पाउ-न्ड वर्गेरह रूपमें हमारे मित्रको मिल जायगे फ्रीर उपयोगी भी बन सकेंगे तो इसी ही रीति से पर-ब्रह्म के सदल राज्य में पितृलोक के सधिष्ठाता वस्वादि पितर यहां श्राद्धमें पोस्टमास्टर रूप ब्रा-हाणों के मार्फत हमारे पितरो के निमित्त दिये हुए लड्डू-पूरी-कचौरी वगैरह माद्वीय पदार्घ के सा-रांग्र को ग्रहण करके हमारे मृतिपतरों के प्रति चाहे षे किसी भी योनि में पशु, पक्षी, राक्षस, देवतादि क्यों न हुए हों तो उसी ही योन्यन्तर्गत देहके छ-नुकूल करके दे देते हैं। इसलिये हमारे (प्राप्त) यानी पूर्ण धर्मात्मा पूर्ण विद्वान् ऋषि-मुनियों ने कलिकाल में नास्तिकों द्वारा उठने वाले ऐसे नि-कम्मे खोटे २ मवालोंको निर्मुल करनेके लिये और स्नास्तिक जनों की ज्यादा २ सन्तोप वा विश्वास दिलाने के लिये महाभारतादि धर्म इतिहासों में स्पष्ट करके लिखदिये हैं कि-देत्रीयदिपिताजातः शुमकर्मानुयोगतः । तस्यात्रममृतंमृतवा देवत्वेऽप्यनुगच्छति ॥१॥ गान्धर्वेभोग्यह्रपेण पशुत्वेचतृणंभवेत्। : श्राद्वात्रंवायुह्मपेण नागत्वेष्यनुगच्छति ॥२॥ पानंभवतियक्षत्वे राक्षसत्वेतथाऽमिषम्। दानवत्वेतथामांसं प्रेतत्वेहिधरोदकम् ॥३॥ मनुष्यत्वेऽक्रपानादि नानाभोगरसीभवेत ॥ महाभारत-श्रीदेवन मुनीश्वर के वचन ॥ अर्थात् यदि मनुष्य शुभकर्मानुसार मरकर देवता वनेगा तो उस की वह बाद्ध का सन्न समृत रूप में-प्राप्त होता है, एवं गन्धर्व जाति में भी-ग्य रूप मे, पशुगीनि में (तृष) घाच रूप मे, नाग-योनि में वायुक्त से, यक्षयोनि में मदिरा रूप से. राक्षमयोनि में-आमिष रूपमे, दानवयोनिमें मांस रूप से, प्रेतमोनि में कथिर रूपसे और मनुष्ययोनि में अन पानादि रूपसेवह श्राद्वान प्राप्त होता है। इसलिये हम लोगों का जो सात्त्विक शुद्ध पवित्र

सन्न घृत-दुग्धादि मिय पदार्थ हैं वे ही स्राह्मकर्म में मुपान झाझणों के मार्फत मृतिपतरों के निमित्त देना चाहिये द्रवलिये—शास्त्र में कहा है कि—'यदन्न: पुरुषो भवति तदन्नास्तस्य देवताः, -ं प्रयीत् जिस पुरुषकी जो स्वाभाविक # खुराक है वही देव-ताओं के प्रति भी स्रपंख करे॥

तात्पर्य यह है कि हम मनुष्यमात्र की गुद्ध सात्विक अन्न, घृत, दुग्ध, फल फूलादि खुराकरे ही आद्धादि गुभ कर्मों में पितृ-देवों की पूजा करनी चाहिये और उस हमारे दिये हुए पदार्थों को सूक्षम कर्म में लेजा कर पितृदेव हमारे पितरोंके प्रति य- यादेहानुकूल करके तृष्त करते हैं और हम लोगों को भी आयीर्वाद देकर आनन्द सुखका भागी क- रते हैं ॥ ॐ तत्सदिति ग्रम्॥

इति श्री श्राहृपिरमीमांसायां मृतपिरुभ्यो भोजन-प्राप्त्यर्थ शास्त्रोक्त मार्गप्रद-र्शने चतुर्थोऽध्यायः॥

इन मनुःयमात्रकी स्वाभाविक यही प्रव-पृत-दुग्ध -

फल फूलादि सात्विक शुद्ध पवित्र खुराक है। श्रीर यह न समफना चाहिये कि-जो मासाहारी मनुष्य ई वे मास स-भेरह देवताओं के प्रति श्रपंत करें-नहीं नहीं, कदावि नहीं!! हम मनुष्यमात्र की स्थामाविक खुराक मांस समेरह कदावि

महीं है देखो मेरा बनाया हुआ "मांसमत्तवानियेथ" नामक ट्रैक्ट कि जिस में सूब विचार पूर्वक यह सिंह किया गया है कि मनुष्यमात्र की स्वामाविक सुराक श्रम्न है ॥

त्र्रथ पञ्चमोऽध्यायः ।

समोजी-प्रीपरिडत जी महाराज! प्रव कृपा

करके यह बताओं कि पितृलोक इस मनुष्यलोक से भिन्न कोई अन्य लोक है क्या और वह कहां स्थित है ? तथा उस लोक के अधिष्ठातृषितृदेशों का ग्ररीर कैसा है और उनका राजा कीन है ? तथा हे महाराज! द्यापाल! यह भी बताइये कि हम मनुष्य मात्र को इन पितृलोक निवासी पितृदेशों के पूजन सत्कार (ग्राह्म-तर्पण) करने की क्या आवश्यकता है ? अर्थातृ श्राह्म तर्पण न करने से क्या कोई दोष वा हानि है ?

सनातनी-महाशय जी ! ये आप के प्रश्न यथा-र्थ और ठीक २ हैं। अब आप श्रद्धापूर्वक क्रमसे इन प्रश्नों का वेदादि सच्छास्त्रप्रमाणों से एवं प्रवल यु-क्तियुक्त समाधान श्रवण करो ॥ यथा-प्रथम आप का प्रश्न यह है कि पितृ-

यथा—प्रथम स्नाप का प्रश्न यह है कि पितृ-लोक मनुष्पलोक में भिन्न कोई सन्यलोक है स्नौर यह कहां है ? मो हे महागय जी देखो सतपय ब्राठ बेद में स्पष्टरूप में दिखलाया गया है कि-पितृ-लोक एक स्वतन्त्र लोक है। जैमें कि---

अथ त्रयोयावल्लीका मनुष्यलीक: पितः लोको देवलीक इति । शतः ब्रा० १४ । ३ । २४ ॥ प्रचित्त तीन भोग भूमियें हैं-मनुष्यलोक, पि- तृलोक और देवलोक । इनमें जीव कर्मानुसार मा-प्त होता है। स्रोर केवल निषिद्ध कर्मों का कर्त्ता जीव नरक को ही प्राप्त होता है। इससे सिद्ध हुआ कि पितृलोक, मनुष्य और देवलोकों से जुदा एक स्वतन्त्र लोक है। तथा च "दक्षिणाप्रवणोवै पितृलोकः" ^{शतः} व्रा० १३। दाष्ठाः॥ "कर्मणापित्छोकः" वृहदारण्यक। दक्षिण दिंशामें पितृलोक है। शुभकर्मी करके

पितृलोक में वास होता है। यथा--तेवाएन आहूतीहूते उतक्रामतस्ते अन्त-रिक्षमाविशतस्ते अन्तरिक्षमेवाहवनीयं कुर्वाते

शतपथ ब्रा० ११। ६। २। ६॥ इत्यादि ॥ तथा—अथ ये यज्ञेन दानेन तपसालोकं जयन्ति ते घूममभिसमर्चन्ति, धूमाद्रात्रिं रात्रेपक्षीय-माण पक्षमपरपक्षान्यान् पणमासानदक्षिणादि-

त्य एति मासेभ्यः पितृलोकमित्यादि ॥ शतपथः ज्ञर्यात्-मरण समयमें इस माणीकी तीन गति होती हैं, देवलोक पितृलोक, अधोलोक, उसमें पि-तृलोक का गमन कहते हैं कि-यज्ञ दानादि कर्म करने वाले मनुष्य भूप से रात्रि में कृष्णपक्ष, उस से दिसिणायन और वहां से पितृ लोक को गमन करते

हैं। और जो सत्कर्मानहीं वे कीटादि योनि की माप्त होते हैं। इस से स्पष्ट सिद्ध हुआ कि पितृ- यज्ञादि शुभ कर्म करने वाले पितृलोकादि उत्तम लोकोंमें जाते हैं। छौर पितृलोक एक स्वतन्त्र चि-रकाल स्नानन्दप्रद लोक है। यथा—

रकाल आनन्दप्रद लोक है। यथा—
(स एक: पितृणां चिरलोक लोकानामानन्दः०)
तेसिरीयोपनिषदः॥
सो यह पितृलोक (विष्ध्यभागे पितरो वसन्ति)

्रिक्षान्तिकरोगको] चन्द्रलोक के भी जगर है जहां पितरोंका नि-वास है। तथा— उदन्वतीद्योरवमापीलुमतीति

मध्यमा । तृतीया ह प्रद्योरिति

यस्यां पितर्त्र्यासते ।
अथर्व वेद का० १८ अनुः २ म०॥ ४८॥

इस मन्त्रका सम्पूर्ण भावार्थ आगे द्वितीय श्र-ध्याय में स्पष्ट करदिया है वहां ध्यान देकर पढ़ेंगे तो अञ्बी तरह ज्ञान होगा कि "मद्यों" नाम वाले

स्नाकाश के तीसरे भाग में पितृलोक है जहां पितर देव रहते हैं॥ सन्न स्नापका द्वितीय प्रश्न है कि पितृलोक नि-

वासी पितरों का शरीर कैंचा होता है और उन्हों का राजा कीन हैं? सो है महाश्रम जी! इन पितृलोक निवासियों का शरीर वाम्तत्व सधान हैं। यथा-

ग्राप्यतेजसवायव्यानि ली-

कान्तरे प्रारीराणि । अवर्ष ३। १। २ ।२०॥

स्रयात्-जलतत्व, तेजतत्व स्रयवा वायुतत्वप्र-पान गरीर वनकर, जीव लोकान्तरों को जाता है। पार्चिवतत्व (पाञ्चभौतिक पृथिवीतत्वप्रधान स्यूल) ग्ररीर से नहीं जाता है। इससे स्पष्ट सिद्ध हुआ कि जीव वायु स्नादि तत्वप्रधान गरीर धारण क-रके पितृ स्नादि लोकान्तरों में जाता है इससे बढ़ां के निवासियों का ग्ररीर स्नवश्य ही वायु स्नादि तत्व प्रधान है। स्नर्धात् वायु कायरूप वे पितर हैं। स्नीर वायु इन चर्मचस्नु यानी सांसारिक नेनों से देखने में नहीं स्नाता है इसलिये ये पितर वायुतत्वप्रधान सू-हम ग्ररीरधारी होने से हरएक मनुष्य को देखने में नहीं क्नाते हैं इसलिये बेदमें स्पष्ट दरग्राया है कि-तिरह्नववै पितरी मनुष्येभ्य: - ग्रवपण २(३।॥।३१॥

मूहम होने के कारण वा यथेच्छाचारी होनेके कारण पितर मनुष्यों से अदृश्य खिपे से होते हैं। इस से सिद्ध हुआ कि जो सूहम अदृश्य हैं जो सर्व साधारण मनुष्यों के दृष्टिगोचर नहीं होते से पितर अवश्य हो सूहम ग्रदीरी वायुकायकप होने से अदृश्य हैं परन्तु पूर्ण गुद्ध-पूर्ण ग्रद्धा भक्तियुक्त, पूणधर्मातमा-सत्यवादी आहितक मनुष्यको से पितर सार

हात भी दीख पड़ते हैं और दर्शन * देते हैं। इस लिये उक्त मुित में "इव" शब्द कहा है। यही वा-युकाय सूक्ष देहधारो पितृदेव श्राद्धकर्ममें आवाहन मन्त्रों से [तत् पितृलोकाड जीवलोकं अभ्यायन्ति] गत्रतप ब्रा० ९ कां १३ म० ४ कं० ६॥ * एकवार श्रीमर्यादापुरुपोक्तम (परमात्मा के पूर्वा-वतार) श्रीरामयन्त्रजी महाराज ने बन में पिता श्री दश-रथ जीका एकोद्दिष्ट श्राद्ध किया—यह कथा बड़ी मनोहर है-श्राद्धसमय में श्राद्धभोक्ता मुनियों के देह में श्रीजानकी जी (सीताजी) ने अपने स्वगुर दशरयजीके दर्शन किये। श्री वाल्मीकीयरामायशे— म्पासुवलितेमूर्ये कालेकुतुपकेतथा। श्रायाताश्वयस्वर्धे ये रामेश निमन्त्रिताः॥ १॥ तानागतान्धुनीन्द्रृष्ट्वा बैंदेहीननकात्मजा।

तानागतान्मुनीन्द्रृष्ट्वा वैदेहीननकात्मजा । श्रपासपंत्रतीदूरे विप्राणां मध्यत स्थिता ॥ २॥ अन्यत्र च गतासाध्वी मन्येचाहंत्रपान्विता । किन्ताबद्गीजयेविप्रान् सीतामन्वेषयामिकिम् ॥ ३ ॥ गतेपद्भिजमुख्येषु प्रियांरामी ब्रवीदिदम्। किनवें सुम् नष्टासि सुनीन्द्रपूर समागतान् ॥ ४॥ एवमुक्तातदाभन्नां त्रपयाधीमुखीतथा । मुञ्जन्तीचाश्रुसङ्घात राघव वाक्यमञ्जवीत ॥ ५॥ वितातवमयादृष्टी ब्राह्मकाङ्गेषु राघव।। हृष्ट्रात्रपान्वितावाहमपक्रान्तातवान्तिकात् ॥ ६॥ याहराचापुरादृष्टा सर्वालद्भारम्पिता । सा स्वेदनलदिग्धाङ्गी कथ पश्यामि भूनिपम् ॥ ७॥ स्वहस्तेन कय राज्ञे वानेय भोजन त्विद्यु । दासानामवियद्दामा नीपभुञ्जन्ति कहिंचित् ॥ ८ ॥

पितृलोक से जीवलोक अर्थात् मनुष्यलोक में आते हैं। इसलिये वेदमें आज्ञा है कि-

भावार्थ — कुतुपकाल (अपराह्ल) में जब श्रीरामधन्द्र जी श्राह करने लगे तो जिन २ ऋषियों को निमन्त्रण दे आये ये वह सब मुनिमगहली खागयी, उन्हें खाता हुआ देखकर जानकी जी उठकर भागगई श्रीर ट्रर जाकर लता पताओं में अपने को छिपालिया। तब श्रीरेपुनाय जी की बहा आधर्ष हुआ कि आज जानकी जीने मुनियों से क्यों परदा किया। अब मुक्ते क्या कर्त्तव्य है, जानकीको ढूंढू या मुनियोंको भोजन कराऊं। अन्त में यही स्थिर किया कि त्राहकाल का लोप न होते। **थिगडदान करके ब्रह्मभोज** पूर्ण किया-आशीर्वाद देती हुई सब ऋषिनगहली चलीगई। उन सब के विदा होते ही जानकी जी आगयीं, तब श्रीराम-चन्द्र जी कहने लगे कि हे प्रिये! तुम कहां गई थीं तुमने ऋषियोंका बड़ा अनादर किया और न उनको प्रशाम किया इतना सुनकर लज्जायमान जानकी नीचेकी मुखकर रौती हुई' बोली कि हो नाय ! ब्राह्मणोके अहु में महाराज श्री दश-रयजीको देखकर मै लज्जावश हो लता ओमें जा हिपी क्योंकि जिन प्रवसुर जी ने सर्व ऋलंकारों से मूपित सुक्ते देखा या प्राज उन के सामने जटा फ़ौर बल्कल धारण करे कैसे इस वेप को दिखाऊ गी इसी से उस समय छिप जाना ही छ-त्तम था। दूसरा-यह (वानेय) वनका भोजन अपने हाथ भे कैंसे परोस्गी-जिन महाराजको पूर्व पट्रस परोसती थी

इस कयाने सिंह होता है कि ब्राहमोक्ता ब्राह्मबोंके साथ पितर मूल्पक्रप में श्राते हैं श्रीर श्रीसती जानकी जी जैसी पूर्व पतिब्रतार्थे या पूर्व धर्मोत्मा मनुष्य ही उन पितरोंके दर्शन पा सकते हैं॥ उभे दिशावन्तरे विद्धाति प्राचीं च दक्षि-णां चैतस्याध्य ह दिशि पितृलोकस्य द्वारं द्वारे-वैनं पितृलोकं प्रपादयति ॥ गतपण्य व्राव्यः १३। ४। ४।४५॥

याम नगरादि से पूर्व और दक्षिण दिशा के बीच आन्त्रेयकोण में चतुष्कीण वेदी (रमग्रान स-निदर) बनावे, क्योंकि इसी आग्नेय दिशामें पितृ-लोक का द्वार है। ऐसा रमग्रान बनाने वाले अपने मृतक को द्वार के सार्ग से पितृस्लोक को पहुंचाते हैं।

दत्यादि चे स्पष्ट विदित हुआ कि पितृलोक एक स्वतन्त्र लोक है और वह दिवल में है-उनका द्वार आग्नेयकोण में ने हैं। वहां अत्यन्त पुण्यवान जीय जा एकते हैं तथा उन के निवामी पितृदेवोंका शरीर वायुकाय रूप सूक्त है। पूर्णेथमितमा-श्रद्धायुक्त सत्यवादी मनुष्योंको ही उन पितृदेवोंका दर्शन होता है। और वे ही वेदके आवाहन मन्त्रों में निमन्त्रित बायुकां के शरीर में अद्ध्य रूप ने वहां श्राह्मकांमें आते हैं। परन्तु दिव्य चसु वाले ही उनका दर्शन कर सकते हैं। दिता ।

हे महाशय जी ! सब साप यह भी सुनो कि उन पितृदेशों का राजा (स्वामी-प्रिधाता) कीन है दे॥ यथा--

ये समानाः समनसः पितरो एउच्चेत् । पत्रवैद वाजवनेव स्वर १८ तंत्र १४४

यमराज्ये० । यजुर्वेद वाजवनेव स० १८ मं० ४५॥

पितृलोक का राजा यमराज है। प्रर्थात् जो जाति तथा रूपादि करके, तुल्य एकचे प्रन्तः करणों वाले पितर यम देवता के राज्यमें रहते हैं। तथा-

यो नमार प्रथमी मन्यीनां यः प्रयाय प्रथमी लोकमेत्म वि-

वस्त्रतं संगमनं जनानां यमं रा-जानं हविषा सपर्यत ॥

अपवेशकात १८। अनुत्रे संत १३॥ अर्थ-पृष्टिके आरम्भ में जो मनुष्यों के बीज सबसे पहिले मरता है, और मरगानन्तर जो इस पि-

त्लोक में पहिले जाता है पीछे अन्य मनुष्य मरे के जिस के अधिकार में जाया करते हें इस कार्ण यह जतों का "संगमन" कहाता है [सम्यगम्छन्ति

पा जिसे के आधिकार में जीया करते हैं इस मार्जु वह जनों का "संगमन" कहाता है [सम्यग्गच्छन्ति जना यस्मिन् यत्स्विन्धी संस्कृतनस्तम्] उस वि-बस्वान् के पुत्र "यमराज" का है मनुष्यो ! हविर् यज्ञ द्वारा पूजन करो। जैसे पितर सनातन हैं अ-

र्थात् मनुष्योंके समान थोड़े २ कालमें उन का जन्म
मरण नहीं होता वैसे पितरों का वा मरकर पुष्यकर्मों से पित्लोक में जाने वालों का राजा यम भी
पितलोक में जाने समान प्रमान की स्पीता मन

पितृलोकं में जाने पश्चात् श्रस्मदादि की श्रपेक्षा स-नातन कहाते हैं। कभी जिन का नाग्र न हो ऐसे तो वायु प्रादि सूरम तत्व भी नहीं हैं क्यों कि मलय के समय में भी नहीं रहते इस से सापेक्ष नित्य वा स-नातन स्दमतत्वों के तुल्य पितर भी हैं। जैसे मनुष्य का गरीर पृथिवी तत्वप्रधान है और स्यूल है वैसे पितृलोक के राजायम का और पितरों का ग्ररीर वायुतत्वम्थानं सूरम है। जैसे मन्ष्यदेहोंका छथि-ष्ठाता एक २ जीवात्मा होता है वैसे पित्देहोंके साथ भी एकं २ अधिष्ठाता जीव है। इससे स्पष्ट सिद्ध हुआ

कि पितृलोक का राजा यमराज है। उक्तझं--स्रपेमंजीवा स्ररूधन् गहेम्य-स्तं निर्वहत परिग्रामादितः। मः त्यर्यमस्यासीद्द्तः प्रचेता ऋस्नू पिर्त्वभयो गमयाञ्चकार ॥ प्रथावैक कांक १८। **२**। २५॥

ध्र०-हे जीवाजीवित जना इमं मृतं देहं र्मृहिभ्यः पृथगपार्घ्यन् निस्सारयत संमिती ग्रा मार्त्परि-बहिनिर्वहत नयत । प्रचेताः प्रकृष्टयु द्विर्मृत्युर्यमंस्य दूत आसीदस्ति समृतस्यासून्

पित्रभ्यः पित्रंमात्राय गमयोञ्जकार गमयति व-र्त्तमाने एङ्छिटी॥ भावार्थः - हे जीवित पुरुषो ! इस मरेहुए मुद्री

श्रुरीर को घरोंने बाहर निकालो और उस की इस

याम से बाहर लें जाओ । यमराज का टून बड़ा बु-द्धिमान् मृत्यु नामक हैं जो मरें हुन्नों के प्राणों को पितर वनने के लिये यमलोक अर्थात् पितृलोक में पहुंचाता है। तथा—

ये नः पितुः पितरो ये पिता-महा य त्राविविशुस्त्रवन्ति सम्। तेभ्यः स्वराडसुनीतिनौ त्राद्य य-यावशं तन्वः कल्पयति॥

> अववं कां १८। अर्नु १ ३ । मं १५८॥ अर्थ-जो हमारे पिता के पितर पितामहादि

(दादे वगैरह) तथा प्रिपतामहादि कि जो मरणा-नन्तर महान् श्रन्तरिक्ष लोकमें प्रवेश करचुके हैं उन हमारे पितरों के लिये, प्राणों का ले जाने वाला स्वतन्त्र राजां यम कर्मानुवार उत्तम शरीर देवे । इ-

त्यादि वेदमन्त्रों से निःसन्देह सिद्ध हुआ कि पितृ-लोक का राजा श्रीयमराज है और वही मनुष्यादि प्राणीमात्र को (मरणानन्तर उत्तम-निकृष्ट कर्मानु-सार) यथायोग्य शरीर देकर सुख दुःखादि भुगाता है। इति॥

हे महाग्रप जी ? अब आप के उस संग्रय का भी समाधान किया जाता है जो कि पितृलोकनि-पासी पितरों के पूजन सत्कार (ग्राह्म-तर्पण) क- रने की क्या आवश्यकता है और न करने से क्या हानि वा दोष है। समाधान-प्रजापित वै भूतान्युपासीदन् प्रजान् वै भूतानि विनोधिह यथा जीवामिति। ततो देवा यज्ञोपवीतिनो भूत्वा दक्षिणं जान्वाच्योपासीदं स्तानक्ष्रीद्ध यज्ञो बीऽव्यममृतत्वं व अर्क् सूर्य्यो वो ज्योतिरिति ॥१॥ अर्थैनं पितरः प्राचीनावी-तिनः सत्र्यं जान्वाच्योपासीदंस्तानक्रवीद्ध मा-सि मासि वोऽशनं स्वधा वो मनोजवस्नन्द्रमा वो ज्योतिरिति ॥२॥ अर्थैनं मनुष्याः प्रावृता उ-पस्यं कृत्वोपासीदंस्तानक्षवीत् सायं प्रात्वोऽ-शनं प्रजावो मृत्युरिनवीं ज्योतिरिति ॥३॥ यनुष्यान्वकाव्यम्व इत्यरिश

भाषा भाषार्थ:-षृष्टिके छारम्भ में देवता तथा वितर खीर भनुष्य ये तीन प्रकार के भूत (जिस प्रकार में हमारा जीवन-सत्कार-पूजन हो सो प्रकार हमारा विधान करें) इस कथन के छिन्माय से प्रजापित (ब्रह्मा) के सभीप गये, वहां प्रथम देवताओं ने पन्नोपतीत को धारण कर दिस्यजान का भूमि पर पात कर ब्रह्माजिक सम्मुख उपस्थित होकर जीविका एवं सन्मान होने की याचना की तब प्रजापितने यह कहा कि यन्न छाप का छन्न है छम्त झापका जर्क (बीर्यपद) है और सुर्य छाप

के लिये प्रकाश है। १॥

फिर पञ्चात्-प्राचीनावीति (अपसध्य यानी

यज्ञोपवीत बार्ये तरंफ करते) हुए बांया (जानु) घोंटु पृथ्वी पर नवाय कर पितर लोग उपस्थित हुए, तब उन पितरों के प्रति प्रजापतिने यह कहा कि महीने २ भरमें १ * एकवार खमावास्याके दिन म्राप का भोजन होगा । तुम्हारे लिये कर्मकार अमें ''स्वधा" ग्रब्द बोला जायगा। वह स्वधा पदवाच्य वस्तु तुम्हारे लिये मनके तुल्य वेग वाला होगा। श्रीर चन्द्रमा तुम्हारा ज्योति अर्थात् तुमको प्रकाश पहुंचाने वाला होगा ॥ २ ॥

फिर प्रावृत "निवीतं करवलम्बितम्" ('प्रा-

* यह भी ध्यान में रहे कि मन्ब्यके एक महीनेका समय थितरों का एक दिन-रात सब शास्त्रोंमें माना गया है। इस लिये कष्कापत्तरूप रात्रिकी समाप्ति में प्रातः काल प्र-माबास्या की वितरोंकी अपने दिन के हिसाब से नित्य भी-जन निला और मानुष दिन के हिसाब से महीने २ में भी-जन निलना कहा गया है तथा ठक्त कथन से यह भी आया कि अपसब्य रहने वाले एव बांगा घोंटू टेक के बैठने वाले श्रीर महीने २ में जमावास्या को एकवार भोजन करने वाले तया चन्द्रमा जिन का ज्योति है वे वितर हैं। बा जिनका नाम वितर है वे उक्त प्रकार से श्रपसञ्चादि रहने बाले हैं। मनुष्य प्रति दिन भीजन करते हैं और पितर महीने २ में एकवार प्रमायास्या को भोजन करते हैं इस कारत पितर . मनुष्य महीं खर्चात् मनुष्यों से एयक् हैं। इस से भी स्यूल देह भारी जीवित वितरी का स्पष्ट संवडन 🧣 ॥

र्थात् गलेमें मालाकी तरह बज्ञोपवीत पहिने) हुए दोनों (जानुझों) घों दुझों को भूमि पर नवाय कर म-नुष्य उपस्थित हुए, तब उन से प्रजापित ने यह कहा कि सार्य और मातःकाल आपका भोजन होगा स्रीर पुत्र-पीत्रादि मजा स्नाप लोगों का मृत्यु है स्रीर स्रग्नि स्रापकी ज्योति यानी प्रकाश है ॥ ३॥ इत्यादि वेद की ग्रुतियों में स्पष्ट माचा दि-खायी वा कही गयी है कि हर एक वैदिक्षधर्माव-सम्बी मनुष्यमात्रका यह अवश्य कर्त्तव्य है कि ब्रह्मा जी द्वारा नियत किये यज्ञों से देवताओं का, तथा प्रत्येक महीनेकी समावास्या में पितृवज्ञ (भाद्ध) द्वारा पितरों का पूजन-सत्कार करें जिससे कि वे देवता और पितर अपने अभीष्ट (यानी मुकरिंर) पजन सत्कारको ग्रहण करके चन्तुष्ट होकर ब्रह्मा-जाकारी मनुष्योंके प्रति चन्तान-धन-धान्य समृद्धि न्नादि मुख देकर तथा उन्हों के मृतपितरों की भी सद्दगति करें वा करते रहें। खीर जो मन्ब्य वेद त्रया श्री ब्रह्माजीकी माचा उल्लघन करके वेदीक्त देव-पितृ यच्चादि कर्म नहीं करता वह ब्रह्माचा वि-रोधी होकर वेदमार्ग से अप्ट होकर अनादर और दु: खको माप्त होता है और उन देव पितरोंके को-पद्वारा वह मनुष्य अनर्थ और दोपका भागी होता है। तथा और भी स्पष्टरूप से वेद में दिखलाया गया है कि-

एप * पन्था एतत्कर्मेतद् ब्रह्म तत् सत्यं तस्मान प्रमाद्येत् तस्मान प्रमाद्येत्वातीयाद्व न ह्यत्यायन् पूर्वे येऽत्यायंस्ते परावभूवुः तदुक्त मृषिणा—"प्रजा ह तिस्रोऽत्यायमीयुन्यंन्या अन् कंमिमतो विविन्ने, वृहदु ह तस्यौ भुवनेष्वन्तः पत्रमानो हित्त जाविवेशः" इति, "प्रजा ह ति-स्रोऽत्यायमीयुरिति" या वै ता इमाः प्र-जास्तिस्रोऽत्यायमायंस्तानीमानि वयांसि व-ङ्गावगधाश्चेरपादाः, 'न्यन्या अर्कमिमतो वि-विन्ने, इति, ता इमाः प्रजा अर्कमिमतो निवि-

^{*} एतच्छव्दः सन्निहितार्थपरामग्रकः, सन्निहितद्वार्यो

गतीत आगामीचेत्येवं द्विविधः, तथा च (एष) उभयविपोप्पपेः (पन्याः) पुरुषार्थस्य मार्गः, साधनिमित्यावनु,
तदुभयं विस्पष्टं निर्दिश्यते (एतस्कमं एतदृश्रसः) अग्निमील
इत्यारम्य, अङ्गोक्ष्यम् इत्यन्तेनातीत सन्निहितयन्येन प्रति
पादितं यत्कमं तथा उक्तम्-इत्यारम्य आचार्य इत्यन्तेन सनिहितेनारत्यक द्वय क्षेणेश्वर यथेन निक्षितं यत्सगुणं निगुंगं पश्रसः एतदुभयनियुष्ठपार्थं साधनं, व्यवहार परमार्थं
भेदेनोभयनियसत्यम्, अञ्चलमंग्रव्देन सम्झानपूर्थकमनुष्ठानं
प्रसामग्रदेन च तद्विषयं शानमात्रं श्र्यते, यथोक्षस्योभयविपरम मार्गत्व द्ववित्वयोगव्यावृत्तिनन्ययोगव्यावृत्तिं च
विषये (तस्माल प्रमादीत) कर्मानुष्टानश्वस्मानगोरसंपाद्वनं
प्रमादः, तथा स्पाद्यत्वं प्रयुत्तेनाग्र्याक्स्यादिना तत्परि
त्यागोऽपि प्रमादः, ए तदुभयं च कुष्यांद्व चति-।

(ee) ष्टा इममेवाग्निं, वृहदु ह_{्तस्यी} मुवनेष्वन्तः इति, अद उ एवं वृह्दं भुवनेष्वन्तरसावादित्यः पवमानी हरित आविवेश, इति, वायुरेव पव मानी दिशो हरित आविष्टः"॥ क्राधेद-ऐतरेपारसमक २ प्रा० १ खं० १॥ भाषार्थ:-(स्तत्कर्भ-स्तद्ब्रह्म) यह जो पूर्वी-त्तर यन्यमे देव-पितृयज्ञादि कर्म स्रोर ब्रह्मका नि-रूपण किया है (एव पन्धाः) यही पुरुषार्थका मार्ग है अर्थीत् भोग मोसका देनेवाला है (स्तत् सत्यम्) यही बेदोक्त कर्म तथा ब्रह्मज्ञान अवश्य फल देनेसे सत्य है। स्रीर अन्य जो सर्वदिक अनुष्ठान हैं वह ग्रनर्थ पर्यवसायी होनेसे मिण्या हैं (तस्माद्ग प्रमा-द्येत्) तिस अस्नायमार्गसे प्रमाद न करे और (त-

न्नातीयाइ) तिस मार्ग का श्रतिक्रमण भी न करे किन्तु आलस्य तथा ग्रन्य कुमार्गीको त्यागकर इसी का ही अनुसरण करे; इसीसे ही (नहात्यायन पूर्व) जो पूर्व मनु-विधिष्ठ मादि महापुरुष हुए हैं वह इस मागंका अतिक्रमण यानी उल्लंघन नहीं करते रहे ज़ीर (येऽत्यायन्) जो नास्तिक लोग इस वेदोक्त मार्गका उल्लंघन करते रहे (ते परा वभूवुः) वह पुरुवार्थने अष्ट हुए निराहरको प्राप्त हुए हैं ॥ इस ब्राह्मणीक्त अर्थकी दूढताके लिये मन्त्रदा प्रमाण देते हैं कि(तदुक्तमृषिणा) इति, अब इस

मन्त्र का स्वयं ही ब्राह्मण व्याख्यान करता है कि प्रजा (प्रजा हा तिस्रोऽत्यायमीयुः इति, यावे ता इमाः प्रजास्तिस्रोऽत्यायमायन् तानीमानि वयांसि यङ्गा जवगधात्रचेर्प।दाः) अर्थात् ब्राह्मणादि भेदरे जो अनेक प्रकारकी प्रजा हैं उनमें से तीन भाग जो

प्रजा हैं वह वैदिक कर्मके उल्लंघन करने वाली हैं स्रीर एकभाग प्रजा वैदिककर्ममें निष्ठावाली है। वहां जिन प्रजालोंने वैदिककर्म का त्यांग किया है उन

प्रजाओं की गति कहते हैं-(तानीमानि वयां िक) अर्थात जिन्होंने ग्रीत यानी देव-पितृ यज्ञादिकर्म

का त्याग किया है उनमें से स्कभाग तो काक छादि पिस योनियोंको प्राप्त होते हैं जो कि स्नाकाश में विचरने वाले हैं और एक भाग वङ्ग * (वृक्ष) और स्रवगध (स्रोपिधवें वा वनस्पतियें) हैं स्रीर एक

भाग ईरपाद हैं अर्थात् पृथिवी के बिलमें निवास, क-रने वाले पादोदर (वर्ष) आदि हैं, अर्थात् जिन २ लोगोंने पुर्वोक्त श्रीतमार्गका त्याग किया है वह मर

कर नरक भोग के जननार पश्पतादि-कीट स्थावर आदि अनेक तिर्यंग् योनियों की प्राप्त होते हैं। इस-प्रकार वैदिकमार्गके उल्लंघन करने वाली तीन प्रकारकी प्रजाकी व्यवस्था कहकर ग्रद एकभाग

याली जो प्रास्तिक प्रजा है उस की गति कहते हैं कि "न्यन्याम्मकंमभिती विविधे" इति । • (यहाः) धनगता वृज्ञाः, श्रवगथाः-श्रयन्ति-रज्ञन्ति

ममुखादीन् इति छवा , यध्यन्ते - अभिकाङ्ख्यन्ते जनैरिति गपा बमस्पतिस्तपा ब्रीह-यवादि स्त्या शोषधय, इत्यर्थः ॥

(se)

ह्मीका विवरण काते हैं (ता इसाः प्रजा छ-कंमिनती निविष्ठा इममेवाग्निम्) इति, अर्थात् आ-स्तिक प्रजामेरे कोई एक तो आहवनीय रूप (जर्क)

मुर्चनीय जो अगिन है उसकी उपासना करते हैं और कोई एक (वृहद् हतस्यी भुवनेष्वन्तः) इसीका वि-वरण कहते हैं कि (अदं उ एवं घृहद् भुवनेष्वल रसावादित्य:) इति, अर्घात् यह जो ब्रह्मायडमें व्या-

पक तेजोमय मार्स गढ-(सूर्य) है उसकी उपासना करते हैं। स्रीर कोई एक [पवमानो हरित स्नाविवेश] इसका विवरण कहते हैं कि (वायुरेव पवमानो दिशो

हरित ग्राविष्ट) इति, प्रयति निवित्त दिशा में सं-चारी जो पवित्र रूप बहुन शील बागु हैं तिसकी उन पासना करते हैं, अर्थात् समष्टि वायु रूप हिरण्य गर्भ

तात्पर्य यह है कि आस्तिक लोग अग्नि आदि की उपासना करते हैं॥ की उपाचना द्वारा बद्गति को माप्त होते हैं ज़ीर नास्तिक लोग पति आदि रूप अधोगित को प्राप्त होते हैं।।

तया मनु भगवान् एवं योगी श्री याजवल्लय मुनि ने भी-

अकुर्वन्विहितंकमं निन्दितंचसमाचरन्। प्रसक्तरचेन्द्रियाचेषु प्राचित्रचत्तीयतेनरः॥

विहितस्याननुष्ठानान्त्रिन्दितस्य चसेवनात्

अनिग्रहाच्चेन्द्रियाणां नर:पतनमृच्छति ॥ याद्यः ऋ ३ । २१८॥

अर्थात्-विहित (यानी वेदोक्त देव-पितृय-जादि) कमंके न करने से और निषिद्ध कमोंके क-रने से तथा विषयों से स्नित आसक्त होनेसे पु-क्ष प्रायञ्चित्त का भागी होता है। एवं याज्ञवल्क्यजी कहते हैं कि-विहित कमें के न अनुष्ठानसे और नि-न्दित (परस्त्रीगमनादि) के सेवनसे तथा इन्द्रिगोंकी न रोकनेसे पुरुष पापको प्राप्त होता है।

न रोकनेसे पुरुष पापको प्राप्त होता है।

इत्यादि वेद-स्मृतियास्त्रोंके प्रमाणोंसे निस्सन्देह सिद्ध होता है कि मनुष्यमात्र, वेदादिशास्त्रोक्त
श्रोत-स्मात कर्मों के सेवन न करने से पतित होकर
प्रधोगतिको प्राप्त होता है। इसलिये हरएक वेदमतानुपायी आस्तिक जनका यह अतीव मुख्य और
अवश्य करने योग्य कर्त्तव्य है कि वह निरासस्य
होकर विना शक ठीक २ शास्त्रदर्शित विधिसे देशकाल पात्रका विचार करके श्राद्धादि (देवपितृयत्त)
करके अपना लीवन सफल करे। और उपरोक्त
कर्मकायङ का त्याग करने से निःसन्देह दोष सर्व
प्रत्यन्त हानि होती है। इत्यस्य विद्वत्युइति श्री श्राद्धपितृमीमांसायां पितृछोक्षस्यतिस्तस्याऽधिष्ठातृपितृदेवार्मा स्त्रक्षप्रव-

णंने चैवं तत्कमांऽनुष्ठानस्याऽत्यावश्य-कता प्रदर्शने समाप्तीऽयं पञ्चमोऽध्यायः, **ॐ--**मिचदानन्देश्वराय नमः॥

त्र्राय षष्ट्रोऽध्यायः॥

समाजी-श्रीपिखत जी महाराज! सब कृपा

करके यह भी तो सुनामों कि ब्राह्ममें केवल ब्राह्म-णोंको ही निमन्त्रण देकर भोजन करानेकी वया आ-वश्यकता है ! क्यों नहीं उन हमारे मित्र (दोस्त) वा श्रन्य किसी गरीव श्रनाथ श्रयवा श्रव नवीन स्रार्थ्य हुए [म्सल्मीन, सन्दुलगफूर वगैरह जिन्हीं का आर्य नाम धर्मपालादि रक्खे गये हैं उन] म-हाशयोंको अपने पितरोंके निमित्त श्राहुमें भोजन करावें ! क्या केवल ब्राह्मणों को ही इसके लिये किसी महाराजा से इकरारनामा लिखा मिला है वा कोई इनको किसीने साटीं फिकेट लिखदिया है ? मनातनी-महाशय जी ? घबराओ मत, योडा धैर्य धारण करो ख़ौर ध्यान लगाकर सुनो कि ब्रा-ह्मणों के लिये श्रीमहाराजाधिराज महर्षि श्रीमन भगवान् ने क्याही सुन्दर सार्टी फिकेट रूप में पक्का इकरारनामा लिखदिया है कि जो सब वेदमतानु-यायी आस्तिक हिन्दुओंको परम माननीय है। यथा-मनुस्मृ० सध्वाय १ वलोक देन से १०१ तक जध्वंनाभेर्मध्यतरः पुरुवपरिकीर्तितः। तस्मानमेध्यतमं त्वस्यमुखमुक्तंस्वयंभुवा ॥६२॥

उत्तमाङ्गोदुवाउज्यैष्ट्यादु ब्राह्मणश्चैवधारणात्। सर्वस्यैवास्यसर्गस्य धर्मतीब्राह्मणःप्रमुः ॥६३॥ तंहिस्वयंभू:स्वाद्रास्यात्तपस्तप्त्वाद्तोऽसूजत् । हव्यकव्याभिवाह्याय सर्वस्वास्यचगुप्तये ॥९१॥ यस्पास्येनसदाश्रन्ति हत्र्यानित्रिदिवौकसः। क्व्यानिचैत्रपितरः किंभतमधिकंततः ॥ ८५ ॥ भृतानांप्राणिनःश्लेष्ठाः प्राणिनांवृद्धिजीविनः । वृद्धिमन्सुनराःश्लेष्ठा नरेपुत्राह्मणाःसमृताः ॥५६॥ ब्राह्मणेप्चविद्वांसो विद्वत्सुकृनवुद्धयः । कृतयूद्धिपुकर्त्तारः कर्तृपुत्रह्मवेदिनः ॥ ६७ ॥ उत्पत्तिरेवविप्रस्य मूर्त्तिर्धर्मरयशाश्वती । सहिधर्मार्थमुत्पन्नो ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥ स्ट ॥ ब्राह्मणोजायमानोहि पृथिव्यामधिजायते । ईश्वर:सर्वभतानां धर्मकोशस्यगृष्तये ॥ ६६ ॥ सर्वस्वंब्राह्मणस्येदं यत्किञ्जिञ्जगतीगतम्। श्रेप्टचे नाभिजनेनेदं सर्ववैद्याह्मणोऽहंति ॥१००॥ स्वमेवब्राह्मणोभुड्के स्वंवस्तेस्वंददातिच । आर्शस्याद्वयास्मणस्य भुज्जतेहीतरेजनाः ॥१०१॥ . अर्थात्-ग्री ब्रह्माजीने पुरुषोंको नाभिने ऊपर के भागमें अधिक पवित्र कहा है। और इसके मुख

को तो उससे भी पवित्र कहा है ॥ दंर ॥ ब्राह्मण सब नंगों में उत्तम परमात्मा के मुख से उत्पन्न हुआ है, सित्रपादि तीनोंसे पहिलो सन्मा है ग्योर येदको मु- खात्र रखता है-इन कारण ब्राह्मण धर्म का उपदेश करनेमें इस सब मृष्टिका गुरु (शासक) है ॥ ६३॥ स्वयम्भ ब्रह्माने तप करके देवताओं को 'हब्य, और

पितरोंको 'कन्य, पहुंचानेके लिये तथा इस सम ज-गत्की [यज्ञादिके द्वारा वर्षा आदिसे] रक्षा करने के लिये आरम्भमें अपने मुखसे ब्राह्मणोंको रचा है ॥ ८ं॥ जिसके मुखसे देवता हन्योंको और पितर

कव्योंको सदा खाते हैं, तिससे वढ़कर कीनसा प्राधी हो सकता है ? ॥ ८५ ॥ पृथिन्यादि पञ्चभूतोंसे बनाये स्थावर जंगम सब प्राधियोंमें कीट पतंगादि प्राधी श्रेष्ठ हैं कदार्चित् किञ्चित् सुखलेश के प्राप्त होने से स्रोर उनसे (बृद्धिजीयी)सार्थ निर्यंक स्थानमें जाने

न जाने वाले पशु आदि श्रेष्ठ हैं—उनमे प्रकृष्ट ज्ञान के सम्बन्धसे मनुष्य श्रेष्ठ हैं—उनमे भी मर्वपूच्य श्रोर मोसाधिकारके योग्य होनेसे ब्राह्मक श्रेष्ठ हैं ॥ दं ॥ श्राह्मकों में भी स्वर्गदि फल देनेवाले ज्योतिष्टोमादि कर्मकाएडके विद्वान् अधिकारी श्रेष्ठ हैं—उनसे श्राना-

अर्थणान ना स्वनाद पत दनवाल ज्यातिष्टामाद कर्मकार के विद्वान् अधिकारी श्रेष्ठ हैं—उनसे ज्ञानान्त के लिये प्रथम सत्कर्म करने वाले श्रेष्ठ हैं—उन से भी हिताहित प्राप्ति परिहार भागी होनेये (कर्त्ता) अनुष्ठाता श्रेष्ठ हैं—उन से भी भोक्षकाके लाभयोग्य होनेसे ब्रह्मवादी श्रेष्ठ होते हैं ॥ दं ॥ ब्राह्मणका देह जन्म मावसे ही ज्ञावनाशी धर्मकी मृत्तिं है जिस से

जन्म मात्रय हो स्रोबनाया धमको मून्ति है जिस से यह धमंके लिये उत्पद्म हुया है । धर्मानुगृहीत स्रा-त्मज्ञानसे मोक्षकी प्राप्ति के लिये योग्य है ॥ ८८ ॥ जिनमें ब्राह्मण उत्पन्न होता हुआही पृषिवीमें (अधि)

जंचा स्नीर स्रोष्ट है। सर्व धर्मीको ब्राह्मणद्वारा उप-देश किये जानेसे तथा सब जीवोंके धमंके समुह-की रक्षाके लिये समर्थ है ॥ ८८ ॥ जो कुछ पृथिवी में धनादि पदार्थ हैं वह सब ब्राह्मणका अपना स्वत्व है यह बात ब्राह्मणकी स्तुतिके लिये कही है-तात्पर्य यह है कि ब्राह्मण के अपने स्वत्व के तुल्य है इस से ब्राह्मण ब्रह्माजीके मुख से उत्पन्न होने, स्रोर वंश से श्रेष्ठ होनेसे सर्व पदार्थी स्रोर द्रव्योंके ग्रहणके योग्य है ॥ १००॥ ब्राह्मण जो टूमरेका भी अन्न भक्षण करता है सो अपना ही करता है, दूसरे का जो वस्त्र पह-रता है और जो दूसरेका पदार्थ लेकर सीरके सर्थ देता है वह भी ब्राह्मफका खपना ही पदार्थ है ऐसा होनेसे ब्राह्मणकी कृपा ही से ख़ौर सब लोग भोज-नादि करते भोगते हैं॥ १०१॥ इत्यादि श्री महाराजाऽधिराज महर्षि श्रीमनु भगवान्ने ब्राह्मणोंकी प्रशंचा करते हुए देवता स्तीर

पितरोंको यज्ञ में "हव्य" अब्ब और ब्राह्म "कव्य" अब्ब पहुंचाने के लिये तथा वेद मितपादित धर्म का मत्योपदेश करने के लिये इस पृथ्वी पर ब्राह्मणों को ही मुख्य भूदेय ठहराकर साटोंक्तिकेटरूप इकरा-रनामा लिखदिया है इसी कारण यज्ञ और ब्राह्म-दिम ब्राह्मणोंके मित आदर सत्कार पूर्वक निमन्वण देकर भोजनादि दान देने की अत्यन्त आवश्यकता

करके पीछे यया शक्ति अनुसार भले ही अपने मित्र

वा प्रन्य किसी प्रनायादिका भोजनसे सत्कार क-रना चाहे तो करे यही वेदादि धर्मशास्त्रीका मुख्य सिद्धान्त है ॥ समाजी-ग्रीपरिडत जी महाराज! यह ती ठीक साटीं फिकेट रूप अच्छा माननीय इकरारनामा मुनाया परन्तु इसमें सुभे औरभी बड़ा सन्देह हुआ है कि ग्राद्धादि गुभकर्मी में सुपात्र, विद्वान् तथा योग्य ब्राह्मणको ठीक २ देखकर निमन्त्रण देना चा-हिमे कि नहीं; चाहे वो कैंसा भी हो ! सर्वात् मदा मांसाहारी-व्यभिचारी-निन्दित साचरण वाले मूखं को भी केवल उस के नाम मात्र ब्राह्मण होने से दिया जाय? ॥ सनातनी-महाशय जी ! यह आपका सन्देह ब-हुत सत्य अच्छे सारक्ष निर्णय कराने वाला है। परन्तु खाप निष्पक्षपाती हो कर संमयको विचार करके श्राद्धमें अधिकारी और अनधिकारी ब्राह्मणीं की सुनो । यथा मनु० अध्याय ३ में-श्रीत्रियायेवदेयांनि हव्यकव्यानिदातुमिः। अर्हत्तमायविप्राय तस्मैदत्तं महाफलम् ॥१२८॥ एकैकमपिविद्वांसं दैवेपित्रये च भोजयेत्। पुष्कलंफलमाप्नोति नामनत्राज्ञान्बहुनपि ॥१२९॥

दूरादेवपरिक्षेत ब्राह्मणंबेदपारमम् ।
तार्थंतत्हव्यकव्यानां प्रदानेसोऽतिथि:समृतः ॥१३०॥
सहस्रंहिसहस्राणामनुनां यत्रभुव्जते ।
एकस्तानमन्त्रवित्यीतः सर्वानहंतिधर्मतः ॥१३१॥
ज्ञानोत्कृष्टायदेयानि कव्यानिसहवींपिस ।
नहिहस्तावसृष्दिग्धो रुधिरेणैव शुद्ध्यतः ॥१३२॥
यावतोग्रसतेग्रासान् हव्यकव्येष्वमन्त्रवित् ।
तावतोग्रसतेग्रासान् द्यकव्येष्वमन्त्रवित् ।
तावतोग्रसतेग्रेत्य दोप्तशूलप्टचंगोगुणान् ॥१३३॥
नश्चद्धिभोजयेन्मित्रं धनैःकार्योऽस्यसंग्रहः ।

नारिनमित्रयंविद्यासंत्राहेभोजयेदृद्विजम् ॥१३८॥ सम्भोजनीसाभिहिता पैशाचीदृक्षिणाद्विज्ञैः । इहैवास्तेतुसालोके गौरम्थेवैक्वेश्मनि ॥१४९॥ यथेरिणेवीजमुष्ट्वा न वप्तालभतेफलम् ॥ तथाऽनृचेदृविद्द्वा नदातालभतेफलम् ॥१४२॥ दात्न्यतिग्रहीतृंत्र्य कुरुतेफलभागिनः । विदुपेदृक्षिणाद्द्वा विधिवत्यत्येत्यचेहृच ॥१४३॥ यक्षेनभोजयेच्छाहे यहुचंवेद्पारगम् । शास्तान्तगमथाध्वयुं छान्दोगन्तुसमाप्तिकम्।१४५॥

एपामन्यतमो यस्य भुञ्जीत श्राहुमर्चितः । पितृणांतस्यतृप्तिःस्याच्छाश्वतीसाप्तपौरुषी ॥११६॥ नद्राह्मणंपरिक्षेत दैविकर्मणि धर्मवित् । पित्र्चेकर्मणितुमाप्ते परिक्षेतप्रयत्नतः ॥११८॥ येस्तेनपतिन्क्रीया येचनास्तिकयृत्तयः। सान्हव्यकव्ययोर्विप्राननर्हान्मनरत्रत्रीत् ॥१५०॥ जटिलंचाऽनधीयानं दुर्वलकितवतथा। याजवन्तिचयेपूगां-स्तांश्चत्राद्वेनभोजयेत् ॥१५१॥

चिकित्सकान्देवलकान्मांसविक्रयिणस्तथा । विपणेनचजीवन्तोवर्ज्याःस्युहंद्यक्रद्ययोः ॥१५२ । ब्राह्मणस्त्वनधीयानस्तुणाऽभिनरिवशाम्यति ।

तस्मैहध्यं नदातव्यं नहिभस्मनिह्यते ।१६८॥ इत्यादि संसेवतया ॥

दातालांको चाहिये कि वेदपाठी सदाचरण ब्रा-ह्मणको ही देव-पितृकर्ममें अनुआदि दें, क्योंकि-

ऐसेको दिया हुछा दान महाफल देता है ॥१२८॥ देव कर्म (यच्च) और पितृकर्म (ब्राद्धर्में) में एक २ वि-द्वान् ब्राह्मण को भी जिमादेय तो बहुत फल पाता है फ़ीर मेदमन्त्र न जानने वाले यहुतसे ब्राह्मणोंकी

भी भोजन करानेसे वह फल नहीं होता ॥१२८ वेद में पारंगत ब्राह्मणकी दूरमें ही (अर्थात् पिता-पि-तामह जादि भी कैंचे ग्रेष्ठ गुणीये इस प्रकार) प-रीक्षा करे, क्योंकि-वह ब्राह्मण हब्य कव्य देने का तीर्थरूप होता है और उसको दान देनेमें अतिथि के पूजनके समान फल प्राप्त होता है ॥ १३०॥ जहां वेदकी न जानने वाले दशलाख ब्राह्मण भोजन क-रते हों वहां उन सबके भोजनका फल, भोजन करने

मे प्रसन्न हुआ एक ही वेदवेत्ता ब्राह्मण धर्मानुसार दे सकता है ॥१३१॥ पिंतरोंके निमित्त दियेजाने वाले

बलिक्रप ''कव्य"ः स्त्रीर देवता स्त्रीर देवतास्त्रीं को दिये जाते हुए बलिरूप "हव्य" चानसे श्रेष्ठ ब्रा-

द्याणको देव, मूर्खीं को न देव, क्यों कि-रुधिरसे सने हुए हाय रुधिरमें ही शृद्ध नहीं होते ॥१३२॥ वेदमंत्र हीन ब्राह्मण देवकर्म और पितृकर्म में जितने ब्रासों को निगलता है उतने ही घंधकते हुए लोहेके श्ल

ऋष्टि और गोले यजमानको निगलने पड़ते हैं (३३॥ ब्राह्म में मित्र [दोस्त को न जिमावे, मित्रोंका सं-ग्रह धनसे करे, जिसको न प्रपना मित्र समभता हो

न गत्रु समभता हो उस ब्राह्मणको ही ब्राह्ममें जि-मावे॥ १३८॥

जो पुरुष श्राह्मकमें मित्रमण्डलको इकट्टा क-रके भोजन कराता है वह पेशाची दक्षिणा कहाती है फ़ौर यह दक्षिणा (भोजन दान फ़ादि) [जैसे

अन्धी गी एक घरमें ही रहती है उसमें से बाहर नही निकल सकती तेमे] इम लोकमें ही रहती है और उससे परलोकमें पितरों का मुद्द उपकार नहीं होता

है। १४१ ॥ जैसे जबर (कलरवाली) भूमिमें बीज

घोकर बोनेबाला फन नहीं पाता है तैसेही वेदमन्त्र न जानने वाले ब्राह्मण की ह्या कव्य देने पर दाता को फल नही मिलता है "११२॥ विद्वान ब्राह्मण को

विधिवत् भोजन कराकर दक्षिणा देने पर वह देने वाले और लेनेवाले यानी दोनों यजमान पुरोहित को इस लोकमें और परलोकमें फलका भागी करती है १९४३॥ श्राद्धमें परमयत्न करके वेद पारंगत ऋग्वेदी ब्राह्मणको, वा सकल शाखाक ज्ञाता यजुर्वेदी ब्राह्मणको प्रयवा समाप्ति पर्यन्त सामवेद जानने वाले ब्राह्मणको भोजन करावे ॥१४४॥ इनमेंसेकोई भी ब्राह्मण जिसके श्राद्धमें सत्कारके साथ भोजन पाता है उसके सात पीड़ी पर्यन्तके पितर तृष्त होते हैं ॥१४६ धर्म ज्ञ पुरुष देवकर्म में ब्राह्मणको परीक्षा न करे प्राह्मण प्रतकर्म (श्राद्ध) में तो यह करके परीक्षा

उसके सात पीढ़ी पर्यन्तके पितर तृष्त होते हैं ॥१४६ं धर्म च पुरुष देवकर्म में ब्राह्मणकी परीक्षा न करे परन्तु पितृकर्म (श्राद्ध) में तो यक्ष करके परीक्षा करे ॥१४६॥ जो चीर-पितत वा नपुंचक हों, स्नौर ना-स्तिक मतके या नास्तिकों की विवक्त खाने वाले हों तो उन ब्राह्मणोंको मनुजीने देवकर्म तथा पितृ-यच्चमें स्रयोग्य सन्धिकारी कहा है ॥१४०॥ वेदाध्ययन सून्य ब्रह्मचारी, दुवंल, ज्यारी, तथा बहुत से यज्ञमानोंको एकसाय बेठाकर यच्च कराने वाले, धन ठ-हरा कर पूजा करने वाले पुजारी, तथा मांसविक्षेता ऐसे जो निन्दित ज्यापार से जीविका करते हों तो

उनको देव-पितृकर्ममें न जिमावे ॥१४१॥ १४२॥ वेद न पढ़ने वाला ब्राह्मण तिनकों (तृष-वा-घास) की अग्निके समान निर्जीव हो जाता है, ऐसे ब्राह्म-शोंको हव्य और कव्य न देना चाहिये क्योंकि वह राखमें होमा हुआसा बूबा जाता है ॥१६८॥ द्रत्यादि संसेपताचे दिखाये वा कहे गये अधि-कारी और अनिधकारी ब्राह्मणों को ब्राह्मादि शुभ कर्मों में परम यक्षचे ठीक २ देख विचार करके पि-तरोंके निमित्त भोजन कराना चाहिये । और नीचें बताई गयी विधिचे ब्राह्मकर्ताऔर भोक्ता इन दोनों को वैमे ही नियमचे रहना चाहिये। यथा मनु० अ-ध्याय ३ के १८० चे १८० यकोक तक—

पूर्वेद्युरपरेद्युर्वा स्नाहकर्मण्युपस्थिते । तिमन्त्रयेतज्ययराम् सम्यग्विमान्ययोदितान्।१८० तिमन्त्रितोद्विज्ञापिज्ये नियतात्माभवेत्सदा । नचछन्दांस्यधोयोत् यस्यस्नाहुंचतदुवेद ॥१८८॥

वायुषञ्चानुगच्छन्ति तथासीनानुपासते॥१८८॥ केतितस्तुपथान्यायं हव्यकव्येद्विजोत्तमः। कथञ्चिद्रप्यतिकामन्पापः सूकरतांत्रजेत् ॥१८०॥ अर्थात्-याद्धकर्मके माप्त होने पर ब्राह्मके दिन से एक दिन पहिले और यदि न होसके तो उसीही

निमन्त्रितान्हिपितर उपतिष्ठन्तितान्द्विजान्।

दिन जिनके लक्षण कहुचुके हैं ऐसे तीन अयवा एक ब्राह्मण को सत्कार पूर्वक निमन्त्रण दे, ॥१८९॥ ब्राह्म में निमन्त्रण दिया हुआ ब्राह्मण निमन्त्रणके दिनसे ब्राह्मके दिनकी राजि तक नियमसे रहे अर्थात् स्त्री-संग आदि न करे और अवश्य करने बीग्य काम्य अप सादि के सियाय-चेदका अध्ययन न करे और शैषे ग्राह्म करने वाला यजमान भी इसीही नियमचे रहे ॥१८८॥ क्योंकि-निमन्त्रित ब्राह्मणोंमें पितर फ्र-दृश्य रूपचे स्थित होते हैं फ्रीर प्राणवायके समान

चलते हुएके शाय घलते हैं छोर बैठने पर समीप बैंठते हैं दमलिये उन ब्राह्मणोंको नियमसे पवित्र रहना चाहिये ॥१८६ं॥ हव्य कव्यमें यास्त्रके छनुसार निमन्त्रण दिया हुछा ब्राह्मण निमन्त्रण को छंगीकार
करके यदि किसी कारण * से भोजन न करे तो उस

पापसे दूसरे जन्मं में यह शूकर होता है। इसलिये श्राद्ध करने वाले को भी जिस ब्राह्मणको निमन्त्रण
* जो ब्राह्मण गरीव यजमानका प्रथम निमन्त्रण पाकर

पीक्षे यदि साहूकार पमादय समिय आदि आकर निमन्त्रण दे तो लोभवण होकर प्रथम आये उस विचारे गरीव को छोड़कर प्रनादयके पास पहिले लावे और असमयं यजमान को छोड़कर समर्थयान् यजमान के पास जाना अर्थात वह समर्थवान् यजमान के पास जाना अर्थात वह समर्थवान् यजमान शहंकार और पन के मद से कहे कि-रे आह्मण । यदि तुम पहिले मेरे पास आहुभोजनादि खानेको नहीं आते हो तो हम तुमको छोड़कर अन्य किसीको आह खिला देंगे और तुमको आगेके लिये देखेंगे अर्थात पुरोहित करके नहीं मानेंगे ऐसे लोभदायक यजमानके मदस्य वचनों पर लोभित हीकर जो न्यायपयका परित्याग करता हुआ

ावता देन आरे पुनका आगण रहन प्रवास पुराहत करके नहीं मानेंगे ऐसे लोभदायक यणमानके मदरूप यचनों पर लोभित होकर को न्यायपयका परिल्याग करता हुआ प्रथम निमन्त्रण दिये हुए उस गरीब यजमानके पास भोज्यम निमन्त्रण दिये हुए उस गरीब यजमानके पास भोज्यम करने को जो नहीं जाता—यह लोभी—प्रवासी और हरपोक वा ठग झाइस्ल उस लोभ वा काहिलता रूप पाप से टूसरे जन्ममें अवस्य ही यूकर होता है ॥

दिया हो उचीको ही श्रद्धा (नमुता) से श्राद्धमें ले आकर भोजन कराना चाहिये॥ इति॥

समाजी — श्री पिरुद्धतजी महाराज ! श्राप श्रीवराने तो ठीक ही सत्यरूपने श्राद्धके योग्य श्रीर श्रयोग्य ब्राह्मणोंका वर्णन किया परन्तु आपके कथनानुसार इस क्त सेसा वेद पारंगत पूर्ण पित्र विद्वान्
अब मिलना महाकठिन है। श्रीर ऐसे शास्त्रोक्त नियम पालने वाले वेदवेत्ता सदाचारी ब्राह्मणेंकि सिवाय श्रन्य मूर्ल दुराचारी ब्राह्मणको श्राद्धमें खिलाना श्रव्य निपद्ध हैं-क्योंकि-धर्मशास्त्रके श्राचानुसार श्रवंस्कृत मूर्ल ब्राह्मणको श्राद्धमें भोजन कराना वेसा ही है जेसा कि भस्म (राख) में चीकी
आहुति निष्मल होती है। इस्हिये श्राद्ध केंसे सिद्ध
हो सकेगा !॥

सनातनी-प्रिय महाग्रयजी! आपं जैसा वि-चार रखते हो वह निःसन्देह सत्य है-परन्तु इस स-मयानुकूल आप सचिय-वैद्य वंगेरह प्रथम अपंने गुण-आपरखोंकी तरफ भी कुछ ध्यान देकर न्यायसे सोचो और कहो-कि नहीं, केवल ब्राह्मखोंकी ही दी-प्युक्त ठहरानेका भूंठा बहाना करके अपने अवस्य फर्तच्य देव-पितृयज्ञादि कर्म करनेसे भागते हो । म-हायय जी! ऐसे आपके [अवस्य कर्त्तच्य कर्म का त्याय (लोपं) करने वाले] पाप-रूप निर्मंत खचन आप जीसे सच्चे सचिय वैदेशों के सन्तान के मुंख से निकर्लें≃तो इक्के ज्यादा खपने बड़ॉकी ['पूर्णभक्ति नमुताभावसे होनेवाले प्रश्वमेध राजस्यादि यज्ञोंमें पोई हुई] वीरता और अतिष्ठामें धन्बे लगाने वाले स्रीर कीनमे वचन बाकी रहे ?! हा हा ?! "विना-शकाले विपरीतबुद्धिः" इस महावाक्य के अनुसार ठीक देखा जाता है कि किल महाराजके मताप से बुद्धि और वीरता तथा नित्य कर्म कावडीं में प्रेम विपरीत (उलटा) हो, गर्या ?!? तीमी हे ऋषि मु नियों से सन्तानी ! और सच्चे शूरवीर पवित्र श-त्रिय-वैश्योंके पुत्रो ? अब जरा जागो और विचा-ररूपी आंखरे देखो-सोचो कि हमारे ही जैसे निर्वल संतान पर दयाके भगडार महर्षि श्रीमनु महाराज ने अपने द्याभाव से अवश्य करने योग्य श्राद्धादि कर्मी की रक्षा होनेमें कलिकालके समय योग्य और श्रयोग्य ब्राह्मणादिकोंका किस तरहसे निर्णय करके बतलाया है कि-अन्येकृतयूरोधर्मा-स्त्रेतायां,द्वापरेऽपरे । अन्येकलि<u>य</u>्गेन्णां_{ृय्}गहासान्ह्रपतः ॥ ८५ ॥

तपः परंद्वतयुगे जेतायां ज्ञानमुच्यते ।
द्वापरेयज्ञमेवाहु-दानमेकंकलीयुगे॥ द्धा ॥
अर्थात्-कत्युग में और धर्म, जेतामें और,
द्वापरमें और तथा कतियुगमें और वितादि युगों
में 'युगोंकी हीनता (घटती-बहती) होनेने धर्म
और अधम की भी विलक्षणता हो जाती है ॥

As the vegitable, kingdom increases in thier beauty colours and nourishment at thier due time, such as" "spring season" and less in the other seasons similarly in the times of Satyayuga spirituality and religions are more Predom mants and very much less in respective Yugos Treta, Dwaper and much less in Kahyuga"

अर्थात्-जैसे ऋतुओं में पदार्थीके स्वभाव बदल जाते हैं तेंचे ही युगों में भी श्रक्तियों के फेरफार से पदार्थों का स्वभाव बदल जाता है स्वीर रस, कस, शक्ति-स्नाकार-उमर और कर्म फल स्नादि भी गुर्गी के बदल जानेसे बदल जाते हैं। यदापि तपशुर्या-आत्मज्ञान-यज्ञ और दान वगैरह सब कर्म सत्य आदि सब्यामों में सदा सेवन योग्य हैं तथापि सत्य-युगमें तपश्चर्या प्रधान (मुख्य) और अत्यन्त फल-दायक है। चेतामें आत्मज्ञान, द्वापरमें यश्च और कलियुगमें दान ही मुख्य फलदायक है। इनलिये वेदशास्त्र पठन और उनके अनुसार धर्म कर्म-अन-ष्टान करनेमें जो हीनता हुई है वह केवल ब्राह्मणों में नहीं किन्तु सब वर्णाग्रमोंने कलियुगके प्रभावसे ममान ही हो रही है। फिर केवल ब्राह्मणोंका ही अ-धिकार मन्स्मृतिके अनुसार देखा जावे तो किञ्चित अपने आपकी ओर भी सब लोगींसे दृष्टि की जावे कि मुफर्मे विशेष धर्मौकी स्थिति तो किनारे रही परन्तु मनुष्यमात्रका सदा छाचरणीय सामान्य धर्म भी कोई है वा नहीं। किन्तु केवल बाह्मणों के ही

श्रधिकार का निर्णय करने पर जीर लगाना और अपनी और कुछ नहीं देखना यह बुद्धिमानों और न्यायवर्ती विचारवानींकी रीति नहीं है। क्योंकि

श्राद्धादि कर्म करने वाले क्या ब्राह्मण क्या श्रीर जातियोंके सब मनुष्यमात्र । अर्थात् सब वेदमता-नुपाइयोंको सत्-धर्मका आचरण अपने वर्णाग्रमके

मुताबिक ठोक २ करना चाहिये। जैसा कि-महा-भारत सन्धासन पर्वमें लिखा है कि न्यायार्जितधनस्तत्व-ज्ञाननिष्ठोजितेन्द्रियः।

श्राद्वकृत्सत्यवादीच सत्कर्मामुच्यतेनरः ॥ १॥

प्रार्थात् न्यायरीति से जो धनसंचय करता है, ईश्वरके तत्वज्ञानके विचार में जिसका निश्चय है, जिसने अपनी इन्द्रियोंको खोटे विषय मोगोंसे रो-काहुला है लर्यात् गृहस्याग्रमके धर्मीमें दृढ स्थित

है तथा ब्राद्धादि देव-पितृकर्म जो सदा करता है और सत्य वचन बोलता है तथा इष्टापूर्तादि सत्-कर्म करता है वह मनुष्य चव कोई चाहे किसी भी वर्ण का हो तो जन्म मरणकृप संसारक्लेश से छूट

जाता है। यही श्लोक याच्चवल्क्यस्मृतिमें है परन्तु मुद्र भेद है । इस प्रलोक में लिखे प्राद्वादि सत्कर्म करने वाले सब मन्द्योंमें जो २ गुण चाहिये सी वे

ही लोग न्यायदृष्टि से छपने २ में देखें कि उन में जवर लिखे गुण कितने और कहांतक हैं-तो सी-चने से निद्यय हो जायगा कि इन गुणों में से बोडा

श्रंश भी अब के श्राद्धकर्मादि करने वाले सब मनु-घ्यों में कठिनतासे प्राप्त हो सकेगा। तो फिर के-वल ब्राह्मणींके ही धर्म का निखंय करनेमें कटियद्ध होकर प्रवृत्त होना और अपनी ओर [कि कैंसे २ क्कर्म सेवन करने और कैसे २ छन्यायोंसे धन सं-चय करना और शास्त्रोक्त सदाचार किंचित् भी कभी आचरण नहीं करना] दृष्टिमात्र नहीं करनी यह कीन न्याय ख़ीर बृद्धिमत्ताकी बात है। महा-शय जी ! ब्राह्मणों में तो कोई न कोई कुछ न कुछ वेदशास्त्र पढ़ेहुए और उसके जन्मार जपना धर्म कर्म अनुष्ठान करने वाले शायद मिलही जावें प-रन्तु ऐसे प्रश्नकर्ता महात्मा की अपनी ओर अपने सामियोंकी श्रोर दृष्टि करके न्यायसे सोचना चा-हिये कि वे लोग मनातनधर्मकी रीति से नित्यक-त्तंव्य धर्म कर्मका अनुष्ठान (सेवन) करना तो जाने दो परन्तु उनके नवीन मतके गुरु के उपदेश किये यन्यों के अनुसार भी कितने संस्कार उन्हों के हुए ्हें ख़ौर होते हैं। ख़ौर कितना वेद ख़ौर वेदाङ्गीं का तथा और ग्रास्त्रोंका अध्ययन और मतिदिनके सन्ध्यादि पंचयज्ञ कर्स कितने किये जाते हैं कि जिन महाशयोंको दो चार वेदमन्त्रोंके स्वरं सहित गुद्ध पाठमात्र उच्चारण करनेका ज्ञान नहीं है तो उनका मर्य जानने की तो क्या बात है। तो इन सब जपर लिखे वा कहे कारणों ने यदि विद्वान् स-

त्कर्मी पात्र बाह्मण जहांतक ग्राह्मकर्म करनेके वास्त

लाने योग्य हैं-परन्तु जो समयके अर्नुसार अधिक उत्तम अधिकारी पात्र ब्राह्मण न मिले तो धर्मरक्षक महर्षि मनु भगवान्ने अध्याय २ श्लोक ११८ में-गायत्रीमात्रसारीऽपि वरंविप्र:सुयन्त्रित:।

नायंत्रितस्त्रिवेदोऽपि सर्वाशोसर्वविक्रयो ॥११८॥ अर्थात्-केवल गायत्रीमात्र जानने वाला भी यदि (सुवन्त्रित) शास्त्रनिविमत प्रवीत् प्रभद्य भ-क्षणादि रहित और व्यभिचारादि कर्मींचे रहित है तो वह थोड़ा पढ़ाहुआ भी ब्राह्मण समयानुसार अ-त्यन्त श्रेष्ठ श्रीर श्राद्धादि कर्मीमें योग्य पूजनीय है। परन्तु (अयंत्रित) जो निषिद्ध मद्यमां सादि भक्षण करने वाला और वेंचने वाला है तथा नित्य कर्त-व्य संध्योपासनादि कर्म नहीं करने वाला और व्य-भिचारी वह यदि वेदवेत्ता महान् परिडत भी ही तो भी वह श्रेष्ठ नहीं और न श्राद्धादि कर्मीमें लाने योग्य है। प्रव विचारपूर्वक देखो कि श्रन्तमें श्री म-हर्षि मनु भगवान् ने कम से कम केवल गायत्रीमात्र जानने वाले गुलक्षण मुपात्र चैष्णव ब्राह्मण को ही भें प्र और श्राद्ध के योग्य चिद्ध किया है। इसिलये महर्षि श्रीमनुजीकी खाचा से खत्यन्त विद्वान् धर्मच ब्राह्मणके श्रभाव में केवल गायत्रीमात्र जानने वाले स्रीर सदाचारी सुपात्र ब्राह्मण को ही सत्कारपूर्वक

निमन्त्रण देकर शाह्नमें श्रद्धांचे भोजन कराकर पि-तृयज्ञको सिद्ध करना हम वेदमतानुयायियोंका मुख्य कत्तंव्य है। स्रीर जंगल वा म्लेच्छादि देशमें सर्वया ऐसा केवल गायचीमाच जानने वाला भी यदि सु-पात्र ब्राह्मण न मिल सके तो— अलामेबाह्मणस्यैव कोशःकार्यीबटुःप्रिये । प्रभासखरह बाक्य. (तथा=विधायवादभंबटून् आसनेपुसमाहितः। प्रैषानुप्रैषसंयुक्त-विधानंप्रतिपाद्येत् ॥१॥ महर्षि श्री देवलस्मृति, अर्थात्-सुपात्र ब्राह्मण के अभाव में दर्भी की बोटी प्रतिमाएं बनाकर उन को ही ब्राह्मणरूप में कल्पित करके पवित्र आसनों पर बैठाकर शाहु के मन्त्रोसे (भैषानुभेष) एव गन्ध-सुगन्ध-धृप दीप नैवेद्यादिकों से अर्थात् गंध (चन्दन) पुष्प ध्प दीप भोजनादि को उन कल्पित ब्राह्मणों के प्रति . श्रद्धांचे अर्पण करके आप ही श्राद्धकर्मका अनष्ठान पूर्ण करे। यदि वैसा भी न हो सके तो श्रीकात्या-यनस्मृतिके वचनानुसार-आपद्यनानीतीर्थेच प्रवासेपुत्रजन्मनि । आमश्राद्वप्रक्वीत भागारजसिस्क्रमे ॥ १॥ अनिनरघनीवापि तथैवद्यसनान्वित:। आमम्राहुं द्विजःक्षांदु वृपलस्तुसदैवहि ॥ २ ॥

श्रयत्-श्रापत्कालमें, तथा श्रग्नि के न मिल सकनेमें, तीर्थमें प्रवास यानी सुसाफरीमें, पुत्रजन्म के समयमें और रजोधमें में तथा संक्रान्ति अर्थात् पुण्यकालमें "स्नामग्राद्ध" यानी कच्चा सीधा लेकर पितरों के निमित्त यच्चीपवीत वामपार्थ्व करके "स्व-धा पितृभ्यं इदं अन्नं समर्पयामि" ऐसा उच्चारण क-रके सुपांच सदाचारी गरीब ब्राह्मणके घरमें वह अन देकर शाह्यकर्म पूरा करे परन्तु शूद्रजाति हमेशा "सामगाद्व" करे सर्थात् कच्चामीधा संकल्प करके ब्राह्मं थों को दे। यदि इतना भी न हो सके ती-सर्वाऽमावेक्षिपेदंग्नौ गवेदद्याद्थाप्सुवा । नैवमाप्तस्यलीपोऽस्ति पैतुकस्यविशेषतः ॥ १ ॥ महर्षि देवलस्मृति॥ मर्थात्-कुछ भी नहीं हो सके तो भी किंचित् कच्चावापकामाहुसाभोजन पितरों के नामसे अ-ग्निमें, ख़थवा जलमें वा गौको देवे परन्त पितृकर्म का लोप न करे। और यदिमनुष्यद्रिद्री (कंगाल) ग्रममर्थ होनेके कारण इतना भी न कर सके तो-वृहन्नारदीय पुरागाधास्त्रके ,वचनानुसार-अथवारोदनंकुर्यात्-अत्युच्चैविंजनेवने । द्रिद्रोहंमहापापी वदेदितिविचक्षण: ॥॥ वृद्दवारदीय पुरावा प्रथ्याय ५६॥ इस नारदीय वाक्यानुसार बाह्यके दिन निर्जन बनमें जाकर "मैं महापापी दिरद्री (कंगाल) हं"

ऐसे दीन बचन बोलकर पितरों से समा मांगे परन्तु पितृकर्मका त्याग न करे। फ्रीर यदि रोदन करनेमें भी संकोच करेतो∽

सर्वाभावेषनंगत्वा कल्लमूलप्रदर्शकः । सुर्व्यादिनोकपानानामिद्मुच्चै:पठिष्यति ॥५०॥

नमेऽस्ति वित्तं न धनं न चाऽन्यत्, श्राद्ध-स्य योग्यं स्वपित्वतीस्मि । तृष्यन्तु भक्तया

वितरी सबैते मुजीततीवत्मंनिमास्तस्य ॥५०॥ श्रीवाराहपुराच अध्याप १३ में ॥

प्रमात्-वन में जाकर दोनों भुजाओं को जपर करके नम्रता और दीनभावने हाथ जोड़कर मूर्यादि लोकपालोंके चन्मुख अपनी कुक्ति दिखाकर उच्चस्वर में कहे कि हैपितृदेवों ! मेरे पाम इतना अन्न, धन तथा अन्य कोई भी आद्धोपयोगी-पदार्थ कुछ भी नहीं है-इमलिये में अपने पितरोंको केवल नमस्कार पूर्वक प्रार्थना करता हूं कि हे मूर्यादि लोकपालों! इस मेरी भक्तिरूप प्रार्थना में मेरे पितर तुम होकर

मुक्तपर प्रमन्न रहे ॥ इति ॥

समाजी-श्रीमान् परिडत जी महाराज ? यह

मुक्ते प्पाप श्रीवरों ने ऐसा न्यायरूप युक्तियुक्त ब्रा
ह्मणोका निर्णय करके बतलाया है कि जिस से स्रव

ल्लाका निर्णय करक बतलाया है कि जिस से झव मुक्ते कोई भी सन्देह बाकी नही रहा और आपित्त मे भी बाद्ध करनेका ऐसा धर्मशास्त्रोक्त उत्तय सर्व मान्य मार्गवतलाया कि बच अब मैं पूर्णकृतार्थ हुआहूं॥ हे मिय परमपन्य पण्डितजी ! परब्रह्म परमा-त्मा स्नाप जैसे धैयंबान् सुधील विद्वान् सत्योपदेशक ब्राह्मणकी सदा मितष्ठा यश बढ़ाये और खाय श्री-वरोंको चदा प्रवन्न रक्खे कि जिन श्रीवरोंने निता-न्त परमार्थरूप महान् उपकार करके मेरे श्रीर व-लिक अन्य मेरे समाजो भाइयों के तथा आस्तिक साधारण सनातनी भाताओंके भी अति कठिन स-न्देह रूप अन्धकारको प्रवत्तशास्त्र प्रमाण और अ-काट्य सद्युक्तियुक्त वचनों से ऐसे दूर किया है कि जैमे स्पेनारायणके प्रखर तेजमे मंपूर्ण जगत्का छ-न्धकार नाथ व दूर हो जाता है-इसलिये में इस श्राद्धविषयमें तो निःसन्देह स्नाप धर्मरक्षको गृर समभ कर आप सद्गुक्योंके चरणकमलों में प्रेम से चिर नवाता हूं। हे मभो! मुभपर समा करो छीर मुभको आशीर्वाद देखी !? सनातनी-प्रिय महाशय जी ! सदासुखी भव ! खायुष्मान्-भव ! ?

इति श्री श्राद्वपित्तमीमांसायां श्राद्वकर्मणि ब्राह्मणानामधिकाराऽनधिकारनिर्ण-यने समाप्तीयं पष्टीऽध्यायः ॥ - श्रीसाम्बशिवार्पणमस्तु ॥ ओ३म्-शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

"ॐ-नमोऽन्तर्यामिणे"

॥ त्र्राय सप्तमोऽध्यायः ॥

मेरे प्रिय आधुनिक आर्यंसमाजी महाशयोंको निम्नदर्शित श्राद्धविषयक त्रिशत् (३०) प्रश्लों के णास्त्रप्रमाण युक्तियुक्त उत्तर देनेके लिये प्रार्थना॥ मझ १-स्वा० दयानन्दजीने सन् १८०५ के सत्या-र्यमकाश्रमें "जितने जीवित हों उनके नामसे तर्पण न करे किन्तु जो २ मरगुथे हों उनके नामसे तर्पण करे" लिखा है मो इसकी तुम प्रमाण न्यों नहीं मा-नते ?। यदि मानते हो तो जीवितांको ब्राह्मतपूर्ण कहना मिच्या क्यों नहीं है । यदि कही कि स्वा० द० ने ऐसा नहीं कहा और न लिखा किन्तु खपाने शोधने वालोंने वैशा बनादिया है तो क्या तुम में में कोई भी समाजी महाशय वेद पुस्तक हायमें ले कर अपयवे कहदेगा कि यह बत्य, है। अर्थात् स्वा-मीजीने नही लिखा किन्तु छपाने थोधने वालोंने ही मिलादिया ॥

प्रश्नं २-जब स्रथवंवेद १८। १। ४४॥ (स्रमुं य देंगुः) मन्त्रांग्रका स्त्रयं प्राणवायुमात्र सूक्ष्मदेहधारी पितर निकक्तके अनुसार सिद्ध हो चुका है तो जी-वित स्यूल देहधारियों में वह स्त्रयं कींसे घट सकेगा। क्या उससे मृतिवितर सिद्ध नहीं हैं ? तथा अथवंवेद तर बड़े अन्तरिक्ष लोक में प्रवेश करचुके सी क्या तुम्हारे जीवित ही पितर अन्तरिक्ष आकाशमें मवेश कर सकते हैं ?। यदि नहीं कर सकते तो मृतपि-तरोंका ब्राह्म तर्पण उक्त मन्त्रसे सिद्ध क्यों नहीं है ? ॥ प्रमू ३-जब अथर्ववेद १८।३। ४४॥ (अग्नि-ष्वात्ताः पितर एह गच्छत)यहां हविष् खानेके लिये उन पितरोंको बुलाया गया है कि जो मरणानन्तर अग्निमें जलाये गयेथे। क्योंकि (यानग्निरेव दह-न्तस्यदयति ते पितरोऽग्निष्वात्ताः) जिनको जलाता हुआ अग्नि चाट जाता है वे पितर अग्निष्वात्त कहाते हैं यह अग्निष्वात्त पदका सर्थ शतपय ब्रा० में लिखा है तब वे अग्निष्वात्त पितर जीवित कैसे हो सकते हैं। इस प्रमाणमें भी मरोंका ग्राह्म होना चिद्ध एयों नहीं है ? क्या तुम्हारे मतमें जीवित ही जलादिये जाते हैं छौर क्या जलजाने पर भी वे लोग जीवित ही बने रहते हैं ? यदि ऐसा हो तो दाहकर्म होजाने पर किसी समाजी को क्या जी-वित दिखासोगे ? ॥ म० ४-अथर्ववे० १८। ३। ७२ (ये ते पूर्वेपरा-गताः) जो पहिले पितर पूर्वकालमें व्यतीत होगये उनके लिये भी तपंश करना चाहिये। क्या इस प्र-

माण ने मरेहुये पितरों का श्राद्ध तर्पण चिद्ध नहीं होता! और क्या रेचा कथन जीवितोंमें घट सकता है! प्र- ५-अथर्ववे० १८। ४। ४८। (मृताः पितृषु चंभवन्तु) मरे हुए पितर पितृयोनिमें प्रगट हों उ-न्हींके लिये श्राद्ध तर्पण होता है। क्या यहां मूल-वेदमें मृत शब्द नहीं ? श्रीर क्या इससे मरींका श्राद्ध तर्पण सिद्ध नहीं होता ?॥

मर्व-अयर्व० १८। ४। ६३ (अधामासि पुन-रायातनो गृहान्०) यहां पार्वणादि माधिक ब्राह्में पितरों का विश्वजंन करके महीनेभर बाद फिर बु-लाना कहा है। सो क्यां जीवित पितरोंको तुम म-हीने २ में एकही बार भोजन देते हो? क्या वे ऐसा करने से जीवित रह सकते हैं। यदि हां कही तो रेने कौन हैं ? ख़ौर (नमः पितृभ्यो दिविषद्भ्यः०) अयर्व वै० १८। ४। ८०। दिवि नाम स्वर्गहोक में रहने वाले पितरोंको यहां नमस्कार कहागया है। सो क्या जीवित ही समाजियोंके पितर स्वर्गमें जाते हैं ? यदि कोई जीवित स्वर्गमें जाते नहीं दीखें ती इससे मरोंका बाह्य करना सिद्ध क्यों नहीं है ? ॥ म० ७-क्या तुम लोग (ख़पराहः पित्लाम्)

म० ९-क्या तुम लोग (ख्रपराहः पितृणाम्) इस धातपथ प्रमाणके ख्रतुसार भूले पिताको भी दो-पहरके बाद ही भोजन क्दोगे ? ख्रीर मनुष्यके भी-व्यनका समय मध्यान्ह लिखा है तो क्या तुम्हारे जीवित पितर मनुष्य नहीं हैं? जब कि मनुष्य हैं तो मनुष्यों ख्रीर पितरोंका भिन्न समय क्यों रक्ला है? क्या इससे जीवित मनुष्यों से पितरोंका भिन्न होना ित हूँ नहीं ? तथा जब शतपथ काण्ड र । ३ ४। में लिखा है कि (तिरहवनै-पितरो मनुष्येभ्यः) मनुष्यों में पितर छिपे नाम श्रद्वश्य होते हैं। चो क्या जीवित सनुष्य पितर मनुष्यों ने कभी छिपे नाम श्रद्ध रह सकते हैं ? क्या इसने मृतपितरों के लिये श्राह्म स्पष्ट सिद्ध नहीं है ? क्यं श्रतपयमें पिण्डदान

के बाद पीठ फेर लेना लिखा है सो क्या तुम जी-वित पितरोंको भोजन परोम कर उनकी खोर पीठ करदेना ठोक सममते और वैमा ही करते हो ? ॥ मन्न ८--यदि खापके ही मतमें स्वामी दयानन्द जीने स्वय संस्कारविधि क्यी मुठ १८४० के पृष्ठ १०४

चमावर्तनसंस्कारप्रकरण में लिखा है कि "हाय में जल लेकर अपनव्य यानी यज्ञीपवीत वामपार्य क

रके दिलादियाकी तरफ मुख करके "ॐ पितरः गुन्निप्यम्" इस मन्त्रके वह जल पृथ्वी पर छोड़ें" भी का तुम इससे भी जीवितों में जलदान मानी में पितं जीवितों का ही तपंण मानना चाहते हो तो (भूमि पर जल छाड़) का काटकर (पिताकी भूमि में लिटाकर उस के मुख में जल छोड़ें) रैसा क्यों नहीं बना देते हो? क्या स्वा० द० के रेसा लिखने से जब भी मरींका तपंण मानना सिद्ध नहीं हैं?॥

प० दे-संस्कारविधि सं० १५४९ प० १९६-नदाशम प्र-

प्र० ८-र्मस्कारविधि मं० १८४० पृ० १९८-गृहाश्चम प्र-करणमें बिल्वेय्वदेवविध-(स्रोइम् पितृभ्यः स्वधा-विभ्यः स्वधानमः) इस मन्त्रमे एक ग्राम दक्षिणमें रखनेको लिखा है चो यह ग्राम वा भाग किनको दिया जाता है ? स्रोर दक्षिणमें क्यों धरा जाता है ? क्या इसमें मृतग्राद्ध मानना सिद्ध नहीं है ? ॥ म् १०-इग्वेदादि भूमिकामें स्वा० द० ने "म-ग्निष्वात्त" का अर्थ अग्निविद्याको जानने वा अ-ग्निसे विशेष कार्य साधन करने वाले झंजनके डाई-वर ब्रादि किया और ब्रागरे ग्रास्त्रार्थ में स्वाव तु-लसीराम छादि समाजी उपदेशकों ने जलेहुए मुद् के परमाणु अर्थ किया इन परस्पर विरुद्ध दोनों में कीन अर्थ सत्य और दो में कीन एक मिच्या है? म० ११ क्या समाजी लोग स्रग्निष्वात्त पितरीं को युत्तानेके समय काले २ खंजनके ड्राईवरींका छा-षाहन करते हैं अथवा पं॰ तुलसीरामके किये अर्था-नुसार जले हुए मुद्कि परमाणुओंको (अग्निष्वा-त्ताः पितरएह गच्छत चदस्यदस्यदत) कहते हैं कि है जले हुए मुद्दि परमाणुश्री ? तुम लीग यहाँ स्ना-क्षी, अपने व सामन पर बैठो और भोजन करी त-या भीजनके वाद हमको बहुतना धन दे जाली।

नहीं हैं है ॥ प्र० १२-मन्वेद भाष्यभूमिकामें स्वा० द० ने प्र-

सी क्या मुद्कि जले हुए परमाणु आते, आसनोंपर बैठते, श्रीर भोजन करके धन दे जाते हैं ? इससे क्या नमाजियों के पितर मुर्दा के जलेंहुए परमाणु सिद्ध

तिचा की है कि हम निरुक्त-ग्रतपथादि प्राचीन

स्रापंग्रनथों के स्रनुकूल वेदार्थ करते और मानते हैं, किर ख़िन्द्यास पदका अर्थ शतपथ में विरुद्ध मन-माना व्याकरण की स्वरमिक्रवा में भी विरुद्ध किया है—मो मिथ्या क्यों नहीं ? और ऐसा करनेसे स्वा०

द्द० की पहिली प्रतिज्ञाका खराडन क्वा नहीं होगया? इसका तुम क्या जवाब रखते हो ? ॥ प्रञ्न १३-सत्वार्थ-प्रकाश छपे सन् १२८० के पृष्ठ ८८ वें में स्वामी द० जीने श्राद्धतपंश का शर्य करके

प्रक्षीर में कहा है कि यह जीवितों को है मरों को नहीं, और फिर ऋषितर्पक पितृतर्पक लिखके इस में आगे लिखे प्रर्थ मिद्ध किये हैं कि-११ ग्यारह प्रकार के पितर ये हैं—

के पितर ये हैं--नं० १--जो परमेश्वर परमात्मा और पदार्थविद्यामें निपुण हो वह (सोमसद)
नं० २--जो प्रग्नि अर्थात् विद्यदादि के जानने

नं र-जो अग्नि अर्थात् विद्युदादि के जानने वाले हों वे (अग्निष्वात) नं र-जो उत्तम विद्या युद्धि युक्त उत्तम व्य-

न्त १-ना उत्तम विद्या युद्धि युक्त उत्तम ध्य-वहारमें स्थित हों वे (बिर्हियह्) नम्बर ४-नो ऐख्यके रक्षक महीपधिके पान करनेसे रोग रहित और अन्य के ऐख्य रक्षक, औ-

करनेसे रोग रहित और अन्य के रेखर्य रक्षक, औन प्रधियों की देकर रोग नाश्रक हों में (सोनपा) पितर हैं॥ नम्बर ५-जो मादक (नश्रेकारक) और हिं-

नम्बर ५-जो मादक (नग्रेकारक) ग्रौर हिं-साकारक द्रव्योंको बोड़कर भोजन करते हैं वे (ह-विभेज) पितर ॥ नम्बर ६-जो जाननेकी योग्य वस्तुकी रक्षक और घृत दुग्धादि खाने खीने वाली हों वे (आज्यपा)

नम्बर अ⊸िजनका श्रन्छा धर्म करनेका सुखरूप समय हो वे (सुकालिन्) पितर हैं॥

नम्बर ८-ज्ञो दुर्शे नो द्रवह और श्रेष्ट्रोंका पा-सन करने हारे न्यायकारी हों वे (यम)॥

नम्बर ई-मन्तानोंके अब और मत्कारमे रक्षक व जनक हों वे (पिता)॥

नम्बर १०-जो सन्न स्रीर स्त्कारीं से सन्तानीं का मान करें वे (भाता)॥

नम्बर १९-स्वानी स्त्रो, भगिनी, मम्बन्धी स्रोर एक गोत्रका तथा सन्य कोई भद्रपुरुप व वृद्ध हो तो उन सबको सत्यन्त स्रद्धावे उत्तम श्रद्ध, वस्त्र, सुन्दर पानादि देकर स्रच्छे प्रकार जो तृष्ति करना है वह स्राद्ध व तर्पण कहा जाता है ॥ इति ॥

श्रव यमाजी महायव यहां पर स्पष्टक्रपे बतावें कि नम्बर एक १ के पितरों में पदार्थिवद्या जानने वाले चाहे वह हिन्दू हों या मुख्लमान या खंगरेज, सबया सभी ही पितर होंगे वा जहीं ? ॥

नम्बर २ ट्रक्रेफे पितरों में श्रीन श्रीर विद्युत् (बानी विजुती) श्रादि को समक्षकर उपसे टेली-ब्राम श्रीर टलीफोन खादि काम करने व बनानेवाले तारवायू पर्गेरह और श्रीन से रेल का श्रञ्जन तथा और मशीन पर्गेरह बनाने व चलाने वाले हिञ्जनि- यर, गार्ड, ड्राईवर स्रीर भोदलर फिटर वगेरह स्नाप के पितर होंगे या स्नव्य कोई? वयोंकि इस वक्त स्न-निन स्रीर विज्ञलीको ज्यादा समभने व काममें लाने

वालें तो ये ही उपरोक्त विलायत के महाग्रय श्रीर हिन्दुस्तानके मिस्ली वगैरह हैं॥ नम्बर ३ में तो श्रंबेजों के सिषाय श्रीर कोई

होंगे ही नहीं। क्योंकि वे ही १०० में ट्रा तक पहे हुए श्रीर सायन्समें इस वक्त सबसे बढ़े चढ़े हैं कि जिन बुद्धिमानोंकी राह लेकर व उन्होंके रिवाजको पसंद करते हुए श्रपनी समाजिनी लेडियोंको श्रंगरेजी ले-

डियोंके समान कूट घूमने फिरने और जलसों (उ-त्मवों) में बहुक्षों मनुष्यों के बीच बैठने व लेक्चरारी अरनेमें स्वतन्त्रता देकर हमारी भारतवीरांगनाओंके चनातन पतिव्रत धर्ममर्यादाको तोड़ते हुए स्त्रियोंके प्ररम लड्जारूप आभूपणोंको अपने ही हार्योंके खीन रहे हैं कि जिसका नतीजा सब यह निकल रहा है

प्रस्म लज्जारूप आभूपणोंको ख्रपने ही हाथोंसे छीन
रहे हैं कि जिसका नतीजा ख़ब यह निकल रहा है
कि वे समाजिनी विदुषियें नियोग और विधवाबिवाह करना मंजूर करके ग्यारह ११ पित तक खसम
क्रारना चाहरही हैं और दूसरा खसम तो बहुतेरी
खान्दानी समाजिनी विधवाझों ने किवा है विक पंडित तुलसीरामादि समाजी उपदेशकों ने तो इस निन्दित, व्यभिचारहप नियोग वा विधवासियाह

निन्दित, व्यभिचारहर नियोग वा विधवाविवाह पर ख़ौर भी जोर लगाकर पचकन्यांचिरवादि * छोटे छोटे ट्रैक्ट रचकर प्रमिद्ध करते हुए उन तप्न वि-दुषियोंको प्रमन्न किया है। वाह ! वाह ! ये ही तो इन आर्थ्याभावियों के धर्म हैं !!! अप्षोच ! श्लीर अतेर लज्जा! है प्रभो! हे नाथ । तू ही भारतवी-रांगनाओं के पतिव्रतधर्म व ,चनातन आर्थ्यमर्थादाकी रक्षा कर ॥ अस्तु ॥

नम्बर ४ में शायद डाक्टर फ़ीर हकीम ही होंगे। क्योंकि वही लोग फ़ीपि जानते व दूसरों

को स्रोपधियें देकर स्नाराम करते हैं ॥ नम्बर ५-में सरावगी, वैष्णव, स्रोव यह होंगे।

क्योंकि इन लोगों के बराबर हिंगाकारक मांग ख़ीर मिद्रा ख़ादि मादक द्रव्यों से ज्यादा परहेज टूमरों को नहीं होता ॥ नम्बर ६ में तो सम्पूर्ण संसार ही पितर होगा

क्योंकि घी टूघ सब ही खाते हैं। विल्क भंगी च-मार फ़ादि फ़ीर पशुभी टूघ पीते हैं। इसलिये घी फ़ीर टूघ खाने पीने वाले सब ही इन समाजियोंके

"आज्येषा" नाम वाले पितर होंगे॥ नम्बर ३ के पितरों में मिर्फ स्रमीर लोग ही

. नम्बर ० के पितरों में सिफं ग्रमीर लोग ही होंगे।क्योंकि उन्हींका मुखरूप प्रच्छा समय जाता है ज़ौर नम्बर ८ में तो सिवाय राजाके कोई हो

स्त्रीर नम्बर ८ म तो सिवाय राजाक कोई हो ही नहीं सकता? क्योंकि दुशें की दयह देनेवाला

 इम व्यभिवार प्रचारक निन्दित पुस्तकोका मुखतीह जवाय और सद्युक्तियुक्त खब्हन श्री सनातनपर्मरक्तक वि-द्यावायस्पति विद्वद्द प० भीनसेन ग्रमादि महोपदेशको के रिषत "विषयाधिवाहभीनांसा" श्रीर "पञ्चकन्याचरित्रा-दि" पुस्तकोर्मे देसो ॥ न्यायकारी राजा ही हो चकता है। अब कहिये कि स्वामी जी के लेखानुसार तो संसारभर चाहे कोई जाति हो आप का पितर अर्थात् पिता हुआ और

पुत्र का नाम ही न रहा क्या यह बात यथार्थ है ? श्रीर इसकी आप मानते हैं कि नहीं। अगर मानते हैं तो वस खबरदार हो जाइये ? व साजसे रिश्तेका नाम मिटा दीजिये क्योंकि जाहिरा देखनेमें समर्चे

वह आपका भाई या भतीजा या खड़का है या कोई दूसरी कम कीम है परन्तु उस ने भी दूध पिया है व अभीतक द्रध पीता होगा आजरे उस को पिता ही कहिये श्रीर फिर सगर साप के समाजियों में से

किसी को कोई जाति जंच नीच मली बुरी गाली देया मारबैठे तो इस का युरान मानिये क्यों कि वह भी शायद स्वामी जीके लेखानुसार किसी कि-स्मके पितरों में से आपका पितर जरूर ही होगा और

कदाचित सगर स्रीर किसी नम्बर में न भी स्नाया तो दूध पीने वाले वितरोंमें तो सवश्य ही स्रावेगा सिवाय इसके प्रव किसी आदमीकी ताबेदारीमें द-

लिक जुतातक उठानेमें मापको परहेज न करना चा-हिये क्योंकि संसार में पितृसेवा ही मुख्य * धर्म है

+ बाह ! । स्वामीजीने क्याही अच्छा (जीवित पि-तरीका) श्राह तर्पण कराया । धन्य भाग्य हैं उन श्राध-

निक आर्घ्योंके कि जो सम्पूर्ण संसारभर के ननुष्योंकी अ-

प्रगर आप इतने पर कहें कि पितृग्रब्दि पिता का अर्थ नहीं है तो आप ही कहिये क्या होगा? जरा स्वामी जीका लेख सत्यार्थप्रकाश पृ० टंटें पंक्ति २३ वा उन्हीका यजुर्वेदभाष्य अध्याय १८ को देखली जिये।

अश्च १४- स० प्र० पृ० १०० में "धन्वन्तरये स्वाहा। यह द्यावाप विवीभ्यां स्वाहा। ये जानुगायेन्द्राय नमः। श्रो३म्-वानुगाय यसाय नमः। श्रो३म्-वनस्पतिभ्यो नमः। श्रिये नमः। मद्रकाल्ये नमः। दत्यादि लिख्तर कहा है कि रेती वा पृथिवी ही पर पत्र विद्याक्तर जन पर पूर्वदिशादिके क्रमानुषार उपरोक्त मंत्र पढ़कर अन्नके भाग यानी ग्रास रक्षे, पीछे जो कोई श्रतिथि हो उस को खिला देवे और नमक मिलाहुशा अन्न अर्थात् दाल भात रोटी शाक वेगेरह उठकर (६) छै भाग पृथिवीमें घरे॥ इति॥

हे प्रिय महाशयो ? अब जिद्ध और पत्तपात के पर्दे नेचों से हटाओ और अपने उपदेशकों से पूढ़ी कि स्वाठ दठ जीने इन उपरोक्त मन्चोंका गर्व स्प- एतया क्यों नहीं लिखा ? क्या इस में कोई भेद हे क्योंकि और जगह तो स्वामी जी ने स्क ग्रब्द भी पना पिता माता समक्तर उनका अत्यन्त प्रेम क श्रदा भे

पना पिता माता समक्तकर उनका अत्यन्त प्रेम व अद्वासे
आद तर्पण करते हैं। परन्तु न मालूम कि वह समाजी अ-पनी खियोकी (स्वा० द० रिचत नम्बर ६ के "धाज्यपा" नाम बाले वितरोंमें समक्ती व मानते हुए भी) क्या मा-नेंगे या करेंगे अथांत दूप भी साने के कारस अवश्य ही उन अपनी खियोको विष्-मुद्दा में निर्नेंगे॥ व्यर्थ नहीं छोड़ा हैं फिर यहां खर्ची का क्यों भोजन करगये ? क्यों साहव ! इन भागों से क्या प्रयोजन है ? ग्राप तो विद्वानींका नाम देवता कहते हैं फिर यह भाग किसके विया वनस्पति और लहमी रोटी खातीं है या पृथिवी खाने साती है? ईखर मूर्तिके मामने तो भोग रखनेमें जीप को बड़ा रच्च होता है और आप प्विवी जड़ पदार्यको भीग रखते हैं वह क्या बात है और फिर अनुचरों (लप्रकर व चेना) च-हित इन्द्र, वंच्या, यम इत्यादिके नामोंसे रखना छीर उन को भाग देना यह तो आप चनातन कवा ले चैठे, अगर पुरानी नहीं हैं तो कहिये यम का नाम यहां भी हाकिम ही का होगा या नहीं? स्तीर जब यायद यह अनुचरों के सहित आजावेंगे तब कहिये गरीबका क्या हाल होगा उस का तो एक हो दिन में दिवाला निकलता है फिर ये रोज र का नियम कहांतव्य चलेगा ॥ म० १५-साप तो विद्वानी की ही देवता कहते हैं फिर कहिये यह भद्रकाली, वनस्पति, जल महत्त इत्यादि भी कोई विद्वान घर र फिरने वाले हैं जि-न्हें प्यम् २ भाग देनेको बतलाया है, और जब वि-हान् ही देवता हैं तो यह पनद्रह सोलंड नाम प्रल-हदा अलहदा क्यों; क्या उन विद्वानोंके नामके साथ यह भद्रकाली वनस्पति इत्यादिका विशेषण रहता है विवाय इनके इन पन्द्रह मोलह विहानोंको रोज री ग कहांतक कोई खिलांबेगा इस पर अगर आप

कहें कि एक २ ग्राम निकालें तो कहिये कि क्या वे एक ब्रामचे चन्तुष्ट हो चकते हैं कभी नहीं ! अगर आप कहें कि ये ईश्वर के नाम हैं तो हम कहते हैं कि ईखर एक है एक ही भाग निकालना योग्य है श्रीर सगर साप कहें कि उनके सनन्त नाम हैं तो नामानसार भाग भी अनन्त होना चाहिये फिर ये पंद्रह मोलह ही क्यों ? श्रीर श्रापका ईश्वर निरा-कार है फिर निराकार ईश्वर कैंसे इन साकार प-दार्थी को खावेगा क्या निराकार ईखर को पाञ्च भौतिक प्राणीवी तरह भूंख लगती है ? यदि नहीं कहो तो फिर ये प्रापके दिये सब भाग व्यर्थ हैं? ग्राचे हां कहो कि ईखर हमारे इस भक्ति को व्या-पक रूप से देखकर प्रसन्न होता है तो अब आप ही फैंगला करो कि हम गनातनी और आप गमाजि-योंमें पक्कें (कट्टर) मूर्त्तिप्जक कीन हुए ? प्रश्न १६-(प्राम्। श्विकताः पितरश्रमीणिता एका क्रिया हृयर्थकरी प्रसिद्धा) व्याकरण महाभाष्य के इस प्रमाण से भी मृत पितरोंका तर्पण करना सिद्ध है। तब ऐसे प्रमाण वेदोक्त होने पर भी मरों के बाद्ध तर्पण मानने में तुमं क्यों हिचिकिचाते हो। थ्या हमने मृत पुरुषों के ब्राह्म तर्पण की सिहि में चेदादि के जो अनेक प्रमाण दिये हैं उनके लिये तुम्हारा कोई उपदेशक या पिएडत हाथ में वेद पुस्तक लेके ग्रपय कर कह सकेगा कि सृत ग्राद्धके

लिये ये सत्य २ प्रमाण नहीं हैं॥

प्रश्न १९-(तृतीयाह प्रद्यीरिति यस्या पितर जासते अथवं० १८। २। ४८) यहां से जपर प्रद्यो नामक तीसरा लोक है जिस में पितर लोग रहते हैं। सो क्या तुम्हारे जीवित पितर कहीं खाकाश्र में लटका करते हैं। ख़ीर मंचमें कहे वे ही पितर हैं जिन के लिये श्राद्ध तर्पण किया जाता है। तब वया इससे जीवितों के श्राह्म माननेका खरडन नहीं होता ?॥ प्रश्न १८-विद्धान्त शिरोमणि प्रतक को स्वा० द० ने प्रामाणिक साना है उनमें लिखा है कि (तत: श्रेपाणि कन्याया यान्यहानितुषोडश । ऋतुभिस्ता-नितुल्यानि पितृभ्योदत्तमक्षयम् ॥) वया यह कन्या के सुर्ध्य में होने वाले बनागत श्राद्धीं के लिये आ-पं ममाण नहीं है ?। प्रश्न १६-क्या तुम लोगों ने यह मिच्या कुतर्क नहीं किया है कि राजा कर्ण से चलने के कारण कर्णागत कहाये फिर कनागत अपभ्रंश हो गया। इस मे कर्ण राजा के पहिले कनागत ग्राह्म नहीं ये। क्योंकि जब चिद्धान्त शिरोमणि के प्रमाणा-नुसार सन्यागत अब्द् मे कनागत हुआ कनागत

नुसार कन्यागत अन्द से कनागत हुआ कनागत आद्ध सनातन अनादि काल से सिद्ध होने पर तुम्हारा कुनर्क मिथ्या सिद्ध क्यों नहीं हो गया।
क्या अपनी सेसी २ रेसी २ निथ्या कल्पनाओं का
निर्मूल खरडन हो जाने पर अब भी लिन्जित
नहीं होगे?॥

प्रश्न २०-(त्राह्मे शरदः । पा० ४। ३। १२॥ य-रिंद भवं शारिदकं श्राह्मम्) पाणिनि ज्ञाचार्य के व्याकरण का यह मूच है। शर्य यह है कि शरद् चतु नाम कार्तिक में होने वाले श्राह्म शारिदक कहाते हैं। यहां सन्य ज्ञातुओं के श्राद्धों का विचार छोड़ के शरद्चतु के खाम श्राद्धों का प्रमाण होने चे क्या इन कनागतों का प्रचार पाणिनि श्राचार्यचे भी पहिले स्रति प्राचीन कालचे चला चिद्ध नहीं हैं।

प्रश्न २१-यदि तुम्हारा यह मत है कि पुत्र के दिये बाह्न का फल पिता को नहीं पहुंच-धकतातो-मृतानामिहजन्तूनां, श्राहुचेन्तृ प्रिकारणम् । जीवतामिहजन्तूनां, वृथापाथेयकरुपनम् ॥

मरे हुए प्राणियों को यदि श्राद्ध का फल मिल सकता है तथ जीवित भनुष्य जब मुसाफिरीमें जावे तय घर के मनुष्य श्राद्ध द्वारा उसकी तृष्टित मार्गमें क्यों नहीं कर सकते। इस नास्तिक चार्याकके श्रीर तुम्हारे मत में क्या भेद हैं? यदि कुळ भेद नहीतो तुम भी नास्तिक सिद्ध क्यों नहीं हुए?

प्रम २२-तुम कहते हो कि मरे हुए पितादिको जन्मान्तर में ब्राह्स तर्पण का फल मिलने का कोई प्रत्यक्ष प्रमाण वा छनके हाथको रचीद नही खाती तो फल पहुंचता है यह कैंग्रे मान लोंगें। तब तुमग्रे पूळा जाता है कि जपने किये शुभाऽशुभ कर्मों का फल जन्मान्तर में खपने को मिल जाता है इस में

क्या प्रमाण है! क्या इसमें प्रत्यक्ष प्रमाण वा रसीद दिखा सकते हो? जब नहीं दिखा सकते तो यहां भी चार्वाक नास्तिक का मत (ऋणंकृत्वा चृतंपि-चेत्र) क्यों नहीं मान लेते हो?॥

प्रश्न २३ - तुम कहते हो कि मरजाने पर प्रन्य के किये कर्म का फूल प्रन्य को नहीं पहुंच मकता तो यदि कोई राजा रईम दशलाख कपयों का कि भी खाम के नाम या क्या के नाम मधीयत नामा कर जामें कि दस अब के प्रायाणका महानुक्त हा

कर जामें कि इस धन में अनायालय, मदावर्त्त वा पाठयाला आदि धर्म के अमुक २ काम किये जा-या करें, और वे काम ठीक २ केंमे ही हों तो क्या उन कामों में होने वाले उपकारों का पल उस धन

उन कामों थे होने वाले उपकारों का फल उस धन दाता की जन्मान्तर में नहीं मिलेगा? यदि कर्ता-श्रोंको मिलना कही तो उन का कमाया धन नहीं है शोर जिसने वसीयत नामा किया उसको फल न मिले तो क्या ऐसा पुष्य का काम निष्फल होगा? फल पहुंचना मानना पड़ा तो उसी कायदे से था-द्वादि धर्म करनेके लिये पिता, अपने पुनको धनादि सर्वस्व सी पता है तव पुत्र कृत याद्वादि का फल

प्रश्न २४ - जब कि (आत्मार्वे पुत्रनामािक)
(आत्मार्वे जायते पुत्रः) इत्यादि श्रुति स्रीर (गभौभृत्वे इजायते) (भार्यापुत्रः स्वकातन्ः) इत्यादि
स्मृतियों में पुत्र मे पिता का स्रभेद या एकता दिखाई है तब तुम पूट रूप भेद वा स्रन्य २ होने का
भगढा क्यों लगाते हो !

पिता को क्यों नहीं मिलेगा?॥

मञ्ज २०-(त्राह्धे शरदः । पा० । ३। १२ ॥ श-रदि भवं ग्रारदिकं ग्राह्मम्) पाणिनि स्नाचार्य के व्याकरण का यह सूत्र है। प्रार्थ यह है कि शरद् चतुनाम कार्तिक में होने वाले श्राद्ध धारिदक कहाते हैं। यहां अन्य स्तुओं के ब्राद्धों का विचार छोड़ के शरद्क्तु के खास ब्राह्में का प्रमाण होने से क्या इन कनागतों का प्रचार पाणिनि स्नाचार्यसे भी पहिले अति पाचीन कालमे चला सिद्ध महीं हैं?॥ प्रश्न २१-यदि तुम्हारा यह मत है कि पुत्र के दिये बाद्ध का फल पिता को नहीं पहुंच कतातो-मृतानामिहजन्तूनां, श्राद्वचेत्र प्रिकारणम् । जीवतामिहजन्तूनां, वृथापाथेयकरपनम् ॥ मरे हुए पाणियों को यदि श्राद्ध का फल मिल मकता है तब जीवित मन्द्य जब मुसाफ़िरीमें जावे तब घर के मनुष्य श्राद्ध-द्वारा उपकी तृष्ति मार्गमें क्यों नहीं कर सकते । इस नास्तिक चार्याकके श्रीर तुम्हारे मत में क्या भेद है? यदि कुछ भेद नहीं तुम भी नास्तिक चिद्ध वयों नहीं हुए ? प्रश्न २२-तुमं कहते हो कि मरे हुए रि जन्मान्तर में श्राद्ध तर्पण का फील मिल मत्यस प्रमाण वा छनके हायकी रशी तो फल पहुंचता है यह कैंसे मान पूछा जाता है कि सपने किये फल जनमान्तर में अपने की 🖁

क्या प्रमाण है। क्या इसमें प्रत्यक्ष प्रमाण वा रसीद दिखा सकते हो? जब नहीं दिखा सकते तो यहां

भी चार्वाक नास्तिक का मत (अर्णकृत्वा घृतंपि-बेस्) क्यों नहीं मान लेते हो । प्रश्न २३ -तुम कहते हो कि सरजाने पर प्रज्य

के किये कर्म का फूल अन्य को नहीं पहुंच सकता तो यदि कोई राजा रईस दशलाख रुपयों का कि सी खार के नाम वा सभा के नाम सरीयत नामा

सो खास के नाम वा सभा के नाम वसायत नामा कर जावे कि इस धन से अनायालय, सदावर्त्त वा पाठशाला आदि धर्म के अमुक २ काम किये जा-या करें, और वे काम ठीक २ वेंसे ही हों तो स्था उन कामों से हीने वाले उपकारों का फल उस धन

उन कामा में होने वाल उपकारा का जल उस धन दाता को जन्मान्तर में नहीं मिलेगा? यदि कर्त्ता-फ़्रोंको मिलना कहो तो उन का कमाया धन नहीं है ख़ौर जिमने वसीयत नामा किया उसको फल न मिले तो क्या ऐसा पुरुष का काम निष्फल होगा?

है और जिसने वसीयत नामा किया उमको फल न मिले तो क्या ऐसा पुरव का काम निष्फल होगा? फल पहुंचना मानना पड़ा तो उसी कायदे से श्रा-द्वादि धर्म करनेके लिये पिता, अपने पुत्रको धनादि सर्वस्य सींपता है तव पुत्र कृत श्राद्वादि का फल पिता को क्यों नहीं मिलेगा?॥

प्रश्न २४-जब कि (आत्मार्चे पुत्रनामाधि)
(आत्मार्चेजायते पुद्मः) इत्यादि युति और (गभौंभूत्वेहजायते) (भार्यापुत्रःस्वकातन्ः) इत्यादि
स्मृतियों में पुत्र मे पिता का अभेद था एकता दिआई है तब तुम मूट रूप भेद या अन्य २ होने का
भगड़ा क्यों लगाते हो !

मण्ण २५-क्या तुम पिता का खंश पुत्र को नहीं मानते हो। जब अवयवरूप है तो हाथ मिहनत के रके रोटी बनाता, मुख चवाने महीन करने में अम करता है पर हाथ कुछ भी नहीं खाता मुखको स्वाद खाता ख़ीर पेट कुछ भी मिहनत नहीं करता परन्तु भूंख निवृत्तिरूप मुख्य फल पेटको ही होता है तब अन्य हाथके किये कर्मका फन पेटको क्यों पहुंचता है। क्या इन हाथ मुख पेटमें भी लड़ाई करा छोगे वा क्या यहां भी खर्डन करोगे?॥

प्रश्न २६--सामवेद भाष्यकार स्वा० तुलसीरामजी ने अपने भास्करप्रकाशके इसी ब्राद्धप्रकरणमें बहुतेरे मन्त्रोंके अर्थमें यह लिखा है कि यह हवन हमारे मृत प्वंजींके लिये फलदायक हो, अब आप ही बतला-इये कि स्नापके मृत पूर्वज क्या इस स्नापके हवनकी गन्ध लेनेको जीते बैठे हैं ? और यदि नहीं बैठे हैं स्रीर उनका उनके कर्मानुसार किसी योनिमें जन्म हो चुका है तो फिर यह हवन आपका उनके वास्ते कैंगे फल दायक हो सकता है ? और यदि आप का हवन उन को फलदायक हो मकता है तो फिर बतलाइये कि हमारा पिगडदान बगैरह क्यों हमारे मृत पूर्वजो को फलदायक न होगा । अब यदि फिर आप कहें कि हमारे स्वा० तुल गीरामजीका ऐगा गिद्धान्त नही है तो फिर विशेष बतलाने व दिखलाने की क्या ज्ञावपयकता है ? केंयल भार पर पृर १३८ में अयर १८। २। ४८ का ही उसका किया हुन्ना अर्थ देख-कर यदि ययार्थ है तो कुछ लिजत हो जाइयेगा ॥ मझ २०-यदि फिर आप कहें कि हवन की सु-ध वायुद्धारा उनको पहुंच मकती हैं-तो मैं फिर ताहूं कि क्या हमारे विगडदानकी और उम भो-की सुगन्धि (जो ब्राह्मणों के लिये बनाया गया उसी वायुद्धारा हमारे वितरींको न पहुंचेगी?

प० २८-यदि तुम नास्तिकोंके सामने प्रत्यक्षादि शद्धादिको सिद्ध न कर सकने के कारण वेदोक्त इादिके खएडनका पाप अपने धिर लादते हो तो । उसी कायदेसे तुम्हारे अन्य मन्ताअ वेदादि का डन नहीं हो सकता ?॥

मश्न २६ं यदि तुम्हारा दावा हो तो श्रम्युपग-वेद्धान्त को लेकर हम मनातनी तुम्हारे वेदादि तब्यका खराडन करनेका नोटिम तुमको देते हैं। वया तुम श्रपने मन्तब्यका मएडन करनेकी शक्ति। ति हो॥

मम् ३०-जब स्वामी शंकराचार्यजी तथा कुमात भद्दादि बड़े २ नामी विद्वानों ने नास्तिकों के
य बड़े २ प्रवन शास्त्रार्थ करते हुए भी ब्राद्धादि
कर्मीका त्याग वा खरडन न किया तो नास्तिकों
भयसे प्रपने वेदोक्त धर्मका त्याग करना क्या यह
स्हारी निर्वलता नहीं है ? ॥ इत्यनम् ॥
इति श्रीश्राद्विपतृमीमांसायां प्रिय समाजो
सहाद्ययेभ्यः श्राद्विपयक ३० त्रिंग-

्रत्रज्ञानामुत्तरप्राप्त्यर्थं समा-प्रापं सप्तमोऽध्यायः॥

नवीन पुस्तकों की सूचना।

. १-श्राद्धपितृमीमांसा-पद पुस्तक देवनागरी अक्षर श्रीर हिन्दीभाषामें अपा है। इसमें वर्त्तमान श्रीयं समाजियों के जितने (श्राहु व पितृपत्त) कर्म में सन्देह श्राप्या श्राहिप होते हैं उन सर्वोक्ता प्रश्नीतरहृपमें श्रत्यन्त प्रवत्त प्रमाख तथा सद्दुप्तियों से ऐसं निवारण किया गर्मा है कि जिन्हों एक-

वार भी आहिसे अन्ततक पढ़नेसे थोडी बुद्धि वाला भी आर रितक जन ठीक समफ सकता है कि (श्रोट्स व पित्रयज्ञ किर्स कर्मका नाम है, इसका रहस्य क्या-है और वेदादि सच्छास्त्रों में यह कर्म किनका अर्थात जीबितोका वा मृतपितरोका द-शिंत है ?। पुस्तकको साईज १८-१-२२ है॥

ि वेदसं चाविचार]-इंस पुस्तकमें वेदादि ग्रन्थ और विदसं चाविचार]-इंस पुस्तकमें वेदादि ग्रन्थ और निरुक्तादिसे ब्राह्मणग्रन्थों का वेदत्व सिंदु किया है। तथा आर्थेसमाजियोकों इसके विषवों दिये प्रमाणों का खरहन है

आयंग्यमाजियोके इसके विपत्तने दिये प्रमाणों का सरहन हैं मूर्ण)॥ पुरतक नागरी भाषाने हैं॥
(३)—[आर्धुनिक महर्थिकी पोल)—यह देवट

श्री १००८ परमपूष्य जगतगुरुश्रीद्वारकाश्चारदायीठाणीश्च स्वा-नी श्रद्धराचार्यजीके सम्मति पत्र भमेत देवागरी श्रद्धर हि-इभाषामा स्वापा गया है। इस में स्वा० द्यानन्दसरस्रती

्वर्तमाना अपूर्वन गया हु । इन न स्वार द्वानन्दसंस्थता (वर्तमान आर्यम्मन्योके ऋषि गुरुकीका संस्कृत व्याकरण में गरयववन्नतामें (अर्थात् उनके सत्यवादी होनेमें) तथा उनके स्वरावित ग्रन्थोके पूर्वावरिवित) इनिमें सूब ही पोल खोली व दिखायों गई है कि वह स्वामीकी व्याकरणमें कैसे बिद्धान् ये ?। मुल्प)॥ शक्तलर्ष अन्तर ॥

गिलनेका पता-मेक्टेटरी मनातनपर्मः मबहलान्तर्गत गीता-पाठगाला सुक्ष्याई याजार कराची सिन्धः सथा

याठशाला मुख्यद् धाजार कराची सिन्ध स्वय वैद्यराज चेठ मृलचन्द्र (साध) श्रीगिरिधारीजीक्रे भन्दिरके पास ठट्टा-सिन्ध श्रीहरिः॥

श्राद्धपितृमीमांसा

. जिसको

"बेद्संज्ञाविचार" और "आधु-निक महर्षि की पील" नामक पुस्तकों के रचिषता (सिन्ध) करांची सनावनधर्म

(सिन्ध) करांची सनातनधर्म मगडलेके संरक्षक पण्डित गीकुल चन्द्र शर्मा ने निर्माण किया —>>>>> Printed by B D.S. at the Brahm

. Press Flawahr city
प्रयमवार विक संबत्त १९६९ मूर्व

श्राद्धपितृमीयांसा

जिसको विसको

त श्रीवीरभानु शम्मात्मज, करांची "स-नातन धर्म मरडलके,, संरक्षक पं० गोकुछ चन्द्र शम्मां ने

पं० गोकुछ चन्द्र शम्मा ने श्रुति (वेद), स्मृति-घौतमूत्र-पुराख आदि धर्म शास्त्र एवं श्रीरामायख-महाभारतादि धर्म

इतिहासों के प्रवल प्रमाख और सह्युक्तियोंसे अलंकत करके सर्व झास्तिकानों के विविधसं--देह निवारखार्थ रचा ॥

ं जीर ं जीर जीमान् कत्रिय कुलदिवाकर समातन धर्म

प्रचारोत्साही (सुहासां वंश तिसका) द्वारेशी-य एक उदारचित्त व्यक्ति ने सर्व वेदमता सुया-इयों के उपकारार्थ खपाकर प्रसिद्ध किया ॥ प्रधासता ने विक्रम संश्रीहर दियास स्वरं

ई० सन् १९१२

॥ विषयसूची ॥

२ सन्मानपत्रम्। ३ प्रार्थना 9 ॥ प्रथम अध्याय में ॥ • ॥ प्रथम अध्याय में ॥ • ॥ प्रथम अध्याय में ॥ • ॥ प्रश्नाद्व श्वयादिक्षसकर्मकानानहि ० १ भ त्राद्व शब्द का शास्त्रोक्त अर्थ । १२ १ भ त्राद्व कर्म का रहस्य (फल) । १६ १ • ॥ द्वितीय अध्याय में ॥ 9 'त्राद्व, स्तिपतरींका ही होता है कि जीवित माता पितादि का ? । १९ ३	त्व इ. ५ १ १ १
२ सन्मानपत्रम्। ३ प्रार्थना 9 ॥ प्रथम अध्याय में ॥ • ॥ प्रथम अध्याय में ॥ • % अग्रह "क्याहै?अर्थात्किसकर्मकानानहै ० १ भ आह पब्द का शास्त्रोक्त अर्थ । १२ १ भ आह कर्म का रहस्य (फल) ! १६ १ • ॥ द्वितीय अध्याय में ॥ 9 'आह, स्तिपतरींका ही होता है कि जीवित माता पितादि का ? । १० ३	ध <u>:</u> द ११
 प्रापंता ।। प्रथम अध्याय में ॥ ४ "श्रादु"क्याहै?अर्थातिकसकर्मकानामहै ० १ ५ श्राद्ध ग्रब्द का शास्त्रोक्त अर्थ । १२ १ ६ श्राद्ध कर्म का रहस्य (फल) ! १६ १ । द्वितीय अध्याय में ॥ १ श्राद्ध, स्तिपतरींका ही होता है कि जीवित माता पितादि का ? । १० ३ 	द ११ १५
। प्रथम अध्याय में ॥ ४	११ १५
 ४ स्त्रादु"क्याहै?स्त्रर्थात्तिसकर्मकानामहे	१५
 भ श्राह गब्द का शास्त्रोक्त अर्थ। १२ १ ६ श्राह कर्म का रहस्य (फल)। १६ १ ॥ द्वितीय अध्याय में ॥ १ श्राह, स्तिपितरोंका ही होता है कि जीवित माता पितादि का?। १९ ३ 	१५
६ श्राहु कर्म का रहस्य (फल) । १६ १ ॥ द्वितीय अध्याय में ॥ ९ 'श्राहु, मृतिपतरोंका ही होता है कि जीवित माता पितादि का ? । १९ ३	
६ श्राहु कर्म का रहस्य (फल) । १६ १ ॥ द्वितीय अध्याय में ॥ ९ 'श्राहु, मृतिपतरोंका ही होता है कि जीवित माता पितादि का ? । १९ ३	
ं ॥ द्वितीय अध्याय में ॥ ९ 'ग्राहु, सतिवतरोंका ही होता है कि जीवित माता वितादि का ? । १९ ३	
9 'श्राहु, मृतिपतरोंका ही होता हैकि जीवित माता पितादि का ?। १९ ३	
l	é
"	8
॥ तृतीय अध्योय में ॥	,
८ मरणानन्तर पितादिकों के साथ उन	
1 3,	₹
॥ चतुर्थ अध्याय में ॥	
र कर्मानुसार उच्च नीच योनि में प्राप्त	
चन हमारे मृत पितादिको श्राद्ध कर्ममें	
दिया हुवा पिएड भोजनादि कैसे पहुंच	
जाते हैं? श्रयवा उन को ऋाद्ध भोजन	
पहुंचाने वाले वे कौन हैं ? कि जिन्हों	
में इतनी प्रलीकिक सामर्थ्य है। ४३, ४	B9
१० और तक्या, वे हमारे मृत पितर हमारे किये हुए आहु (पितृपक्त) में भी कभी	
आते हैं कि नहीं,, ? इस भाव वा संदेह	
से चठने बाले मन्न का भी ऋत्युत्तमस-	
माधान ४७ ४	

() S N १ हमारे वितरों के प्रति विषष्ठ भोजनादि 👯 पहुंचजाने की विश्वासदायक वेदोक, रसीदें) र मृत माशी श्रपने किये पाप पुरायकर्नोंकी अनुसार यदि वह पशु, पत्ती, यत्त, रा-घस श्रथवा गंधवं देवता होजाय तो फिर श्राहु कर्म में हमारा दिया हुआ चीर-घी-हलुम्रा-लड्डु-पकवान कचौरी वगैरः पदार्थ उनको कैते देहानुकूल रुचिकर(विय) होंगे ? प्९ ६२ ॥ पंचम अध्याय में ॥ ş वितृ लोक इस मनुष्य लोक से भिन्न कोई अन्य लॉक हैक्या? और वह कहां है? ६३ वित्रलोक निवासी वितरों का गरीर कैसा होता है ? और वे हमारे देखने में कभी आते हैं कि नहीं ? £Ψ É चन विवृद्धोंका राजा (स्वामी प्रधि-धाता) कीन है? Éc 97 ŝ विवलोक निवासी विवरोंके पूजन सत्का-र (त्राहुतर्पेषा) करने की क्या आध-श्यकता है ? और न करने से क्या हाति वा दोप है ?। 93 ॥ पष्ठ अध्याय में॥ न्नाहुकर्ममें (भूदेव) ब्रान्सणों की क्पा श्रावश्यकता है ? श्रीर क्या ब्राह्मणों को इसके लिये किसी राजा से कोई साटीं फि-केट रूप इकरार नामा भी लिखा हुआ मिला है ? । e.é ۲ų

श्राह कर्म में योग्य (श्रधिकारी) श्रीर

१८

श्रायोग्य (ध्रनधिकारी) ब्राह्मकों का निराय और श्राह भोक्ता तथा कर्ता की

श्राद्व दिन मे शवदय शास्त्रीक्त नियम से रहने की विधि॥ कलियुगमें समयानुदूल शाहुदि कर्मकैयोग्य

सुपात्र ब्राह्मणों का श्रत्युत्तम निर्णय । समयानुकूल सुपान ब्राह्मण के न निः ঽ৽ शने मे, आपत्ति कारा में तथा तमाम द्रिद्रता यानी कगालपने की हालत

मे भी गौरा श्राहु करने की अत्यन्त श्रा-वश्यकता श्रीर श्रीर सुगम विधि। ॥ सप्तम अध्याय में ॥

विय आर्यं समाजी महाश्यो से श्राह विषयक ३० तीस प्रश्नो का सभ्यता पूर्वे म सप्रमास युक्तियुक्त शीध २ उत्तर मिलने के लिये प्रार्थना।

नम्त्रतया सचना !!

भेरे प्रिय सभ्यगको को नम्रता से सूचित किया जाता है कि नेरी नन्म भूमि सिन्धु देश होने के कारण मेरा दिदी भाषा लिखने का ऐसा सरल अभ्यास नहीं है इस लिये क-दाचित् कहीं हिन्दी लिखने में अत्तर-गञ्द-वा भाषा शैली की गलती मालूम हो जाय तो रूपा करके समा करें और

१८२

११७

हस दत्ति से इस पुस्तक में सेतन्त रूप दूध का ही ग्रहण करें भवदीय कपाभिलापी--गोकुलचन्द्र ॥

·यह पुस्तक सनात्निधर्ममग्डल करांची की सहायतार्थ -)। पांच पैसा धर्मार्थ लेकर विना मूल्य दिया जाता है॥

LIBRARY

AV ALLES

त्रत्पुरुपायं विद्वतहे 'वक्षतुवहाय घीसहि, तभी दन्तिः प्रचीद्यात् ॥ कृ० यज्ञु० छारश्यक प्र० १० अनु० ५ ॥ श्रीगर्येशायनमः ! श्रीविद्वेदरायनमः !! श्रीविद्वागशायनमः ॥

॥ भूमिका ॥

मिय पाठक वृन्द ! ध्यान में रहे कि इस ह-

मारे यनातनधर्म के विरोधी वितरखावादी दुराग्रही अग्रास्त्रीय सम्प्रदाय के जन पूर्वकाल से चले
आते हैं और अपनी माया रूपी बंचना शक्ति से
उक्त धर्म के प्रवंधों को अग्रत्य मानकर अनेक प्रकार के उपद्रवों से आक्रान्त [पीड़ित] करते रहते हैं परन्तु उन पश्चपातियों के विचालों से यह
सनातन धर्म अद्यावधि अनविकेद्म अग्रिदम्ध सुचर्ण की न्यांई अपनी कीर्ति रूप निर्मल कान्ति
से प्रकाशवान् हीरहा, प्रत्युत वेही द्वे पी निर्मूल सुर।
और समय २ के अनुसार अनेक मत तथा पंच जो
श्रुति स्मृति विकद्ध प्रमरित हुये वे भी घोर रजनी
ने खद्योत (सुय् खुवीरे) के तुल्य अपना चमकार चमकाय स्थिक अध्यक्तरके साथ ही लय हो

गये। अब इस वर्तमान काल में आधुनिक नवणि-क्षित युवक जन समाजी भाई जिन्हों की बुद्धि में विपरीत भाषका आवेश हो रहा है वे सनातनधर्म नियंध ग्रंच फूत्य रीतियों को केवल कल्पित मान-कर रापनी प्रमत्त उक्ति युक्ति कपोल करपना की सत्य मान रहे हैं, सीर शास्त्र विरोधी जनों के मि-च्या प्रलाप कूट निर्वधों की नार्वक मानकर प्रत्यय कर वेठे हैं, मत्युत उन्हीं ख़चटित घटना मपञ्च निवन्धों की वार २ मुद्रायन्त्रों हारा प्रवर्तन कर रहे हैं तथा यत्र रिवहंद्वरिष्ठों ने दंश दिया वा नि-इत्तर किया उन पंक्तियों को छोड़ कर स्वकल्पित उक्ति युक्ति स्थापित कर रहे हैं। महा ग्रोक है ? कि इसी सनातन धर्मावलस्वियों के वंश में उत्पन्न होकर प्रयम अपने ही चनातन धर्म रूपी वन को हैयर्थ वितंडा वाम्जाल जुठार से छेदन कर रहे हैं? स्तीर पूर्व ग्रंथ कर्ता ऋषिगण तथा निज पूर्वज सा-चार्यों को अल्पन्न मानकर अपने ही विशिष्ट वृद्धों का उपहान कर रहे हैं। यदापि अनेक बार मत्येक यनातनधर्म प्रभाओं से ये नितंडाबादी निरुत्तर हो चुके हैं तथापि-"जानत हैं बूकत नहीं लानत ऐसी जिन्द। तुलसी इसर्चसारको हुआ मोतिया विंद" इत्यादि केवल हठ मात्र स्थित होकर सनभिन्न सा-्धारता जन समूह की उन्मार्ग से च्युत करने की क्रोचिय कर रहे हैं थी ख़ब इन्होंके स्नन्थिर कुतर्ल

रूप वाग्जाल को श्रुति स्मृति स्नादि धर्म शास्त्रोंके प्रवल प्रमाण और स्नर्काट्य युक्ति युक्त इस "श्राद्ध पितृमोमांचा" नाम पुस्तक रूप पज् से निर्मूल छेदन करने के लिये श्रीमान् सचिय कुल भूषण स- स्म प्रचारोत्माही उदार चित्त मेठ जी प्रते निज भेम पूरित प्रवंध करने में कोटिशः धन्यवाद देकर १ * गुप्त नाम में सन्मान प्रवस्तर्ण किया जाताहै॥

सन्सानपत्रम् ॥

सहर्ममार्ग परिपोपित्रधावतन्द्रः । रुद्धा व्रजाऽधिपति कश्चित् क्षत्रिवोरः ॥ सत् श्राहुं मण्डन मकार् यदाज्ञ्यादः ।

सच्छास्त्रसिद्धनयसंहतसर्ववादः ॥१॥

श्रवित्-त्रेष्ठ धर्म मार्ग के पालन विधिन्नें आ-लस्य रहित "ठट्टा" नाम प्रजाने श्राधिपति सचिकुल में बीर किसी एक पुरुष ने पूर्ण प्रेम से, सम्पूर्ण कु-तकों के निवारण करने वाले श्रेष्ठ शास्त्रों से सिद्ध किये गये पुस्तियुक्त इस "श्राद्ध-पितृ-मीगांमा" नाम पुस्तक के रचनार्थ (सर्वोपकार होने में) ग्रा-चा की ॥१॥ सो-

१ के जिस सित्रिय बीर बैठ जी ने ऐमे परमार्थ क्रय उ सम दान में अवना मास प्रसिद्ध (प्रगट) न कराने में पूर्व उदारता दिवलाई है अर्घात "मुप्तदाग महापुरुष" का ही अनुषरत्व किया है। इम लिये बैठ जी के कहें अनुषार नाम प्रगट नहीं किया गर्था है। दुस्तर्कमानव पराष्ट्रतशास्त्रचिद्धश्राद्वप्रयोग सम नुष्टितसिद्धिसाधुम्। संदर्भमेतदिखलंख्यामिनूनं ठठ्ठाव्रजाधिपतिक्षत्रिवरेणयुक्तः ॥२॥

शास्त्र विषद्ध खोटे तर्क करने वाले मनुष्यों से

हूर किये गये जो वेदादि श्रेष्ठ शास्त्र सिद्ध "श्राह्म
कर्म प्रयोग" उन के अनुष्टान को पुनः सिद्ध
करने वाले इस संदर्भ अर्थात् व्याख्यान रूप लघु
ग्रन्थ को ठठ्ठा नाम अजके अधिपति श्रेष्ठ सन्निम
की आचा ने निद्यय पूर्वक रचता हूं * ॥२॥
सो यह——
"ठठ्ठात्रजस्थितसुधर्म सभास्थ्यस्थन

विप्रेणवीरभानवात्मज तद्विलेखि ॥ श्राद्वीयकर्मणि कुतर्किकृतानुयोग-स्तस्योत्तरंभवतु आस्तिकवर्यतुष्ट्यै" ॥३॥ ठ०्ठा नाम ब्रजमें स्थित स्नातन धर्म सभाके संरक्षक सभ्य श्रीवर पंo वीरभानु शर्मात्मज ब्रा-

ह्मण करके लिखा गया (याद्ध कर्ममें कुतर्कि लोगों * यद्यपि नेरे प्रिय सिंधी धाताओं को सगमता से स-मफ़ी के कारण यह पुस्तक मैंने सिंधी भाषा में ही रचा या जिसकी सूचना मेरे बनाये "प्रायुनिक महर्षिकी पोल" और

"वेद संचा विचार" इन दोनों ट्रैक्टों के पिछारी में छपाई गई यो परन्तु यन्त्रालय वालों से सिंधी भाषाकी भाषा शै-शी ठीक गुटुन बाव सकने के कारण पुनः यह हिन्दी में ही बोना ठीक समक्त कर दिन्दी में छपाया गया है इस किये मेरे सिंधी भाई मुक्ते चना करें॥ से किये गये मिथ्या कुतकों का) सत्य समाधान रूप उत्तर आस्तिक जनों के प्रसन्नतार्थ होया । ३ ॥ हे श्रीमान् ! आप सनातनधर्म रक्षक के कर कमलों में श्रीनंदनन्दन के प्रसाद रूप, तथा आशी-वाद की कुसुमाञ्जली रूप यह 'श्राद्ध पितृ मीमांसा' नामक ग्रन्थ अर्पित है।जैसा है आप का हे लीजिये ॥

शान्तिरस्तु ! भारोग्यमस्तु !! श्रायुव्यमस्त !!!

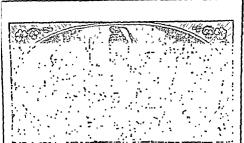
तदीय सार्वदिक शुभचिन्तक गोकुलचन्द्र।



11 🕸 11 सत्यमेव जयतिनाऽनृतम् ॥

उत्तिष्ठतजाग्रत प्राप्यवरान्निवोधत ॥

नहिसत्यात्परोधर्मी नाऽनृतात्पातकंपरम्॥



"एकं विवेकं नुमः"

॥ प्रार्थना ॥

ओइम् नमः' श्रीसाम्बसदा शिवाय ॥ ओइम्-सहनाववतुसहनी सुनक्तुसहवीर्यंकरवावहै। तेजस्त्रिनावघीतमस्तु माविद्विपावहै ॥ ९ ॥ ॐ∙श्रुतिनिगदितधर्मार्कः स्मृतिगतधर्मारु णोदयःशश्वत् । पौराणिकधर्मोढः पाखण्डस्त्रा

न्तनाशनीजयतु ॥२॥ सुक्रांत्रहाविचारसारपरमामाद्यांजगदुव्याः

पुनाम् (। वीणापुस्तकधारिणीमभयदांजाङ्गाः ऽन्धकोरापहास् ॥ हस्तेस्फाटिकमालिकां विद्-धतींपद्गासने संस्थिताम् । वन्देतांपरमेश्वरी-म्भगवतीं वृद्धिपदांशास्दाम् ॥ ३॥

दीहा धन यीवन उठ जांयने, जैसे उड़त कपूर। भन मृत्यु गोविन्द भज क्यों चाटे जगधर॥ सभ्यो ! ज्ञाज में ज्ञाप महोदमों के सम्मुख णास्त्रोक्त ब्राह्स कर्म पर विचार करने के निमित्त लगस्वित क्या है । ज्याप इस बातको जनसता चै

उपस्थित हुआ हूं। आप इस वातको उत्तमता में जानते हो कि मैंन कोई ऐसा व्याख्यान दाता हूं और न महामहोपाध्याय हूं तथान कदापि इस कार्य को पर्णतया करने में समर्थ हूं, परन्तु आप धर्म

को पूर्णतया करने में चर्मर्थ हूं, परन्तु आप धर्म यीरों के उत्साह और [परब्रह्म मिच्चदानन्द कंद श्रीकृष्णचन्द्र जी] की सहायतासे साधारण आस्तिकं जनों के सदेह निवृत्त्यर्थ धर्मरक्षक कतिषय क्षत्रिय-वरों की आचाको शिरोधार्य करके, अपना ही क-

जानों के सदेह निवृत्त्ययं धमंरक्षक कतित्य स्विय-वरों की आचाको शिरोधार्य करके, अपना ही क-र्तव्य समभ कर प्रश्न-उत्तर रूप में विविध गहन सं-देहोंके निर्मूल करने वाले इस "श्राद्ध पितृ मीमांसा" नाम ग्रंय को शीसद्गुर निखिल शास्त्र निष्णात

[श्रीवालराम जो] (उदाचीन) एवं विद्यावाय-स्पति विद्वद्वर पं० श्री भीमचेन धर्मा जो] धास्त्री विद्यावारिथि विद्वद्वर पिडल [श्री क्वालाप्रचा-द जो] मिश्र तथा कूर्माचल भूपण अधिकुल सं-स्वापक वाग्मिवर पंडित [श्री दुर्माद्त पन्त जो]

पादि महामहोपदेशकों की पूर्ण कृपामे एवं उन्हों के युक्ति युक्त चिद्धान्तानुसार अलंकृत करके आप धर्म रक्षकों के कर कमलों मे प्रेम से अर्पण किया जाता है आया है कि हर्प पूर्वक इस रक्षको आदि से यन्त तक अवश्य देखकर (पढ़कर) सद्धर्म का पूर्ण लाभ लेकर दीन को कृत कृत्य करेंगे।

प्रार्थी—गोकुलचन्द्र शर्मा ।

॥ ॐ॥ नमोऽन्तर्यामिणे

अथ स्त्राद्विपतृमीमांसा ।

S. N.....

भ्य स्राह्मापत्तमासा । प्रथमोऽध्यायः ।

प्रथम(ऽध्यायः । "धर्मे जिद्यासगानागं प्रमासं परनं श्रुतिः" मनु०॥

प्रश्नकर्ता समाजी महाशय स्त्रीर

उत्तरदाता सनातनी पण्डित समाजी-श्री पण्डित जी महाराज ! द्यापाले

मेरे इस संदेह का निवारण करो कि "ब्राह्म" क्या

है ! प्रयात् ब्राद्ध किस कर्मका नाम है और इस कारहरूव क्या है !

का रहस्य थ्या है ! सनातनी-महाश्य जी ! फ्राप यदि सनातन

एवं वेदोक्त बाद्ध समफने की सञ्ची अभिलापा क रते हो तो मैं जाब को मवल ममाण एवं अकाटण युक्तियों से बेध बास्त्रोक्त बाद्ध का भावार्थ और

उसका रहस्य भी सुनाना चाहता हूं। जिसकी सु-नकर ख़ीर पूर्णतया समक्तकर तथा अपने अन्य मिच समाजी भाइगों को भी समक्ताकर इस आह्र कर्म [पितृयद्य] का शास्त्रानुकूल श्रद्धा से अनु-

ष्ठान करके बद्धमें श्वं मोस का पूर्ण २ लाभ लेकर दुर्लभ इष मनुष्य देह को साफल्य करें, यही मेरी दूह आया है।

अधीतन्मनुः—(श्राह्मिति शब्दो वाच-की यस्य तत्कमे श्राहुशब्दम् इति-मदनपारि जातः) श्राह्म शब्दं कर्म प्रोवाच प्रजानिः श्रे यसार्थं तत्र वितरो देवता ब्राह्मणस्त्वाहयनीया-र्थे मासि मासि कार्यमपरपक्षस्याऽपरोह्न्यः श्रेयान्॥ इत्यादि ज्ञापस्तम्बीय मनु सम्मत वचनों से मृत पितरों के निमित्त पितृ देवों के पूजनार्थ होम, पिण्डदान आदि ब्राह्मण भोजन रूप जो सत्कर्म, यही शास्त्रोक्तं श्राद्ध शब्दका मुख्य भावार्य है। तात्पर्यं यह कि प्रजाके कल्याणार्थ वेदार्थ जाता भी महर्षि मनु महाराजने एक ऐसे गुभ कर्मका उ-पदेश किया है कि जिसका नाम "श्राद्ध" वा "पि-तृयज्ञ" है। सो जैसे देवयज्ञ में इन्द्रादि देवताओं का पंजन सत्कार होता है और आहवनीय अग्नि उन के तृष्त्यर्थ होम का आधार है-तेसे इस पितृ यज्ञ में पितर देंगें का पूजन सत्कार और इन्होंके तुष्त्वर्य होम का आधार अग्नि के जगह ब्राह्मणी का मुख है। यह कर्म महीने २ करना चाहिये और इस कर्म के अनुष्ठान में कृष्णपक्ष का अपराह (म-भ्वान्ह) काल ग्रत्यन्त ग्रेष्ठ है। तथा-"ग्रपर पक्षे भाद्धं कुर्वीत" इति कातीयब्राद्धसूत्रे । कातीय श्राद्ध सूचमें कहा है कि कृष्णपत्त में श्राद्ध करे। तथा यतपय ब्राह्मण में लिखा है कि जिस दिन न पर्व में और न पश्चिम में चन्द्रमा दीखे उसी दिन पि. तरीं के निमित्त पिएडदान करे। एवं

"अमावास्यायां यद्हश्चन्द्रमसं न पश्यन्ति तद्दः पिण्डपित्रपज्ञं कुरुते"॥ आपस्तम्बीय श्रीत सूत्र

तथा कात्यायन श्रीत सूत्र १।१।१— प्रथम प्रश्ना स्व प्रस्त ७ कर्

प्रथम प्रश्न, द॰ पटल ७ कं०॥ "अधराह्में पिगडपित्रयज्ञश्चन्द्राऽदर्शनेऽमा-बास्याम्"।

स्थित्रिक्ते महरों के वाद जिस दिन चन्द्रमा देखने में न सावे, उस समावास्या में पिएड पितृ

यज्ञ करे। प्रयोजन यह कि विवाह ख्रीर यज्ञीप-वीतादि के तुल्य एक खाच कर्म का नाम "ब्राह्स" या पितृयज्ञ है। इसी ब्राह्म में जो जो कृत्य जिस

२ मकार करना चाहिये और इस ग्राह्म के जितने अवान्तर भेद हैं वे सब अति स्मृति श्रीत गृह्मसूत्र श्रीर इतिहास पुराखादि में अति प्राचीन समय से

विस्तार पूर्वक लिखे हुए हैं जिन्हों के अनुपार अ-नादि काल ने पद्धतियां भी चली खाती हैं। जिस कृत्य में अद्यापर्यन्त किमी भी आस्तिक की कदापि मंदेह नहीं होता कि आद्ध किमको कहते हैं। परन्तु खब अनुमान ३० वर्षों ने किन्हीं आसुरी सम्प्रदायों के सनुष्यों ने स्वधर्म मर्माऽनमिन्न स्वयं भी धर्म से

क मनुष्या न स्वयम समाउनामच स्वय मा धम स च्युत श्रीर श्रन्य सास्तिक साधारण जन समूह को भी कलिकालके प्रभाव से श्रधीगति में पहुंचाने के लिये प्रत्यक्ष नेत्रोंमें धूलफोंकते हुए केवल धींगा धींगी मे यह प्रकट किया है कि जीवित माता पिता की सेवा करने का नाम ब्राद्ध है। परन्तु इसके लिये लेख प्रमाण वा प्रवल युक्ति इन्हों के पास कोई नहीं। मी अब यह कटता भी जाता है। मारांश यह है कि जैसे विवाह यद्योपवीतादि एक २ विशेष विधिसहि-त कर्म के नाम हैं वैसे ही माद्ध-भी एक कर्म का नाम है-स्रोर जो (ब्रद्धया क्रियते तच्छाहुम्), ब्रद्धांचे किया जाय यह ब्राद्ध है" ऐसा अर्थ करके समाजी सोग त्राद्ध को यौगिक मानते हैं वे लोग यह तो बतावें कि वे अग्रद्धारे अपने कीन २ काम करते हैं? यदि समाजोत्सव व्याख्यानादि सभी काम श्रद्धा से करते हैं तो तुम्हारे सभी कामों का नाम श्राद्ध हो गया फिर यह क्यों कहते ही कि, जीवित माता पिता की सेवा का नाम श्राद्ध है"। क्या मद्मभांस खाने पीने वाले खार्य समाजियों का मांस मदा खाना पीना सादि काम तुम्हारे मत में ब्राद्ध नहीं है ? क्या उन कामों को वे प्रयद्धा से करते हैं ? तथा यदि कोई आ। समाजी महाशय किसी समय प्रारब्ध कर्मानुसार रोग ग्रसित हो जाय तो फिर जब वह महाश्य अपने रोग के शान्त्यर्थ दवा औ-पध) वा अन्य कोई उपाय करे तो क्या वो अग्र-द्धा में करेगा ? क्या अपने शरीर के आरीग्यतार्थ उपाय करने में उसको श्रद्धा प्रेम न होगा ? श्रर्थात वह रोगी समाजी अवश्य ही ब्रद्धा से अपने शरीर

रक्षा के लिये उपाय करेगा-तब तो उस महाशय के मद्धा प्रेम से किये हुये उस उपाय को भी "मद्ध" फहना पड़ेगा । क्योंकि उसने ग्रद्धा में उपाय किया एवं ग्रा० समाजी ग्रपने शरीर पोषणार्थ जो भोज-न करते हैं-सो वह क्या अग्रद्धा से करते हैं ? तथा निद्रा (नींद) करना पायखाने में जाना ख़ीर गास्त्र नियमानुसार सन्तान उत्पत्ति के लिये स्व-स्त्रीमे संभोग करना इत्यादि मव कुछ वे ग्रद्धा फ्रीर पूर्ण चाहना से करते हैं-तो फिर इन उपरोक्त मब कर्मी का नाम ग्राह्म हुन्ना! फिर "ग्रह्मया क्रियते तच्छाहुम्" इम पंक्तिका अक्षरार्थ करके सरल स-नातनी मनुष्यों को क्यों नाहक भ्रमाते हो श्री। "जीवित माता पिता की सेवा" यह अर्थ उपरोक्त संस्कृत वाक्य में से किन अक्षरों का है और कहां से निकालते हो ? यदि कही कि हम अनुमान से

यह अर्थ निकालते हैं तो अन्य कर्म जो जपर दि-खलाये गये, (उन्हों को भी श्रद्धा से होने के का-रण श्राद्ध कहना) ऐसा अर्थ आप लोगों के वि-शाल बुद्धि में नहीं समा सक्ता ? अर्थात् अनुमानसे जैसा यह अर्थ कि श्रद्धा से जीवित माता पिताकी चेवा का नाम श्राह्म वैशा श्रुद्धा से उपरोक्त श्रन्य कर्मीं को करने का भी नाम गृाद्ध हो सकता है। फिर यह क्यों वेद शास्त्र विरुद्ध सर्थ करके ठगीसे

चरल ग्रास्तिकों की चन्मार्ग से गिराने के लिये

मिथ्या मनगढत संर्घ करते हो ! कि जीवित माता पितादि की चेवा का ही नाम गुद्ध है। इसके लिये आपके पाच कोई वेदादि शास्त्रों का प्रमाण है कि जिनमे यह स्पष्ट मिद्ध हो जाय कि जीवित माता पितादि की सेवा को ही शुद्ध कहना और न कदापि मृतकों के निमित्त दिया नाय उपको । यदि कोई ऐशा (मृतकों के निमित्त पिएडदान के निषेध रूप) वेदशास्त्रों में से प्रमाण खाप जिद्वि-यों के पास हो तो कृपा करके शीच्र स्पष्ट (जाहिर) करके अपना मुख उज्वल करो, अथवा रेसा सावि-त करदेने के लिये यदि कठिबद्ध न होगे तो क्या चनातनी धर्मात्मा जन यह नहीं चमर्भेगे कि-इन मा प्रमाजियों का वेदोक्त धर्म स्रीर जीवितों का गुद्ध भक्तना मिथ्या हल्ला और खास्तिक संप्रदाय को धोखा देना मात्र ही है! परन्तु शास्त्रोक्त शुद्ध क्रम जिन किनी को भी देखना हो तो वह पार-स्कर गृह्यस्य आध्वलायन श्रीत स्य, तथा परिशि-ष्ट कातीय भाद्ध सूत्र आञ्चलायन गृह्मसूत्र में एवं र्याखायन श्रीत, आपस्तम्ब श्रीत इत्यादि अन्योंमें दे-खे तो स्पष्ट चात हो जायगा कि "त्राद्ध" किसकी करते हैं और उनका रहस्य क्या है "त्राद्ध" कोई अमिसद्ध (दिया हुआ) कर्म नहीं है जिसके लिये ममाण देने की आवश्यकता पड़े, तथापि वेद विक द्ध मतावलम्बी जिद्दी मनुष्यों के मद अहंकार रूप

फ्रांधकार को सत्शास्त्र रूपी अखएड मूर्य्य के प्रखर तेज से निवारण करने के लिये दिग्दर्भन माच इस प्रथम अध्याय में और विस्तार पूर्वक द्वितीय छ-ध्याय में यथायोग्य समाधान किया जायगा कि माद्ध शब्द का शास्त्रों में कैसा अर्थ दिखाया गया है स्त्रीर उस का रहस्य क्या है ॥ यया महर्षि मरीचि मुनिजन स्पष्ट करते हैं कि प्रेतं पितृंश्च निर्दिश्य भीज्यं यत् प्रियमातमनः। श्रद्धया दीयते यत्र तच्छाद्वं परिकीर्तितम् ॥ श्रर्थ-सात्विक भोजन जो अपने को प्रियहोय वह मेतयोनि में गये उस मृतक के निमित्त यथा नाम उच्चारण करके श्रद्धाचे जो कुछ दिया जाय उसको ही श्राद्ध कहते हैं या उसी कृत्य का ही नाम श्राद्ध है। तथा महर्षि पुलस्त्य मुनिजनभी स्पष्टकहतेहैं कि संस्कृतंदयंजन।दांच पयोद्धिचृतान्वितम्। श्रद्धयादीयतैयस्मात्तेन श्राद्वंनिगद्यते ॥ देशेकालेचपात्रेच श्रद्वया विधिनाचयत् ।

भावार्य-दूध दही और घी में पकाया हुआ अन्न आदि, त्रद्धां और गास्त्र विधि पूर्वक देश काल स्वं सुपात्र ब्राह्मणों का ठीक २ विचार करके पितरों के निमित्त त्राद्ध के योग्य ब्राह्मणों को जो कुछ दिया जाय उसको ही त्राद्ध कहा गया है। तथा त्री योगी याद्यवस्वय मुनिजी ने आचाराध्याय में भी-

पितृनुद्धिः यंविप्रेभ्या दत्तं श्राहुमुदाहृतम् ॥

वसुरुद्गाऽदितिसुताः पितरःश्राहृदेवताः । प्रीणयन्तिमनुष्याणां पितृन्श्राह्नेनतर्पिताः २६०॥

आयु:प्रजांधनंविद्यां स्वर्गमोक्षंसुखानिच । प्रयच्छिन्तितथाराज्यं प्रोतानृणांपितामहाः। २००॥

सर्थ-वसु तथा बद्र एवं सिदिति सुत ये तीनों पितर जो श्राह्मके देवता हैं वो श्राह्म करके स्वयं तृप्त हुए मनुष्यों के पितरीं को भी तृप्र करते हैं। स्त्रीर श्राह्म कर्ता के प्रतिभी सायु, प्रजा, धन, विद्यास्वर्य

मोसयया योग्य मुख प्रदान करते हैं। इन वाक्यों से मृत पितरों का श्राह्म सिद्ध किया है। तात्पर्य यह कि जैसे परमात्मा के सृष्टि में देवलोक श्राद्ध श्रान्य लोक

हैं और उन्हीं के अधिष्ठाता इन्द्रादि देव हैं तैंचे कर्म-या पितृलोकः वृहदारययकः॥ दक्षिणाप्रवणीवैविदलोकः शतपथ—१३। ऽ।शणा

द्राक्षणाप्रवणा वापच्छाकः स्वत्य — (३) पाहाणा इत्यादि श्रुतियों के प्रमाण में एक पितृलोकभी स्वतन्त्र लोक है जिसके अधिष्ठाता अर्थमा अग्निष्वात्त एवं वसुरुद्राऽदिति सुतादि पितृदेव हैं। 'पितृणामर्थ्य-माचास्मि' श्रीमद्भगबद्गीता अ० १० श्लो० १९५

श्रर्थात्-पितृलीक निवासी जो सर्वमा नामक पि तर है वर मेरा स्वरूप है। सो ये जो श्रर्थमादि पितृ-देव हैं वेही इस ब्राह कर्म में पूजनीय देवता हैं

और इन्हों को ही वेद में देवगन्धवीं मे शतगुणित

अधिक आनन्द का भागी कहा है। अ और मरण अनन्तर पुरुष किस योनि में गया.है—और कीनदेश में है और उसके नाम पर उस के वंशीय पुरुषों ने क्या २ शास्त्रानुकूल कृत्य किया है, इत्यादि सब कमं के वह समालोचक हैं ? और वही पितृ देव वैदिक मन्बों से आहूत हुये मृत पितरों के वंशीय पुरुषों करके किये हुये श्राद्ध कर्म में उपस्थित होते हैं और श्राद्ध प्रदत्त आहुति तथा भस्य भोज्य आदिसामग्री के मारांग्र(तत्व) को वासना रूप से ग्रहण करके श्राद्ध कर्ताके प्रति प्रसन्ता पूर्वक आशीर्वाद देकर वैदिक मन्बों से विसर्जित हुये मृतपुरुषों को यथा योग्य सुख का भागीकरते हैं। (यह सब आगे सप्रमाण स्पष्ट होगा)

यद्यपि उन पितरों का स्वरूप हम इन वर्भ चक्षु-फ्रों मे प्रवलोकन नहीं कर सकते हैं तथापि शास्त्रीय

^{*} सर्वोच्च, सार्वभीम, चक्रयतीं, निष्कंटक राज्य भोका, निख्ति कलाविणिष्ट को प्रति यसिष्ठ राजा है उसको को प्रमानन्द है (जिसको मनुश्यानन्दकी सीमा कही जाती है) उस मनुष्यानन्द से प्रमानन्द है प्रमानुष्यात प्रधिक प्रमानन्द प्रथा को है। उसे समुद्धात प्रधिक प्रमानन्द देवगथर्वों को है। और उन से प्रतमुखित प्रधिक प्रमानन्द देवगथर्वों को है और उन से प्रतमुखित प्रधिक प्रमानन्द वित्तीक निवासी वितरों को है, यह सब तिलिरीयार्ययक तथा वृहद्गर्यक में स्पष्ट है। इस नियं वे वित्नीक निवासी पित्नदेव सहानु वैभव वाले समये और सर्वेश हैं।

पुरुष (अत्यन्त सत्यवादी पूर्णरीति से शास्त्र मर्या-दा पालन करने वाले टुड़ ग्रद्धालु पुरुष) के मन में पितरों का अदृश्य होकर आना अथवा यों कहें कि उर पूर्ण घद्धावान् पुरुपको ज्ञानचक्षु से पितरीं का दर्शन होना कुछ अर्गभव नहीं है। क्योंकि योग शास्त्र में यह विषय स्पष्ट है कि यदि काय किपमें पुरुष संयम करे तो वह पुरुष अन्यों से अदूरय हो कर यावत् व्यवहार कर चकता है। (योग दर्शन के तृतीय विभूति पाद के २१ वें सूच में यह स्पष्ट है।) तथा थी वाल्मी कि रामायण में सती थी सी-ताजी ने अपने मृत खशुर श्री दशरय जी का श्रा-द्धभोक्ता मुनी स्वरों के देह में दर्शन किया या यह मसंग जागे चतुर्य ज्रध्यायमें स्पष्ट खोला गयाहै।इति॥ महाशय जी ! अब आपको निः सदेह स्पष्ट ज्ञात हुना होगा कि श्राद्ध शब्द का शास्त्रीक्त सर्थ क्या है और किस कर्म का नाम श्रद्ध है। तथा उसका . रहस्य क्या है सो भी मालूम हुआ होगा॥ इति श्री श्राद्धिपतृ मीमांसायां श्राद्धशब्दार्थ तत्स्वरूप रहस्यंच प्रदर्शने प्रयमोऽध्यायः ॥

स्त्रय द्वितीयोऽध्यायः । समाजी-भी परिडत जी ! यह ब्राद्ध शब्द का

थास्त्र सम्मत युद्ध अर्थ तो अच्छी तरह जेरी सम-भ में आया परन्तु अव कृपा करके इस विषय में मुभे कुछ और ज्यादा वेद शास्त्रों के प्रवल प्रमा-णों से स्पष्ट करके बतलाओ कि श्रद्ध मृतकों का ही होता है वा कभी जीवित माता पितादिका भी?

सनातनी-महायय जी ! यदि आप जिज्ञासु होकर इस विषय का पूर्ण रीति से वेदादि शास्त्रों द्वारा निर्णय कराना चाहते हो तो में भी इस तु-म्हारी यंका का वेद शास्त्रों के यवल प्रमाण व सद्युक्तियों से निवारण करता हूं आप अब साद-धान होकर और पक्षपात रूप जिद्द की लाठी की छोड़कर प्रेमसे सुनो !

"श्राद्ध" जिस कर्म का नाभ है वह तो सदैव मृतकों का हो होता चला श्राया है स्रोर हो बक्ता है-जीवित माता पिता श्रादिकों की सेवा धर्म शा-स्त्रों में लिखे अनुसार अवश्य करना चाहिये वह पितृ मातृ सेवा स्वं गुरु सेवा श्राद्ध से भिन्न एक धर्म सम्बन्धी कर्म है जीवितों की श्राद्ध पद्धिति श्रद्धापर्यन्त चल्कि श्रायंस्माजियों मे भी न बनी श्रीर न कपी देखने में श्राती श्रीर न कभी जोवि-तों का श्रद्ध होना कहीं देखने में श्राता है। तथा श्राद्ध कर्म की पद्धतियें जिन ब्राह्मण्यंथ मंत्र तथा श्रीत गृह्मसूत्रों से घनी हैं उन सबों में मृतकों का ही त्राह्म सिंह है। इस लिये जीवितों का श्राह्म कहना निर्मुल केवल हठ मात्र है ॥ अब इस विषय को सिद्ध करने के लिये प्रथम मंत्र मंहिता (वेद) के ही प्र-माण दिये जाते हैं। सबेत होकर सुनो। अथर्ववेद कां० १६ अनु० २ मंत्र १८॥ "उदन्वतीद्यौरवमापीलुमतीतिमध्यमा । स्तीयादप्रद्यौरितियस्यां पितरआसते"॥ म्पर्य-ब्रह्मागढ के तीन लोकों में बीच का मन न्तरिस (भुवः) लोक कहाता है इस मध्य लोकके मंत्र में तीन भाग किये [उदन्वती द्यौरवमा] सूर्य चन्द्र नम्रचादि ज्योतियों का प्रकाश जिसमें फैल-ता है इस लिये वह (प्रन्तिरिक्ष छी) कहाता है। उस में पृथ्वी की श्रोर का भाग जल वाला अर्थात स्रंतरिस (स्राकाश) में जो नीलापन छाया हुआ दीखता है यह मूक्त जल है इस जल वाले सन्त-रिक्ष भाग का नाम "उदन्वती द्यी" है। (पील्म-तीति मध्यमा) और जल से जपरी आकाय का मध्यम भाग "पोलुमतीट्यो" कहाता है। स्रोर (तृ-तीयाह प्रद्योरिति) वह से जपरी अन्तरिक्ष का तोसरा भाग सूर्यादि के मखर मकाश वाला होने चे "प्रद्यो." कहाता है (यस्यां पितर आचते) इसी "प्रद्यो" नामक अन्तरिक्ष के तृतीय भाग में पितृ-

देवरहते हैं। प्रिय महाशय जी ! इन्हीं पितरोंका श्रद्ध होता है। मंत्र में कहे तीसरे खाकाश में रह-ने वाले स्यूल देहधारी जीवित पितर सिद्ध नहीं हो सकते । स्यूल देहधारी पितर पृथ्वीमें रह सक-ते हैं तृतीय खाकाण में नहीं। इससे जीवितों का पितर होना और उनका श्राद्ध मानना दोनीं खंश .खिरिडत हो जाते हैं। हमारा पक्ष केवल यह नहीं है कि हम मृतक का ही ब्राह्म सिद्ध करें किन्तु ह-मारा मुख्य पक्ष यह है कि स्यूल देहधारी अपने विद्यामान माता पितादि की सेवाका नाम ब्राह्म नहीं है। जीवित और मृत भन्दों में कई कुतर्क हो चकते हैं.जो मृत हैं वो भी जीवित हैं और जो जीवितहैं वे भी मृत हैं। क्योंकि जो मरे हैं वे कहींनकहीं किसी योनि में जन्म लेकर जीवित कहे जा सकते हैं। देव तथा पि-तरों की भी योनि हैं उन में जीवित कहना बन स-कता है। और जो मनुष्यादि जीवित हैं वे भी पूर्व जन्मान्तर में मर चुकने से मृत कहे जा सकते हैं। मृत ग्रब्द की भाषा मुद्दी नहीं है क्योंकि मुद्दी ग्रब्द का संस्कृत ग्रव है। इस लिये ग्रव नाम मुर्दा ग्ररीर का ब्राह्म करना शास्त्रों का सिद्धान्त नहीं। मुदीं का ग्राद्ध कहना उन कुतर्की लोगों का प्रलाप मात्र है। स्नात्मा वा सेत्रज्ञ न मरता है न जन्म सेता है किन्तु भूतात्मा मरता जन्मता है इस लिये [अधा मृताः पितृषु सम्भवन्तु । अधर्व०१८ । ४ । ४८ ॥]

मरे हुए प्राणी (भूतात्मा) पितृ योनि में उत्पन्न हों। इस अथर्ववेद के प्रमाण से भी सिद्ध है कि सत नाम मुद्दें का नहीं किन्तु भूतात्मा का है। शुभ जन युभ जन्म भरण भुतात्मा के होते हैं यह खंश मैं च्यु पनिषद् के तृतीय प्रशास्त्र में अच्छी तरह से वर्णन किया है। यदि मृत शब्द का भाषानुवाद कोई लोग करते हैं तो यह उनको समभ है किन्तु शास्त्रानुकूल नहीं है। इस लिखने से मेरा प्रयोजन यह है कि यदि कोई कुतर्की हमको पकड़े (कि जो लोग पि-तादि मर गर्य उन्होंने किसी योनिमें जन्म ले लिया तो वे जीवित हुये उन्हों का श्राद्ध तुम करते मानते हो इस लिये जीवितों का ही ब्राह्म तुम ने भी माना वा मान लिया) इस लिये इस सुतर्क की पहिले से ही निर्मल काट देने के लिये हम ख़पने साध्य पक्ष-स्य प्रतिचाका स्पष्ट व्याख्यान कर देते हैं कि हम उन पिता मातादि का श्राद्ध शास्त्रान्क्ल मानते हैं स्रीर करते हैं कि जिस भौतिक शरीर से वे हमारे माता पितादि कहाते थे उम ग्ररीर को छोडकर अन्य किसी योनि में परिसत (माप्त) हो गये हों। यही उनका मरना वा मृतक कहाना है॥ तथा-मंत्रवंहिता यु० यजुर्वेद अ० १८।६० मंत्र मे लिग्निष्वात्त स्नविग्वात्त दो प्रकार के पिन तर लिखे हैं। यदा-येअग्रिष्यात्ताये अनग्निष्यात्ता मध्येदियः स्त्रवयामादयन्ते०॥ यजु० १९ १ ६०

चे अग्निद्ग्धाये अनिश्वद्ग्धा मध्येदिवः स्व-धया मादयन्ते ॥ ऋग्वेद मगडल १० सू० १५ मं० ११ तथा अथर्व० १८ । २ । २५

जपर लिखे पतों पर उक्त मद्य वेद की तीन मंहिताओं में हैं, यजुः मंहिता में (अग्निष्वात्त अनग्निष्वात्त) पद हैं उन्हीं दो पदों के स्थान में (अग्निदम्ध अनग्निदम्ध) पद ऋग्वेद अथवेवेदमें लाये

गये हैं (मध्येदिवः स्वथंवा मादवन्ते) इत्यादिपाठ तीनों वेदों में एकचा ही है इवसे चिद्ध होता है कि सम्बेद तथा अर्थवं० में जिनको (अग्निदम्ध अनिश्च दम्ध) कहा है उन्हीं को यजु० में (अग्निप्वास अन-ग्निप्वास)कहा है। क्योंकि स्ववेद तथा अर्थवं में अग्निप्वास अनिव्यास ग्रव्द उन मनों में नहीं आगे तथा अग्निदम्ध अन्निव्यास ग्रीर स्व

आये इस से सिद्ध होता है कि अग्निष्वास और अ-ग्निद्यध का तथा अनग्निष्वास और अनग्निद्यध का एक ही अर्थ है ॥ पाणिनीय व्याकरण के अनुसार इन शब्दों का अर्थ यह है कि—

^{यह हास}— "ऑग्नना + स्वादिता: = अग्निष्वात्ता: १ अग्नि-ना + दग्धा: = अग्निदग्धा: ।

जलाते हुए अग्निने जिनका स्वाद ले लियांचा अग्निने जिनको जलाया वे पितर अग्निष्वात्तवा अ-ग्निदम्थ कहाते हैं। इसीयकार तृतीया समासमें वेदों में- लिखा अन्तोदात्तस्वर[यायघज्तताजिविष्ठकाणाम् ॥
पा० ६। २। १८४ मूच ॥ (गत्यादिभ्यः परेषां यादि
प्रत्ययान्तानामुत्तरपदानामन्त उदान्तो भवति ॥)]
इस मूच में सिद्ध होता है। सूचार्थ यह है कि-गति
कारक और उपपदने परे थ, अथ, घज्, त्त, अच्,
अप्, इच, और क प्रत्यवान्त उत्तर पदों को अन्तोदात्त हो, इससे अग्निकरण कारक में परे व्वान्त और
र दग्ध इन क्त प्रत्ययान्त उत्तर पदों को अन्तोदात्त
स्वर हुआ है। यद्यपि ऐसी द्या में जिल्ला का पाण-

नीय व्याकरण के अनुसार तथा संहिताओं के पर-स्पर मेल से अग्निष्वात्त पद का अर्थ सिद्ध होगया कि जो अग्नि से जलाये गये वही पितर अग्निष्वात्त तथा अग्निद्य हैं तब हमको अन्य ममाण की अ-पेला नहीं। तथापि (अधिकस्याधिकं फलस्) के अनुसार अत्पय बाह्मण वेद का भी ममाण देते हैं।

"यानिनरेव दहन्त्स्वदयित ते पितारेऽग्निष्वा-ताः ॥ यतपथ ब्रा०२।५।२। ॥ "अर्थात्-जला-ता हुआ अग्निही जिनका स्वाद ले लेता है वे पि-तर अग्निष्वात्त कहाते हैं। इस यतपथ ब्रा० वेद के प्रमाणने भी चिद्ध हो गया कि मरने पद्यात् जो अ-ग्नि मे जलाये गये वेही मृत पितर पितृयज्ञ वा आ-

प्रमाणमें भी चिद्ध हो गया कि मरने पद्यात् जो अग्नि ये जलाये गये वेही मृत पितर पितृयज्ञ वा आद्ध में लिये जाते हैं, मरने परही मनुष्य के श्वरीर
अग्नि ये जलाए जाते हैं, तथा जो जलाए गये वे
जीवित नहीं रह मक्ते हैं इसमें श्राद्ध में मृत पितरों

का ही ग्रहण मन्त्र संहिता के प्रमाणों से सिद्ध ही चुका। ऋग्वेदादि भा० भूमिका पुस्तक के पितृयञ्च प्रकरण में स्वामीद्यानन्द जी ने ख्रीनिप्यात्त ग्रब्द का अर्थ यह किया है कि "अगिन को अच्छे प्रकार जिसने ग्रहण किया है वे अग्निष्वात्त कहाते हैं"। यह अर्थ मंहिताओं के परस्पर मेलसे तथा भतपथ ब्रा० वेद से और पाणिनीय व्याकरण इन तीनों से विषद्ध है। उक्त स्वामीजी की प्रतिज्ञा उसी भूमिका पुस्तकमें यह यी कि महीधरादि भाष्य-कारों का किया हुआ वेदार्थ शतपवादि से विरुद्ध है और हमारा किया अर्थ शतपथादि ब्राह्मण भाग के अनुकूल होनेचे चर्चया शाह्य होगा ची वह प्रति-चा प्रव निर्मूल हो गई, स्वमुखसे स्वात्मण्लाचा करनी मानो विद्वताको ग्रमीना है स्वामी जी की स-त्यमितज्ञाकी, एवं संस्कृत में विद्वत्ता की और सत्य-षादीपने की तो बात ही क्या कही जाय ! आपती पूर्ण संस्कृतज्ञ, सत्यवादी और पूर्ण त्यांगी महर्षिया में मुक्ट ये इसीलिये तो आप ऋषिजीकी सेवा में "आ-धुनिक महर्षिकी पोल"नामक एक टैक्ट मेंट की ग-ई है कि जिस में आप श्री की विद्वता का पूरा २ गान किया है अस्तु तात्पर्य यह कि स्वा० ६० जी का किया अग्निप्वास शब्दका अर्थ शतपथ ब्रा० से. संहिता से तथा पाणिनीय व्याकरणसे विरुद्ध वा प्रयुद्ध प्रवश्य है जिसका समाधान वर्तमान प्राप्यमन्यो

में से कोई भी नहीं कर सकता और जो कोई गिरा पड़ा समाधान करेगा वह युक्ति प्रमाणों से अवश्य कट जायगा और अग्निप्वांत तथा अग्निद्ग्ध आ-दि संहिता के मंत्रों से भरे हुए पितरोंका बाह्यवापूजन होना अवश्यिस है जिसमें लेश माझभी सन्देह नहीं। मन्द्यके मरने परदो प्रकार की क्रिया होती है। एक तो मरेहुए मुर्दाको अग्नि में जला देना द्वितीय दो वर्षके भीतर जिन वालकों को वा कुष्ठादि (कोड़) रोग वालों को वा जिन संन्यासी आदि के लिये शास्त्र में प्रग्निदाह नहीं कहा है उन को तथा जिनका श्रग्निदाह किसी खास कारण से न हो सके उन सबकी, जल वाबन में फैंक देनावाखोद के गाड़ देना यह दो प्रकार की क्रिया होती है। ये सब फ़-निग्नवात्त वा अनिग्नदम्ध कहाते हैं। (अनिग्न-दग्ध) वा (अनिनिष्वात्त) का यह अर्थ होगा कि जो र अग्नि से नहीं जलाए गये। उनके विषय में बेद का यह मंत्र प्रमाण है कि अथर्व कां १८।२।३॥॥ येनिखातायेपरोप्ता येदग्धायेचोद्विताः। सर्वा स्तानग्रुआवह पितृन्हविषेअसवे ॥ अर्थ-मरने पर जिनको खोदफे गाढ़ दिया, जो बन वा जंगल में छोड़ दिये गए, जो स्रिम में जलाए ग-ए तथा जो युधिष्ठिरादिके तुल्य इसी ग्ररीरसे स्वर्ग को चले गए, है! अग्रिदेव उन चब पितरों को

हिषप् खानेके लिये इस ब्राद्धादि पितृकर्ममें बलासी।

है कि मरने पद्यात् ही, पृथ्वीमें गाड़देना स्नादि हो सकता है इस से स्नाद्ध में मृत पितरों का स्नावाहन करना सिद्ध है। वर्तमान प्रावंशादि स्नाद्धोंमें—

क्षायन्तुनः वितरः सेम्यासाऽग्निष्वात्ताः प॰ चिभिर्देवयानैः०॥

स्रांग्नमें जिनका दाहकर्म होचुका है ऐसे सोम गुओं वाले हमारे पितर देववान सन्तरिष्ठ मार्गसे इस स्राद्ध में सावें। इस मन्त्रके सर्वसे भी मरे हुए पितरोंका श्राद्ध सिद्ध है। तथा—

ये पूर्वापरागताञ्जवराः वितरस्र ये । तैभ्या घृतस्य कुल्येतु शतधारा व्युन्दती ॥ अथर्व०

कॉ॰ १८ अनु॰ २। मं॰ १२॥ अर्थात्, पूर्वं जो गये और जो जा रहे हैं उन पितरोंके लिये घृतकुल्या शतधारा होकर माप्त होवें।

यहां मृतकयाद्ध निन्दकों पूछना चाहिये कि वे यह तो वतावें कि उक्त मन्त्र में वो आपके कीन जी-वित पितर हैं जो पूर्व चलेगये और जा रहे हैं? और किस तरहसे आप उन चलेगए पितरोको पृत की आहु तियें दे सक्ते हो ! क्योंकि वे तो गए और आहु ति लेने वाला तो जब समक्षमें अर्थात् सामने

हाजिर होता है तब ले सक्ता है सो तो उक्त मन्ब के "ये पूर्वापरागता" इस पिक्त में वर्त्त मान क्रिया है ही नहीं वहां तो पूर्व चलेगये पितरोंका जिकिर

(30) जनितमपराधृम् (पुरुषता) मनुष्यत्वेन हेतुना (क-राम) वयं कृतवन्तः, हे पितरः तेन केनचिदपराधेन (नः) ग्रस्मान् मा (हिंसिष्ट) विधिष्ठ। भाषार्थ-है (विश्वे) निखल पितरी ! ग्राप(जा-नुम्राच्य) वाम जानु यानी वार्ये घोंटुको भूमि पर निपात (खोर लगाकर) कर (दक्षिणतः निषद्य) इस अग्नि से दक्षिणकी ओर स्थित होकर (इमं यज्ञम्) इस हमारे यज्ञ को [अभिगृशीत] स्तवन यानी खं-गीकार कीजिये, श्रीर [पुरुषता] चाञ्चल्य स्वभावरूप मनुष्यपने से, आपका [यद् आगः] [कराम] जो कुछ कर्म वैगुरययुक्त [अर्थात् इस यज्ञ कर्म में कछ कमी वा बुटि होजाने रूपी] अपराध किया हो तो तिस किसी अपराध से [नः] हमको [साहिंसिष्ट] हिं-

चन मत करो । इत्यादि
दिग्दर्यन मात्र दिखायेइन वेद मंत्रो द्वारा मृत
पितरों के ही निमित्त श्राद्धादि यद्य कर्मों में पितृ-लोक के अधिष्ठात्री देवों का आवाहन-नमस्कारा-दि स्तुति और पूजन चिद्ध है । तथा— "तिरहव वे पितरो मनुष्येभ्यस्तिर इवैतद्व-विति"॥ शतपथ ब्रा० २ । ३ । १ । २१ ॥

अर्थात्-िपतर लोग मनुष्यों से अदूरय होते हैं और पितरों का भोजन भी अदूरय बूक्स होता है। इस कथन से भी सिद्ध है कि स्यूल देहधारी पितर होते तो अदूरय नहीं कहे जाते। इसलिये पिराडदा- न संबन्ध में अद्यय पितर कहने से वे ही प्राण श-रीरी वायुकाय सूरम प्रदृश्य पितर लेने हैं। इस से भी जीविनों का खरडन तथा मृत दितरों का श्राह्म

सिद्ध है। तथा- *शतपथ ब्राह्मण में पितरों के लिये प्र-त्येक महीने में एक बार ख़ीर मनुष्यों के लिये मति दिन सार्य मातःकाल दोवार भीजन मजापति ने नियत किया। यदि जीवित पितरों को मानें तो वे

मनुष्य ही हुए तब बताओं कि वे ऐसे कीन मनुष्य हैं जो महीने में एक वार समावास्या के दिन ही भोजन करते हीं ! ऐसा मनुष्य कोई न हो सकने के कारण मनुष्यों से भिन्न मरणानन्तर पितृयोनि

गये पितर ऐसे समर्थ होजाते हैं-जिनको महीने भर में एक बार ही भोजन मिलने से तृप्ति रहती कए नहीं होता। इसमें भी मृतकों का बाद्ध सिद्ध है। शांखायन श्रीतसूत्र पिण्डपित्यज्ञ प्रकरण

में "न जीव पितुरस्ति," अ० ४ कं०४ सू० ७ ॥ श्रर्थात्-जिसका पिता जीवित हो वह पिगड पितृयज्ञ न करे उस के लिये पिएडपितृ यज्ञ नहीं है। इस प्रमाण से भी जीवित का निषेध करने से

मरे पितरों का ब्राह्म अर्थापत्ति चे चिह्न है। अर्थात् जि-मका पिता जीवित हो वह बाद्ध न करें तो यह आ-

या कि जिसका पिता मर गया हो वह पिएडपित * शतपच ब्रा॰ कां॰ २ प्र॰ ३ मं॰ २ श्रीर ३ मे त्र स्प-ष्ट रूप से आगे अध्याय ५ में वर्णन किये गये हैं वहां देखी।

यज्ञ करे तथा ग्रांसायन ग्रीत सूत्र साक्षमेध पर्वस्य महापितृयज्ञ प्रकरण अरु ३ कंट १६ सूत्र २ ।

ि पित्रभ्यो वा सोमबद्भयः पित्रभ्योत्रर्हिप द्रभ्यः पित्रभ्योऽग्निष्वात्तेभयः] ।

सोमवान्, बहिंबद् और अग्निब्वास इन तीन नाम वाले पितरों के लिये महापितृयच में भाग दिये जाते हैं। इन में अग्निब्वास पितर वोही हैं जो मरणानन्तर अग्निदाह को भाम हुए। इस में भी मृत पितरों के लिये आहु होना सिद्ध है तथा पियड पितृ यच्च मकरण कात्यायन जीत सूब २३ अंध 8 कंवर।

[प्रेतेभ्योददाति]

भेत नाम मरे हुए पिता पितामहादि के लिये पिराड देता है अर्थात् देने चाहिये। अर्थापत्ति आया कि जीवितों के लिये नहीं। इस में भी मरे हुआ के लिये पिराडदान देना चिद्ध है तथा आपस्तम्ब श्रीत सूत्र पिराडपितृयद्य मकरण।

यदि जीवितपिता न दद्यादाहोमात्क्रेत्वा विरमेत्॥

यदि जिसका पिता जीवित हो वह पिएडदा-न न करें तो होम पर्यन्त ही पिएड पितृ यज्ञ करके ठहर जावे। इससे भी मरें हुओं के लिये पिएडदान सिद्ध है। तथा मानव करूप सूत्र में लिखा है कि।

यदि ददाह येभ्य एवं पिता दद्यात् तेभ्यो दद्यात्॥ जिसका पिता जीवित हो वह यदि पिएड देवे

तो जिन पितामहादि मरों के नाम से पिता देवे उन्होंके लिये पुत्र भी पिराडदान करे अर्थात् अपने जीवित पिता के नाम से पिराडदान न करे। इससे भी मरे हुए पितादि के लिए पिराडदान विद्व है।

"पिता पुत्री चेदाहितारनी स्यातां येभ्यः पिता तेभ्यः, पुत्री द्यात्। पिता प्रेतः स्यात् पिता तेभ्यः, पुत्री द्यात्। पिता प्रेतः स्यात् पितामहो जीवेत पित्री पिण्डं निधाय पितामहा त्पराभ्याम् द्वाभ्यां द्यादिति ॥

यदि पिता पुत्र दोगों ने विधिष्ष्वक श्रौत स्मा-

याद पिता पुत्र दाना न विषिप्यक श्रात स्मार्म श्रानियों का स्वापन किया हो तो अत्येक, श्रमावास्या के दिन दोनों को पिषड पितृयन्न करना
चाहिये। इस दशा में जिन तीन के, नाम से पिता
पिषडदान करें उन्हींके लिये पुत्र भी विषड देवे
किन्तु पुत्र श्रपने जीवित पिता के नाम से पिराडदान न करें। ग्रीर यदि पिता मर गया हो पितामह
(दादा)जीवित हो तो पुत्र को चाहिये कि पिता
के नाम से पिषडदान देके जीवित पितामह (दादे)

को छोड़ उपने पूर्वके प्रितामह वृद्ध प्रितामह दोनों के लिये पिण्डदान देवे। यह विषय ऐसाही ज्यों का त्यों मनु० प्र०३ प्रलो० २२०। २२९ में भी लिखा है जिस से सिद्ध है कि मृत पितादिके लिये पिएड-दान होता है इसीका नाम श्राद्ध है। प्रयोजन यह कि प्रमार्था से तो अच्छी प्रकार सिद्ध है कि "श्राद्ध"

मरे हुए पितादिका होता है जीवितों के मत्कारका नाम "याद्र" किसी यंथ से कदापि सिद्ध नहीं हो सक्ता है, इत्यलम् विद्वत्सु ॥

इति श्री श्राहृपित्तमीमांसोयां मृत पितृणा-मेव श्राहृ सिह्वि प्रदर्शने द्वितीयोऽध्यायः ॥

॥ त्र्रय तृतीयोऽध्यायः ॥

समाजी-श्री परिष्ठतजी महाराज ! मृतकोंकी श्राद्धिसिद्ध में ये अत्यन्त प्रवल, शास्त्रममाण और सद्युक्तियां सुनकर अब मेरे हृद्यके संशय रूप क-

सद्युक्तियां सुनकर ख़ब मेरे हृद्यके संशय रूप क-पाट खुल गये हैं और मुभे दूछ विश्वास हुआ है

पाट खुल गय ह आर मुम दूढ विश्वाव हुआ ह कि "शाद्ध" मृतकों का ही होना निःसंदेह स्त्य एवं वेदानुकूल है। इसलिये हम-अब इन आपके दिये शास्त्र प्रमाण रूप अस्त्रोंको लेकर अपने आर्थ्यम-माजी महाश्योंको अविद्या-हठ और पक्षपात रूपी महाश्र्वेष्ठों पड़ेंसे खुड़ाने की एवं वेदोक्त सन्मार्ग

पर लाने की यथासंभव कोशिश करते रहेंगे।

पर लाने की यथासंभव कोशिश करते रहेंगे।

परन्तु हे पिछलत्जी! मुभे यह तोवतास्रो कि पिता

पुत्र का संबन्ध शरीरों के साथ है वा जीवात्मा
के साथ !। यदि शरीर के साथ मानो तो यह शा-

रीर यही अला दिया राख भस्म होकर मट्टी में मिल

गया अर्थात् रहा ही नहीं उस शरीर रूप पिताका म्राद्ध पुत्र करही नहीं चकता । स्रीरजीवात्मा किशी

का पिता वा पुत्र होता ही नहीं। क्यों कि जैसे जी-वात्मा न स्त्री न पुरुष और न नपंचक होता [श्रुति:-

नैव स्त्री न पुमानेष नचैवायं नपुंछकः] वैसे ही वह किसीका पिता वा पुत्र भी नहीं होता। फिर तुम पिगडदान का फल किन की पहुंचाते हो ?। अर्थात् मरने पद्यात् उस २ पितादिको मुख पहुंचाने के लिये

धाद्धकरना व्यर्थ समभा जाता है। सनातनी-प्रिय महाशयजी ! क्या आप गुक शिष्य पिता पुत्रादिका संबन्ध नहीं मानते ? यदि मानते हो तो ग्रारीर के साथ वा जीवके साथ, किस के साथ मानते हो ? यदि कही कि हम प्रत्यक्ष वि-

ने में प्राप्रसन्न क्यों होते ही ! तथा स्वा० द० को कोई

ब्रा कहे वा लिखे तो उपके साय। लड़ने की तय्यार वयों होते हो ! क्योंकि स्वा० द० का शरीर भरम हो के पंचतत्व में मिल गया उसके साथ तुम्हारा कोई संबन्ध हो ही नहीं सकता रहा जीवात्मा सो जैसे

वह किसी का पिता वा पुत्र नहीं वेसे श्री वह किसी का गृह वा उपदेशक भी नहीं ठहर सकता। इसलिये

द्यमान संबन्ध मानते हैं मरने पश्चात् किसी के साथ नहीं मानते तो यह बताओं कि स्वा० द्यानन्द की स्वर्गवास हुआ कहने में प्रसन्न और नरक हुआ कह-

(美) तुम को स्वा॰ दयानन्द का कभी नाम भी नहीं लेना चाहिये। ख़ीर यदि तुम ख़ब उन की प्रश्वका में स-न्तुष्ट प्रवज्न होते और उन को ब्रा कहने वाले पर स्रमण्य होते हो तो तुम्हारे मन से ही मरे जी घोंके माय मंबन्ध मिद्ध हो गया । यह उत्तर तो वैसा ही है जैसा प्रश्न या अब आगे आप -जिज्ञास महायय को तत्वांश समभाने के लिये इसी आंश पर कुछ वि चार तिखते हैं वह प्रश्नका समाधान भी होगा और

शास्त्रानुकूल चिद्धान्त जान् का हेतु भी होगा। प-रन्तु इस गहन विषय को आप पूर्ण ध्यान लगाकर धैर्य से सुनेंगे तो आशा है कि आप शीप्र ही इस उच्च चिद्धान्त को ठीक २ समभ कर पूर्ण लाभ ले मंकेंगे ॥ "जीव वा जीवोत्मा क्या है" इस विषय पर अ-

नेक विचार ग्रथों में मिलते हैं जिनका व्याख्यान यहां छेड़ा जाय तो एक यही बड़ा व्याख्यान चल जावे। इस लिये अधिक शास्त्र सम्मत सिद्धान्त जो वास्तव में वेदानुकून है वही यहां कहते है कि-बेद्के (द्वासुपर्णा०) मन्त्रमें दो आत्मा कहे हैं इन

दोनोंमें (अनक्षत्रन्यो अभिचाकशीति) जी गुभागुभ फल सुख दु:खभीग न करता हुआ केवल प्रकाश करता माजीरूपरे स्थित है जिसके लिये उपनिषदोंमें (माजी-चेताकेवलो निर्मुख्य) इत्यादि कथन लिखा गया है। मो जैमे जयां पुष्पकी खाया (भलक वा सामाम) स्व-च्छ कांच ग्रादि से सभीप होने के कारण पडुने से

कांच ल्रादि ठीक उसी पुष्पके रंग से रंगा दीखता है। उसी के ल्रेनुसार जपर लिखा गया साली ल्रा-रमा का ल्राभास लन्तः करवार्में पड़ता है। वास्तबर्में स्वालः करण जल है। पर चेतन के लालास से चेतन ही

अन्तः करण जड़ है। पर चेतन के आभास से चेतन ही अतीत हुआ करता है। अपने आभास हारा अन्तः क-रण को सचेत करता है इसी लिये उपनियदों में इस

रण को सचेत करता है इसी लिये उपनिषदों में इस आत्मा को चेता कहा गया है। इसी चेता का नाम सेच है यही सातात् ईप्रवर परव्रह्म परमात्मा है। श्री गीता में लिखा है कि—"सेच हे चिप मां विद्या सर्वे सेचे परमात्मा है। श्री गीता में लिखा है कि—"सेच हे चिप मां विद्या सर्वे सेचे परमें स्वी ही जानो। तथा मेनु ० अ० १२ में लिखा है कि—"

"योत्स्यात्मनः कार्ययता तंक्षेत्रज्ञं प्रचक्षते। यः करोतितु कर्माणि समूतात्माच्यते वुधः १२ जीव संज्ञोऽन्तरात्माऽन्यः सहजः सर्वदेहिनाम्। येन वेद्यते सर्वं सुखं दुःखं च जन्मसु ॥१३॥ तावुभी भूतसपुक्ती महान्क्षेत्रज्ञ एवच।

उच्चावनेषु भूतेषु स्थितंतं व्याप्य तिष्ठतः" ॥११॥
- अर्थ-जो इस सचेत गरीरमे कर्म कराने माला
है उसको परिखत लोग सेत्रच कहते हैं, और जो
गुभागुभ कर्म करता है वह भूतात्मा नाम गरीर कहाता है। नाथा गरीर के माथ ही आविर्भृत प्रकट

होने वाला जीव गंचक तीगरा आत्मा उन दोनों

से भिन्न है। गरीरधारी इसी जीव रूप साधन से ग-रीर धारण के समय सब सुख दुःख को जानेता है। वे दोनों जीव नाम महत्तत्व वा बुद्धि तथा के अध पंचभूत रूप स्यूल मूस्म शरीर में मिले हुए मब छोटे बड़े ग्रारीरों में व्यापक परमात्मा के महारे से ठहरे हुए हैं। जैसे सूर्य्य वादीपकादिका बाहरी प्रकाश आंखों से दिखवाता है वैसे ही सेवज सासीक्ष से अपनी चेतना द्वारा स्यूल सूदम शारीर से कर्म क-राता है। इसी लिये उपनिषदों में ईश्वरको [चेतन-श्वेतनानाम्] चेतनींका भी चेतन कहा है। जाननेका साधन जिससे मुख दुःख जानते हैं वही जीव है स्त्रीर जानने वाला वा करने वाला भुतात्मा है। भुतात्मा और गरीर एक ही के नाम हैं। गरीर तीन प्रकार का है-एक स्यूल द्वितीय सूक्ष्म तथा तीसरा कारण गरीर है। यद्योप प्रत्यक्ष में स्यूल गरीर कमं करता हुआ दीखता है। परन्तुस्यूल वास्तव में कर्त्तानहीं किन्तु सूक्ष्म शरीर मुख्य कर कर्म करने बाला है। स्यूल ग्रंरीर का नाम अन्नमयंकोष है। प्राणमय और मनीमय कोप का मुख्य संवन्ध सूक्ष्म श्रारीर के साथ है। मैं ज्युपनिषद् में भूतात्मा शब्द से इसी सुक्त श-रोरका गमनागमन जन्म मरण के साथ माना है। यह

हा मन्युपानषद् म भूतात्मा भन्द च इसा सूहम ग्र-रोरका गमनागमन जन्म मरण के साथ माना है। यह चर्वतन्त्र नियम है कि जो पदार्थ जेसा स्यूल दीख-ता है वह वैसा ही ज्यों का त्यों सूहम द्या में भी अवयय होता है। क्योंकि सूहम से ही सब स्यूल प- मूक्म रहा करते हैं। जैसे स्यूल वृक्ष अपने सब अंशी

यहित मत्येक बीज (स्नाम की गुठली स्नादि) में विद्यमान रहता है ख़ीर ख़ाम ख़ादिके पेड़ (युर) में आम के फल और बीज का भी मूक्स कारण वि-धामान है वैसे ही मनुष्यादि के स्यूल शरीरों के भी-तरमुक्त श्रीर कारण धरीर विद्यमान हैं। यही मूक्त श्ररीर नामक भूतात्मा देव-मनुष्य श्रीर तिर्थेग् श्रादि योनियोंमें जाता है यही देव-पितर बनता है इसीके साय जीवसंश्वक महत्तत्व भी तिरीमृत दशामें मर-गानन्तर रहता है। सूक्ष्म ग्ररीर के साथ स्थल ग्र-रीर का ऐसा ही संबन्ध है जैसा ची के साथ दूधका है। अर्थात् स्यूल का साररूप घृतके जगह पर सुक्त श्रारीर है और धृत के निकल जाने पर जो देशा दूथ की होती वहीं दशा मूक्ष्मशरीर के निकल जाने पर स्पूल देह की हो जाती है। फ़ौर जब तक दोनों मिले हुए हैं तब तक टूध के समान हैं। सूक्ष्म श-

दिया है । तदाया— "द्रप्न: सोम्य मध्यमानस्य योऽणिमा स ऊ ध्वं:समुदीपति तत्सर्पिमेवति ॥१॥ एत्रमेव खलु सोम्यासस्याश्यमानस्य योऽणिमा स ऊर्ध्वःसमु

रीर स्यूल ग्रारीर का गार (तत्व) है इनकी मिद्धि के लिये जान्दोग्य उपनिषद्द में स्पष्ट ही खोलकर लिख

(cg) दीपति तन्मनी भवति ॥ २ ॥ अपार्थ सीम्य पीयमानानां घोऽणिमा स अध्यः समुदीपति स प्राणी भवति"।३॥ इत्यादि छान्दो० प्र०६। खं०६॥ हे सोम्य खेतकेतु ! जैसे दही के मंथने पर जी मुक्त सार भाग जपर झाजीता वह घी होता है वैसे ही खाये हुए अन्नका, जो मुस्म मारभाग उदर मे ज-पर हृदयादि में आ जाता है वह मन होता है। इस सेमन आदि सुक्षम् शरीर स्यूल देहका सार होना स्प-ष्ट सिद्ध है। यही सूस्म गरीर देव पितृ आदि योत नियों में जाता है। इसी भूतात्मा नामक सूक्षम य-रीर के बाय पिता पुत्रादि वब खंबन्ध मरणाऽनन्तर भी रहता है और सुझ्म शरीर में सब खंगीपाझ वैसे

ही बने होते हैं जैसे स्यूल में हैं। हरएक वस्तु अन्य देशा में पहुंचने पर भी अपने संबन्ध की अपनी आ-कर्पण मंक्तिने खेनता है और वह खिना हुआ वहीं पहुंच जाता है। वैसे ही सूस्म गरीर जहाँ जिस यी-नि में जन्म लेता वहां अपने स्यूल घरीर के परमा-गुंझों का खेंच करें फिर नया गरीर बनाता है । इं त्यादि संव का सारांश यह है कि जीवातमा कर्मा-नुमार स्यूल देह को बोड़ कर मूं सूम देहने कड़ा हो-

कर अन्य २ योनियों में जन्म लेता है और मुझम गरीर को भी वह जीवातमा तब छोड़ता है जब कि वह संसार की वासना (अर्थात् वंधन केप संकल्प विकल्प सादि कामनासीं) से निवृत होकर निर्वाण

(85). पद (मोक्ष को प्राप्त करने का अधिकारी बनता है। इस लिये हरएक आस्तिक की चाहिये कि अपने वेद शास्त्रों के आञ्चानुसार शास्त्रविधि से अपने मा-ता-पिता=गुरु क्रादिकों के पृत्य गरीरों हे मुख्य सं-बन्ध मानकर प्रवश्य ही उन मृत प्राणी के दुख मा-प्त्यर्थ फ़्रीर उन की सह्गत्वर्ध चघाशक्ति एवं पूर्छ यद्वासे मन्न-जलं मादिसे विधिप्वंक सत्कार (माद्व) करना चाहिये। श्रीर जब कि श्रित्मावे पुत्र नामा-षि॰] [सात्मावे जायते पुत्रः] इत्यादि श्रुति सीर [मर्भी भूत्वेह जायते] [भार्या पुत्रः स्वकातनः ०] इ-त्यादि स्मृतियों में पुत्र से पिता का अभेद एकता संबन्ध स्पष्ट दिखाया गया है तो फिर धिङ्कार है उन्हों को जो फूट रूप भेद डालते हुए भी यह क-हते रहते हैं कि हम ही माता पितादिके सच्चे से-बक और देश भक्त हैं। वाहरे सुपाध पुत्र ! और दे-

श भक्तो !! क्या यह दलील देना तो नहीं चाहते हो कि पितादि ने युरे कर्म किये तो उन को अप-ने कर्मानुसार ईश्वरव्यवस्था से दु.ख मिलना नि-यत है तब पुत्र यदि उनको दुःख से खुड़ाना चाह-ता है तो ईश्वर की व्यवस्था नष्ट होगी, ईश्वर की इच्छासे विरुद्ध होगा। यदि तुम्हारी ऐसी दलील है तो जीवित माता पितागुर छादि की सेवा शुध्र-मा भी तुम लोगों को नहीं करनी चाहिये। छयों कि पिछले जनम के कर्मी का जैसा र शुभास्थ फल ई-

खर ने उनको देना नियत किया है उस ईप्खरीय व्यवस्था में बाधा डालने वाले तुम क्यों नहीं हुए? ऐसी दशामें जीवित माता पिता की चेंवा भी तुम को छोड़ना क्यों नहीं पड़ेगी ? ॥ अर्थात् अवश्यही इस तुम्हारी दी हुई दलील से जीवित माता पितादि की सेवा गुत्रुपा छोड़ना पड़ेगी। तो फिर बताश्री कि छाप कैसे माता पितादिके सेवक और देश भ-क्त हुए ? ख़ौर क्या ख़पने मृत पितादिकों की मि-लिक्यत (धन माल) के मालिक होने के लिये तो ठीक २ उस मृतक पितादि से संबन्ध मानकर ज्ञप-ने को उसका हकदार वताओ परन्तु उस मृत पितादि के लिये ग्रास्त्र आचा में किंचित जल ग्रीर श्रम माच दान करनेमें बहाने ख़ौर खुतके करते हो? वाहरे कृतच सार्व्याभाषियो ! स्मृत्योष ! स्मीर ल-ज्जा !!! देखो तो गही कि सन्य धर्मी मुगलमान बादमाह माहजहां अपने पुत्र औरंगजेव से हि-न्दुओं की मातृ पितृ भक्ति की प्रशंका करते हुए तथा हिन्दुओं के प्रतिधन्यवाद देकर यह कहते हैं कि-"ए पिसर तो अजब मुसलमानी। जिन्दगांरा व आव तरसानी॥ आफरीं हिन्दुआंरा सदबार। मुर्द गांरा दिहन्द दाय में आव"॥॥॥ इत्यलम् त्रिद्वत्सु ॥ इति श्री ब्राह्म-पितृ मीमांशायां मृत संवन्ध निरूपणे तृतीयोऽध्यायः ॥

त्र्राय चतुर्योऽध्यायः॥

समाजी—श्री पिएडत जी महाराज ! श्रव मेरे हृदय के संदेह निवृत्त होते जाते हैं। श्रापने बहुत अच्छे ढंग से एवं धर्म श्रास्त्रोंके | प्रवल्त प्रमाणों से
मृतकों के साथ [श्रयांत अपने मृत माता पितादि
रूप पितरों के सूरम शरीरों से] संबन्ध होना ठीक
२ सिद्ध किया दसलिये में , श्राप को अनेक धन्यसाद देकर फिर प्रार्थना रूप में यह भी पूछना चाहता हूं कि कर्मानुसार उच्च नीच योनि में श्राप्त उन
हमारे मृत पितादि को श्राद्ध कर्म में दिया हुआ
पिएड-भोजनादि कैंसे पहुंचता है ? श्रयवा उन
को श्राद्ध भोजन पहुंचाने वाले वे कीन हैं जिन
में द्वतनी श्रवीं किक सामर्थ्य है ?

सनातनी—महाशवजी! ठीक श्रापने पूछा है
यह प्रश्न इस समय बहुधा समाजी कोग सरल सीधे
भोले सनातिनयों से पूंछकर फूले खंगों नहीं समाते, श्रव्यात् इस प्रश्न का पूरा ठीक २ उत्तर व समाधान न होने से कठीर हृदय वाले स्वं शास्त्रानभिज्ञ समाजी भाई उन विचारे श्रास्त्रिक एवं कीमल हृदय वाले सनातिनयों को सण भर में घवरा
देते हैं और श्रपनी जय भान बैठते हैं। श्रस्तु जो
हो॥ श्रव आप ध्यान देकर सुनो। जैसे गर्भिणी श्रबला स्व पुष्प करके दिये गर्भपीषणार्च श्रव श्रादि को भस्ण कर,स्वतः तृष्त हुई श्रपने उदर गत

गर्भ (वालक) को भी तृप्त करती है छीर गर्भपो-पणोपयुक्त छन्न देने वाले को भी मत्युपकार रूप पल से संयुक्त करती है छर्चात् उस पुरुप को भी फल भागी करती है। तैंसे ही ब्राद्ध के देवता लो ब-सु सद्व प्राद्धित सुतादि पितर हैं वह ब्राद्ध करके तृम हुए स्वसंगत पितरों को भी तृप्त करते हैं ब्रोर ब्रा-द्ध कर्ता को भी स्वर्गादि फल से संयुक्त करते हैं इस अभिमाय से ही—

"देवान् वे पितृन् प्रीतान्,म-नष्याः पितरोऽनप्रीयन्ते, तिस्र

नुष्याः पितरोऽनुप्रीयन्ते, तिस्र स्राहृतीर्जुहोति,त्रिनिंदधाति,षट् संपद्यन्ते,, ॥॥

क्रुरण यजु० आरण्यक अग्न०१ अध्या०३अनु१०॥ अर्थात् देवता रूप पितरों के तृष्त होने के स्र-

नन्तर मनुष्य रूप पितर भी तृष्त हो जाते हैं, इसी से ही प्रथम देवना रूप पितरों के प्रर्थ तीन खाहु-ति करनी चाहिथे और फिर मृत मनुष्य रूप पि-तरों के प्रर्प तीन पिग्रड देने चाहिये, इस प्रकार पट् ६ संपन्न होते हैं॥ नात्पर्य यह कि ग्राह्मके दे-पता चन्नु स्ट्रादि पितर ग्राह्म कर्म में—

निमान्नितानिह पितर उपतिष्ठन्ति तान् द्विजान् । वायुगच्चानुगच्छन्ति तथाऽऽसीनानुपासते १८६

अध्या० ३॥ मनु०

निमंचित ब्राह्मणों के शरीर में प्रदूष्य वायुका-य सूद्रेग रूप से प्रवेश करके पिरुड एवं प्राह्मण भी-जनादि के तत्व * को ग्रहण कर स्वयं तृष्त होके

* शका--किस प्रकार वे ग्रिव्हेब श्राह भोजन के तत्त्व को ग्रहण करते हैं?

समापान—यह भी हनारे लिये कुछ आधार्य जनक नहीं है क्योंकि जब हम पशु पित कीटों में परनेशवर प्र-दत्त अलीकिक सामध्यें को प्रत्यक्ष देख रहे हैं तो पितरोंके प्रति प्रदत्त अलीकिक सामध्यें हम को कैसे आधार्य जनक होगी।

श्रर्णात्-जैसे परमात्मा प्रदत्त प्रलीकिक शक्ति विशे प से हस्ती (हाथी) कपित्थ फल की भवण कर उस के श्रन्तर्गत सारांग को पहण कर किर लीद के संगयणाविस्थत (जैसे आगे या वैसाही सारा विना चवाया हुआ) उस फल को, निकाल देता है। और जैसे मधुनक्खियां पुरुषों से मंकर्रन्दे ग्रहण कर मधुरचना करती हुई पुष्य के किसी खंग की हास (तीर) नकर उस के सारांश रूप सुगिध की ही यहण कर लेती हैं। वा जैसे जलीका (जोंक) निश्चित एक में से बिहत रक्त रूप एकांग की यहण कर लेती है। वा जैसे कमल के किसी संग्रको भीन घटाता हुआ समर (भी-रा) कमल गर्भ केशर नकरन्द का ग्रहण कर लेता है। जैसे जल भित्रित दुग्ध (सीर) में से इंस पत्ती। जल की पृथक करके केवल सत्व रूपटूच को ही प्रहश कर लेता है। और इसी प्रकार अगुली के स्वर्ध करने से लज्जावती लता (श-र्भ बूटी) में समुचित होने की शक्ति भी जान लेती। और जह लोहे में भी युंबक के सिवधान से अलीकिक शक्ति जा-

ननी। इत्यादि यदि पदार्थों की विचित्र ग्रक्तियों का नि-

फिर उन मृत मन्द्य पितरों को भी तृष्त करते हैं जिन के निमित्त बाद्ध किया गया है। और अद करने वाले पुरवात्मा को भी यथा योग्य स्वर्गादि फल मदान करते हैं। इस अभिमाय को ठीक श्री-द्ध करने के लिये श्री योगीयाच्चवल्क्य मुनि जी ने भी खाचाराऽध्यायमें स्पष्ट दर्शाया है कि---

वसुरुद्राऽदितिसुताः पितरः श्राद्व देत्रताः । प्रीणयन्ति मनुष्याणांपितृन् श्राह्नेन तर्पिताः २६९ आयु: प्रजां घनं विद्यां स्वर्ग मीक्षं सुखानि च। प्रयच्छन्तितथा राज्यं प्रीता नृणां पितामहा:२७० वसु तथा रुद्र एवं झदितिसुत, ये तीनों पितर जी श्राद्ध के देवता हैं वह श्राद्ध करके तृष्त हुए-मन्-व्यों के पितरों को भी तृप्त करते हैं ॥ ग्रीर ग्राह्म कर्ताके प्रतिभी आयु, प्रजा धन, विद्या, स्वर्ग, मीक्ष यथायोग्य सुख प्रदान करते हैं॥

एव शंतन्जीने भीष्मिपतामह जी के मित भी यही समाधान किया है कि---

आप्यायिताश्चते सर्वे पुनराप्यायन्ति ॥

(महाभारते)

क्षपण किया जाय तो एक यही वृहत्कथा होजाय, इसी थे इतने में ही सन्तुष्टहोना चाहिये। साराश मह है कि इस ही मकार परमातना प्रदृत्त अलौकिक शक्ति विशेष से पितर देयता भी त्राहीय पढार्थों के साराश (तत्य) की ग्रहणक-

रलेते हैं ॥ इति॥

भव देवता रूप पितर स्थम माप स्वयं तूच्त होकर फिर मन्य मनुष्य पितरों को तृष्त करते हैं।

विष्णधम्मीत्तर ॥

तया च---एते श्राद्वं सदा भुवत्वा पितन् संतर्पवन्त्युत । यत्र क्षचन धर्मज्ञा वर्तमोनान्हि घोगत: ॥

ये जो यसु चद्र स्रदितिसुत, श्राद्ध भोजन से तृ-प्त होकर फिर भृत पुरुपोंकों तृष्त करते हैं चाई वे मृत मनुष्य पितर किसी भी योनि में हों। क्योंकि वह धर्मज पिनृदेव योग वत कर स्रलोकिक सामर्थ्य से हर एक प्राणी को जानते हैं ॥ इत्यादि धर्मश्रा-

स्त्रोंक प्रमाणों वे स्पष्ट चिद्ध है कि हमारे मृत पितर क्ष-पने अच्छे वा बुरे कर्मानुसार चाहे वे किसी भी यो-नि में क्यों न हों तो भी उन्हों को वहां उसी ही यो-नि में पिनृदेवों के अलौकिक सामर्घ्य में पिएडभोज-नादि श्राद्धीय पदार्थ सूक्ष्म रूप में पहुंच जाते हैं। और जो श्री दशरथ * महाराजादि जैसे अत्यन्त उ-त्रम पुषय कर्मों के प्रभाव से देव पितर श्रादि उत्तम श्रीनियों में गये हुए हैं वे स्वयं अनिदेवकी, सहायतासे

बेद मंत्रों द्वारा प्राहूत होकर ग्राद्ध कम में निमंत्रि
• ग्रह ग्री द्यारय महाराजकी कथा आगे पंचन अ
• प्राय में स्पष्ट रूप में वर्णन की गयी है—जहां श्री जानको

की निमंत्रित मुनियों के देह में अपने श्यार द्यारयंजी
का दर्शन करके लिन्जत होकर दियगई थीं।

त ब्राह्मणों के देह में ख़दूरण रूप से आकर पिगडभी-

ते हैं। इस की सिद्धि में वेद का प्रमाण यह है कि-येऽग्निद्ग्धा † येऽनग्निद्-ग्धा सध्येदिवः स्वध्या मादय-

न्ते। तेभिः स्वराडससुनीतिमे-तां यथावशं तन्वं कल्पयस्व, मंत्र १४॥

चेंग्वैद स्र० ६ वर् १८ मंगड० १० सन्० १ सू०१५ प्रप्तुर्ण । स्रुठ यजुर संध्यार १८ मं ६० में (सिंग्निन्ध्यात्त्र) यह पद हैं॥
प्रविद्यार्श-य (स्विन्दिन्धाः) रमेशानिमा-

प्रनव्याथं.-ये (ज्रुनिदर्भाः) रमणान्या-ध्ताः वे च (ज्रुनिदिग्धाः) रमणान्कृत्यरहितः वे च (दिवो) द्यु लोकस्य मध्ये स्वथ्या (माद्यन्ते) मृष्ताश्चरन्ति, हे (स्वराट्) दीप्यमान अग्ने ! (तैः पित्म) तेभ्यः पित्भय (असुनीतिम् (प्राणयुक्तां (स-

में उक्त पद की मीमांसा देख कर प्रयमा सन्देह जिड्छ क-रनर प्रिहिचे॥

भाषा-हे स्वराट्-दीप्यमान अग्ने! (ये अग्नि-दग्धाः) जो हमारे पितर अग्नि में दग्ध हुए प्रमधान मंस्कार को प्राप्त हुए हैं और (येऽनग्निदग्धाः)जो प्रमधान संस्कार को [सन्यासी होने के कारण वा किसी अन्य कारण से] नहीं माप्त हुए हैं और (दि-वोमध्ये) अन्तरिक्ष लोक में वा स्वर्ग लोक में स्वधा मन्त्र संस्कृत अञ्चली प्राप्ति सेजो (मादयन्ते) तृप्त हो कर विचर रहे हैं (तें पितृभिः) तिन पितरीं के प्रति (असुनीतीम्) प्राणयुक्त (एताम्) हवि भक्षणके योग्यता वाली इच (तनू म्) देहकी करूपना करो जिससे (यथाकायम्) यथेष्ट यहां आकर हिव भक्षण करें। इस वेद्मन्त्र के सीचे र मावार्थसे स्पष्ट सिद्ध है कि स्वर्गीद उत्तम लोकों में जो अत्यन्त प्रयक्तमीं से गये हैं वे हमारे पितर अग्निदेव की -कृपा एव सहायतासे सूदम शोभन देह धारण करके यथेष्ट यहां हमारे पितृयज्ञ (श्राद्ध) में आकर हवि भक्षण करते हैं। इसलिये नीचे लिखे वेदमन्त्रों से परायक्षान् समर्थ पितरीं की यन्नमें यहां युनाने के लिये तथा मध्यम यानी माधारण पुणयकर्म से म-नुष्ययोनिर्मे प्राप्त एवं (निकृष्ट) पायकर्मानुसार पशुपक्षीस्रादि योनिमें प्राप्त स्रममर्थ पितरोंको व-हांही उसी गोनिमें तृप्त करनेके लिये वा उन्होंकी उच्चाति करने के लिये ग्राह्मकर्म में ग्रानिदेव की प्रार्थना पूर्वक स्थापना करके उस मे छाहती दी

(qo)

जाती हैं अर्थात् अन्नीकरण (अन्यारी वा होस) कराया जाता है। सो यथा-

चुभन्तेस्त्वानिधीम**स्**भान्तुः

सिमधीमहि । जुश्तुंशत स्त्रावंह पितृन्ह् विष्े ग्रात्तवे ॥ ७०

ष्ट्रपाठ १८ ॥ ३० ॥

मन्त्रार्थ-(उग्रन्त: त्या निधीमहि) हे अग्ने! तुम्हारी इच्छा करते हुए हम तुमको स्थापन करते हैं (उशन्तः समिधीमहि) यद्य की इच्छा से तुम को प्रव्वलित करते हैं (उद्यन्, उद्यतः पितृन्, ह-

विषे, ग्रत्तवे, ग्रावह) चाहते हुए तुम, हवि चा-हने वाले हमारे पितरों को इस यज्ञ में हवि भक्षण करने के लिये बलाजा ॥ ३० ॥ और-

ये चेह पितरो येचनेह यां पूर्च विद्य याँ शार्च चन प्रविद्य। त्वं वेत्य यतिते जातवेदः स्व-घार्भिय्य ज्ञथु सुरुतिञ्ज षस्व।६०॥ यजु० घर० १८ ॥ ६७ ॥

जो मेरे पितर इस लोक में हैं अर्थात साधा-रख पुरव वा निकृष्ट कर्मानुसार मनुष्य वा पशु पहपादि योनि में प्राप्त होकर इस पृथ्वीलोक में रहते हैं। श्रीर जो पितर इस लोक में नहीं हैं श्र-र्यात श्रत्यन्त उत्तम पुरुष से स्वर्गादि उत्तम लोकों

र्थात् अत्वन्त उत्तम पुरय से स्वर्गादि उत्तम लोकों में हैं (च, यान्, विद्वः च, यान्, न, प्रविद्मः) स्नीर जिन पितरोंको हम जानते हैं, तथा जिन को स्म-रण न होने से नहीं जानते हैं, (जातवेदः, ते, य-

रेण न होने से नहां जीनत है, (जीतवदः, ते, य-ति, त्वम्, उ, वेत्य,) है अग्ने ! वह पितर जितने हैं वे तुम हीं जीनते हो (स्वधाभिः, सुकृतं, जुष-स्व) सो पितृयज्ञ द्वारा उन पितरों के तृष्त्यर्थ श्रोष्ठ अन्न को सेवन करो, ॥ ६७ ॥

यहां "इह,, शन्द से जीते पितरों का ग्रहण महीं होता किन्तु जिन्हों ने कर्मवश इस लोक में देह धारण किया है श्रन्थया "न "मविद्म,, इस का शब्दार्थ नहीं घट सकता "विद्म,, शब्द का

सर्च यह है कि जिनको मैं अपना पितर जानता हूं परन्तु कहां हैं यह नहीं जानता हूं अथवा जिन को जानता हूं बाप-दाद-परदादे, जिन को नहीं जानता दक्कीय पीड़ी तक यह तत्वर्ष है। तथा-

यमंग्ने कंट्यवाहन त्विच्-नमन्यसे र्घिम्। तन्नाः गीर्भिः श्र-वारयन्देवत्रापनया युर्जम् ॥६४॥

हैं पितरों को हथ्य पहुंचाने वाले अपने ! तुम भी जिस हवि रूप अज्ञको उत्तम जानते हो (नः, तं, गीर्भिः, श्रवाय्यं युजम्, देवत्रा, श्रापनय) इस लिये हमारे उस वषट्कार आदि वाणियों से तुनने योग्य उचित हिंव की पितृ देवताओं के मित सब श्रोरसे पहुंचाओ ॥ ६४॥

इत्यादि वेदमन्त्रों के लागय से स्पष्ट सिद्ध हैं कि अग्नि देवताभी स्वधारूप अन्नकी आहुतियोंको सूक्ष्मरूप से लोजा कर वहां पितरों के प्रति पहुंचा देता है।

चमाजी-पशिडत जी महाराज! यह भी तो सुनाओं कि जब यह किसी,को भी मालूम नहीं कि हमारे पितर स्वर्ग में गये वा नरक में तब उन्होंकी अब वस्तादि भेजना क्या बिना पते के पुरुष को डांक द्वारा वस्तु भेजने के तुल्य नहीं और ऐसी अन् क्या में उन को भेजने के लिये अब वस्त बाखणों के हवाले करना और फिर उन की रसीद का न पहुंचना क्या यह सन्देह पैदा नहीं करता कि न जाने यह माल भेजने वालोंने ही ला लिया हो! इस्लिये हमारे पितरों से माल पहुंचने की रसीद न मिलनेसे हमें विश्वास कैसे हो कि ठीक २ उन्हीं को मिला!

मनातनी-महाशय जी! यह तो, में पहिले धास्त्र प्रमाणोंचे स्पष्ट सिद्ध करचुका हूं कि हमारे मृत पि-तर कर्मानुचार चाहे किसी भी उच्च, नीच, योनि में वा स्वयं नकीं ध्यों न गये हों तो भी पितृलोक के निधाता बद्ध-च्द्र-खदिति सुतादि पितृदेव एवं अग्नि देवता भी, अपने योगवलने तथा अली-किक सामर्थ्य ने उन पितरों को जानकर वहां ही उन्होंको तृष्त करते हुए सुखभागी करते हैं। वाकी रही हम लोगोंको पूरा २ विश्वास हो जानेके लिये उन्हों की "रसीद,,! सो यह भी ठीक नहीं क्योंकि आद्धका संकल्प करते ही समय रसीद लिखी जाती है कि सृष्टिके आरम्भने वैवस्वतादि अमुक २ मन्व-

है कि मृष्टिके आरम्भने वैवस्वतादि अमुक २ मन्व-न्तर, चतुर्वेगी, गुग, सबत्यर, तिथि, वार, मुहूर्तादि स-मयमें, अमुक देशमें, अमुक वर्ण, नाम गोत्रादि, वाला मैं पुरुष था स्त्री अमुक २ गोत्रादि वाले ब्राह्मण को अमुक २ पिता मातादि के निमित्त अमुक वस्तु था भोजन वस्त्रादि देता हूं। वहां उच समय वेठे सब म-

नुष्यों की साक्षी वा गवाही लिखी जाती है। जीर देवता चोग भी उसमें साक्षी लिखे जाते हैं इसी वि-चार से मनुजी ने कहा है कि— मन्यन्तेचेपायकृती नकश्चित्पश्यतीतिनः। तांस्तुदेत्राः प्रपश्यन्ति स्वस्यैवान्तरपूरुपः॥

पापी लोग मानते हैं कि यहां एकान्त में हम को पाप करते कोई नहीं देखता, परन्तु यह भूल है क्योंकि उन को देवता लोग और अन्तर्यामी ईखरे देखा करता है। जो देवादि पाप के गवाह होते हैं

देखा करता है। जो देबादि पाप के गवाह होते हैं बेही ब्राद्धादि पुष्पकर्म के भी गवाह हो जाते हैं। बह रबीद ख़ाकाश्रमण्डल रूप कागज में वालीरूप स्पाही से तथा वायुरूप लेखनी से लिखी जाती है।

*

ब्द (राग) भर जाते हैं वैसे ही ब्राह्मादि के दान की यह संकल्पात्मक रसीद महाकेश्य में भर जाती हैं इसीलिये पतञ्जलि मुनि जी ने ग्रव्दों का स्थान स्नाकाश्य (स्नाकाशदेश: ग्रव्दः) को कहा है। स्ना-

काश के ही प्रदेशान्तर में स्वर्गादि कि नी योनि में ब्राह्मादि दान का मुख मन्तीय प्रमन्नतादि रूप फल जब पितरों को प्राप्त हो जाता है तब यही पाने वाले के उस रसीद पर हस्तासर होते हैं। श्रीर जब श्राद्ध करते ही समय वा करचुकने पर मन वाणी शरीर में वा स्त्री पुत्रादि सब कुटुम्ब में सबेत्र कुशलता प्रसन्नता खानन्द मंगल दीख पड़े तब यही ब्राद्धफल पाने की हस्ताक्षरी रसीद आगई मान लोना चाहिये अर्थात् जानो उसी आकाश म-पडलस्य रसीद पर दस्तखत हो आये। और यदि अप्रसन्ता अमंगलादि प्रतीत हों तो मानलो कि स-फल नहीं हुआ और रसीद पर दस्तखत नहीं किये तब यजमान तथा श्राद्धादि भोक्ता ब्राह्मण का शा-स्त्रमर्यादा से विरुद्ध करना रूप अपराध दोनों वा कि धी एक का हो सकता है उस द्यामें केवल ब्रा-झण का ही अपराध मान लेना भी इंकतर्फी डिंग-री कर देना है। अभियाय यह है कि रबीद नामु विश्वास हो जाने का है-यदि विदेश से आई रसीद पर भी विश्वास न हो तो वा सन्देद हो जाय कि अन्य कैसे हस्ताक्षर अन्य भी बना सकता है छीर

किर पत्रद्वारा पूळने पर भी उसी की फ़ोर से लिख

सकता है कि हां मुक्ते क् मिलगये तब विश्वास न हो तो यहां की रमीद भी रही जानो ख़ीर ग्रब्दम-माण केंपं वेदादि शास्त्री पर जिनका खटल विश्वास है उन को संदिग्धात्मक रसीद की अपेक्षा (इच्छा वा जरूरत) ही नहीं है। यदि किसी ऐसे निकट-वर्ती ख़यवा परम मिंच द्वारा कोई वस्तु समाजो मनुष्य अपने जीवित पिता के पास भेजें कि जिस का सर्वींग में पूरा २ विंखास हो तो वहां समाजी कदापि रहीद नहीं मांगेगा और मांगे तो जानो उस चक्रवा परम मित्र का पूरा २ विश्वास नहीं तव वह चक वा बनावटी भी रशीद पेश कर सकता है। स-'न्तमें जबतक विश्वास न करो सभी रसीद आदि रही हैं जब विश्वास हुड़ होगया तब रसीद की आवश्य-कता सनातनधर्मियों को नहीं है। खीर सर्वशुद्ध स-नातन धर्मावलम्बियों को वेदादि धास्त्रों पर दृढ विश्वास है कि इस निम्नदर्शित वेदमन्त्र में अग्नि-देवने हमारे पितरींको श्राद्वान पहुंचाया । श्रीर इसी ही बेदमन्त्र को हमारे पितरों की तरफ से ईश्वर द्वारा आई हुई बच्ची रसीद समकते हैं और वह भी विश्वास करते हैं कि श्राद्ध करने से हमारे पितरों की तृष्ति, तथा नि:सन्देह सद्गति होती है। श्रीर ग्राद्ध करने वाले हम लोगों को भी यथायोग्य धन पुत्र-स्वर्गादि मुख प्राप्त होता है--यथा सञ्ची र-भीद रूप वेदमन्त्र-

त्वमग्न ईडितो जातवेदोऽवा-

ड्ढव्यानि सुरभीणि क्तत्वी, प्रादाः पित्रभ्यः स्वध्या ते त्रक्षन्निद्धि त्वं देव-प्रयता ह्वींषि,,।

भार प्रार्थ है यह १९ मरहर १० मनु १ मूर १५ महा उमेर १ शुक्रपणुर प्रारं १९ मर ६६॥ क्षर प्रमुख कार मारह धनुर १२ मंद्र १॥

श्रम्बयार्थ:-हे गग्ने ! त्वमस्माभिः (ईडितः) स्तुत हव्यानि श्रस्मदीयानि सुगन्धीनि कृत्वा (स्र-

वाट्) अवाक्षीत् प्राप्तवानिं जड्ह्वा च (स्वधवा) पितृमंत्रेण पितृभ्यः (प्रादाः) दत्तवानिं ते च पि-तरस्तद् हवि (अक्षन्) भक्षितवन्तः, हे जोतवेदस्त्व-

तरस्तद् हाव (ग्रज्ञन्) भाक्षतवन्तः, ह जातवदस्त मपि (प्रयता) पवित्राणि हवीषि (श्रद्धि) भक्षय ।

भाषा—है अपने ! हम करके स्तुत हुवे (त्वम्) आप हमारे दिये हुए हव्य को सुगन्धित कर हवन

द्वारा स्वीकार किया, ग्रौर स्वीकार कर फिर (स्वध-या) पितृप्रिय स्वधा इस मंत्र से हमारे पितरों के प्र-

ति मदान किया है मत आप करके दिया हुआ को हिंच है उप हिंच को (ते) वे हमारे पितर मक्तण क-रते हैं । हे (जातवेद.) दिव्यमकाशस्त्रकप अग्ने! (त्व-

रते हैं । हे (जातवेद.) दिव्यमकाशस्त्रक्रप अग्ने! (त्व-म्) आप भी इन शुद्ध हिवगें को भक्षण करो और-

"उदीरतामवर उत्परास उन्म-ध्यमाः पितरः सोम्यासः । ऋसुं

यईयुरवका ऋतज्ञास्ते नोऽवन्तु पितरो हवेषु ॥ गुर्वेद वाजवने० ४०१८ गं० ४८॥

अन्वयार्थः — अवरेऽास्मन् भूलोकेऽवस्थिताः पितर उदीरतामूर्ध्वं लोकं गच्छन्तु । मध्यमा मध्यमस्था अन्तरिक्षस्थाः पितरः उदीरतां परासः परलोकेशुलोकेऽवस्थिता देवत्वं प्राप्ताः पितरः उदीरतां परासः परलोकेशुलोकेऽवस्थिता देवत्वं प्राप्ताः पितरः उदीरतां तताऽ प्यूध्वं ब्रह्मलोकादिषु गच्छन्तु । कीट्ट्रशाः पितरः सोम्यासः शान्तिशीलाः सोम्पानाहां वो। ये च असुमीयुर्वायुक्षपं प्राप्ताः वायुकायाः ' सूक्ष्मादृश्याः स्थलविग्रहाः । अवृकाः शत्रुभावरहिताः समद्शिनः ऋतज्ञाः सत्यज्ञा यज्ञ्जावा स्वाध्यायितष्ठा वाते नेऽस्मान्हवेषु आहानेषु अवन्तु रक्षन्तु इति प्रार्थयामः॥

भाषा-(अवरे) इस भूलोक में रहने वाले पि-तर लोग (उदीरताम्) जपरी स्वर्गलोक को प्राप्त हों (सोम्यामः) शान्तिशील चन्द्रलोक वासी वा यज्ञों में सोमपान करने वाले (मध्यमाः) मध्य-अन्तरिक्ष लोकस्य पितर (उदीरताम्) जध्वगित को प्राप्त हो और (परामः, उत्) * स्वर्गलोकस्य

^{*} स्त्रगांदि लोको मे रहने वाले पितरोका गरीर वा-युकाय सूक्ष्म अहश्य होता है यह बात उपरोक्त "असुं य हेयुः" इस वेद वाक्याय से स्पष्ट सिंह है कि जिन्होंने के-वल प्राणमात्र को ही भारण किया है। यहां स्पूल गरीर का स्पष्ट निर्पेष है।

पितर उससे भी ऊपर महलेंकि।दि को प्राप्त हों-वे पितर कैंसे हैं कि (असं य ईयुः) जिन्होंने आ-णमात्र को धारण किया है अर्थात् वायुकाय मूक्स प्रदृश्य ग्ररीर वाले स्यूल मनुष्यादि कासा ग्ररीर जिन का नहीं है। (अधृकाः) जिन का कीई शब नहीं (चतचाः) जो सत्य की वा यच की जानने वाले हैं (ते, पितरः) वे पितर लोग (नः) ह-मारी (हवेषु) श्राद्धादि में आवाहनके समय (अ-बन्तु) रक्षा कर यह हमारी पार्थना है ॥ प्रिय महाश्रय जी ! इन दो मन्त्रों से स्पष्ट सिद्ध है कि अग्नि देवता श्राद्ध कर्म में निमन्त्रित ब्राह्मणोंके मन्त्रोञ्चारणचे दी हुई पितरों के निमित्त आहतियों को हमारे पितरों के प्रति वहां पहुंचाके आया, और उन हमारे पितरों की क्रमपूर्वक जपर स्वर्गादि लोकों में गति होना एवं स्वर्गीद लोकों

में रहने वाले हमारे सामर्थ्यवान् पितर श्राद्ध से तृप्त हो कर हमारी रक्षा करना इत्यादि सब बातों का विश्वास कराने वाली सञ्ची साक्षीरूप "रवीद" जव हम को परव्रह्म द्वारा वेदादि शास्त्रों में लिखी मिली है तब हम को संसारी कागज़ी रसीद की कौनसी आवश्यकता है अर्थात् संसारी कागज़ से रसीद की कौनसी आवश्यकता है अर्थात् संसारी कागज़ से रसीद की उन नास्तिकों को आवश्य-

कता है कि जिन्होंका हमारे वेदादि धर्मशास्त्रों पर विश्वास नहीं। इस लिये कहा है कि "नास्तिको वेदनिन्दकः" जिन्हों का वेदशास्त्रों पर विश्वास नहीं अर्थात् जो बेद की निन्दा करते हैं बेही मनुष्य नास्तिक कहाते हैं इसलिये हम लोगोंको चाहिये कि बेद से दिखामे गये गुद्ध ग्राद्ध को विधिपूर्वक करके अपने मृत पितरोंकी सद्गति करें और
बेद की आज्ञाको पालन करके अपने हिन्दू मनु
प्यत्व को सार्थक करें यही मेरी प्रार्थना है ॥
समाजी-श्री पण्डित जी महाराज । यह तो

प्यत्त्व को सार्थक करें यही मेरी प्रार्थना है ॥
समाजी-श्री पिष्टत जी महाराज ! यह तो
बहुत अच्छी न्यायरूप सत्य दलील एवं वेद मन्त्रों
के प्रवल प्रमाण से ठीक रिवध्वास दायक "रसीद"
दिखलाई। अब मुक्ते दूढ विख्यास हुआ लेकिन एक

बात और पूछने की है सो यह कि मृतप्राशी अपने किये पाप-पुष्य कर्मों के अनुसार यदि वह पशु, पत्ती वा यस, रासस, पियाच अयवा देवता होजाय तो किर श्राद्धकर्म में हमारा दिया हुआ कीर, घी, हलुआ, लड्डू, पक्रवान कर्योड़ी वगैरः पदार्थ उन्हों को केंसे देहानुकूल कविकर (भिय) होंगे? अर्थात् पशुओं को घास, मिरुओं को मांस, रासस-पि-शाचों को चिपर और सांस एवं देवताओं को अमृत वगैरः जब अपने २ शरीरों के अनुकूल भिय हैं तब हमारे दिये हुए उक्त लड्डू कर्योड़ी आदि पूरी पक्रवानों से उन्हों की कैंसे रिचपूर्वक तृष्ति होगी?

श्रयात् मेरा दिया हुआ वव उन्होंके मितकूल होने में वृया हो जायगा?॥ सनातनी—महाश्रय जी! घबराश्री मत कुळ अपनी भी श्रक्क का बुद्धि काममें लाश्री केवल मक्र करने ही पर सवार न हो जाओ ? महाग्रय जी सुनी जब कि हमारी खंडोज सरकार के राज्यमें भी ऐसा अन्धेर नहीं है कि जब हम लोग, जर्मन-फ्रान्स वा जापान, रिष्या वगैर: विलायतों में गये हुए अपने मित्र को यदि कुछ हपया भेज देना चोहें तो क्या

गेही हमारे एक तीलेके वजन वाले विक्टोरिया बा एडवर्ड अथवा शहनशाह जार्ज दी फिज्ब के मु-हर (प्रतिमा) वाले रुपये वा नोट वगैरह जो यहां पोस्ट आफिस में मनीआर्डर करके दिये जाते हैं वो क्या वहां उक्त विलायतों में भी हुबहू उसही

मुद्रर वाले रुपये वा उस ही नम्बर वाले नोट ह-

मारे मित्रको मिलेंगे वा उक्त रुपये गीट वहां अन्य बादशाहत होनेके कारण उपयोगी हो सकेंगे? नहीं कदापि नहीं। क्योंकि जैसा २देश और जैसी २ राज्य-सत्तां होती है उस के ही अनुकूस रवाज व हुक्म मूजिब उसी ही सिक्के व मुहर के गिनी वा पाउ-न्ड बगैरह रूपमें हमारे मित्रको मिल जायंगे और उपयोगी भी वन सकेंगे तो इसी ही रीति से पर-

ब्रह्म के अरुत राज्य में पितृत्योक के फरिएएतर वस्तादि पितर यहां थाद्धमें पोस्टमास्टर रूप ब्रा-खणों के मार्फत हमारे पितरों के निमित्त दिये हुए लड्डू-पूरी-कचौरी वगैरह ब्राद्धीय पदार्थ के सा-रांग्र को ग्रहण करके हमारे मृतपितरोंके मित चाहे वे किसी भी योनि में पणु, पत्नी, राज्ञस, देवतादि क्यों न हुए हों तो उसी ही योन्यन्तर्गत देहके अ-नुकूल करके दे देते हैं। इचलिये हमारे (स्नाप्त) यानी पूर्ण धर्मात्मा पूर्ण विद्वान् ऋषि-मुनियों ने कलिकाल में नास्तिकों द्वारा उठने वाले रेसे नि-कम्मे खोटे २ सवालोंको निर्मूल करनेके लिये छीर **आस्तिक जनों को ज्यादा २ सन्तोय या विश्वास** दिलाने के लिये महाभारतादि धर्म इतिहासों में स्पष्ट करके लिखदिये हैं कि देवीयदिपिताजातः शुभकर्मानुयोगतः। तस्यात्रममृतंमूत्वा देवत्वेऽप्यूनुगच्छति ॥१॥

गान्धर्वभोग्यरूपेण पशुत्वेचतुणंभवेत्। **श्राह्मत्रवायुरूपेण नागत्वे**प्यनुगच्छति ॥२॥ पानं मवतियक्षत्वे राक्ष्मस्वेतपारमिपम्। दानवत्वेतथामांसं प्रेतत्वेरुधिरोदकम् ॥३॥ मनुष्यत्वेऽस्रपानादि नानामोगरसोमवेत् ॥ महाभारत स्त्रीदेवल मुनीपवर के बचन ॥ अर्थात् यदि मनुष्य गुभकर्मानुसार मरकर

देवता बनेगा तो उस को वह याद्ध का अन्न अमृत क्ष में-प्राप्त होता है, एवं गन्धवं जाति में भी-ग्य रूप से, पशुयोनि में (तृण) घास रूप से, नाग-

योनि में वायुक्ष मे, यसपोनि में मदिरा रूप मे, राक्षमयोनि मॅ-जामिष रूपमे, दानवयोनिमें मांम रूप से, प्रेतयोनि में विधर रूपसे ख़ीर मनुष्ययोनि में अन्न पानादि रूपसेवह श्राद्धान प्राप्त होता है। इसलिये हम लोगों का जो सात्त्विक गुद्ध पवित्र श्रम्भ घृत-दुग्धादि प्रिय पदार्थ हैं वे ही श्राद्धकर्त में मुपात्र ब्राह्मशों के मार्फत मृतपितरों के निमित्त देना चाहिये दशलिये—शास्त्र में कहा है कि—

'यद्राः पुरुषो भवति तद्ग्रास्तस्य देवताः, - अर्थात् जिस पुरुषकी जो स्वाभाविक अयुराक है वही देव-

ताओं के प्रति भी अपंग करे ॥
तास्पर्म यह है कि इस मनुष्यमात्र की शुद्ध सात्रिक अज्ञ, घृत, दुग्ध, फल फूलादि खुराकरे ही

ब्राह्मिद शुभ कमीं में पितृ-देवों की पूजा करनी चाहिये और उस हमारे दिये हुए पदार्थों को सूदम रूप में लेजा कर पितृदेव हमारे पितरोंके प्रति य-यादेहानुकूल करके तृष्त करते हैं और हम लोगों को भी खाशीर्वाद देकर आनन्द सुखका भागी क-रते हैं ॥ ॐ तस्वदिति शम् ॥

इति स्री स्नाहिपितमीमांसायां मृतिपत्तभ्यो भोजन–प्राप्त्यर्थ शास्त्रोक्त मार्गप्रद्-र्शने चतुर्योऽध्यायः॥

* हम मनुष्यमामकी स्वाभाविक यही स्रक्ष-पृत-दुाध -फल फूलादि सात्विक शुद्ध पवित्र सुराक है। स्रीर यह म समक्षना चाहिये कि -जो मासाहारी मनुष्य हैं वे मांस ब-गरह देवतास्रोके स्रति स्रपंक करें -नहीं नहीं, कदाबि नहीं!!

हम मतुद्यमात्र की स्थाभाविक बुराक मास वगैरह कदािय महीं है देखो मेरा बनाया हुआ "मांसमत्तवनिषेय" नामक देक्ट कि जिस में सूब विचार पूर्वक यह सिंह किया गवा है कि मतुद्यमात्र की स्थामाविक सुराक स्नक है॥

्रत्रय पञ्चमोऽध्यायः ।

समोजी--श्रीपिएडत जी महाराज! अब कृपा करके यह बताओं कि पितृकोक इस मनुष्यलोक से भिन्न कोई अन्य लोक है क्या और वह कहां स्थित है! तथा उस लोक के अधिष्ठातृपितृदेशिका शरीर कैंसा है और उनका राजा कीन है! तथा है म-हाराज! द्यापाल! यह भी बताइये कि हम मनुष्य मात्र को इन पितृकोक निवासी पितृदेशों के पूजन सत्कार (श्राद्ध-तर्पण) करने की क्या आवश्यकता है! सर्थातृ याद्ध तर्पण न करने से क्या कोई दोय वा हानि है!

सनातनी-महाशय जी ! वे आप के प्रश्न यथा-र्थ और ठीक २ हैं। अब आप श्रद्धापूर्वक क्रमसे इन प्रश्नों का वेदादि सच्छास्त्रप्रमाणों से एवं प्रवल यु-क्तियुक्त समाधान श्रयण करो॥

यथा—प्रथम स्नाप का प्रश्न यह है कि पितृ-लोक मनुष्यलोक से भिन्न कोई स्नन्यलोक है स्नीर बह कहां है ! सो हे महाशय जी देखी शतपम ब्राठ बेद में स्पष्टकप से दिखलाया गया है कि-पितृ-लोक एक स्वतन्त्र लोक है। जैसे कि---

अथ त्रयोगावल्डीका मनुष्यलोक: पितः लोको देवलीक इति । शत् आ० १४ । ३ । २४ ॥ प्रचति तीन भोग भूमियें हैं-मनुष्यलोक, पि- तृलोक फ्रीर देवलोक। इनमें जीव कर्मानुसार मा-प्त होता है। फ्रीर केवल निषिद्ध कर्मों का कर्ता जीव नरक को ही प्राप्त होता है। इससे सिद्ध हुआ

जीव नरक को ही प्राप्त होता है। इससे सिद्ध हुआ कि पितृलोक, मनुष्य और देवलोकों से जुदा एक स्वतन्त्र लोक है। तथा च—

"दक्षिणाप्रवणोवै पित्रलोकः" यतः झाः १३१ वाशः॥ "कर्मणापितृलोकः" वृहदारण्यकः।

दक्षिण दिशामें पितृलोक है। शुभकर्मी करके पितृलोक में वास होता है। यथा—

तेवाएन आहुतीहुते उतकामतस्ते अन्त-

रिक्षमाविश्वतस्ते अन्तरिक्षमेवाहवनीयं कुर्वाते इत्यादि॥ शतपथ ब्रा० ११।६।२।६॥ तथा—अथ ये यज्ञेन द्विन तपसालीकं जयन्ति ते यूममभिसमर्चनितं, यूमाद्वात्रं रात्रेपक्षीय-माण प्रवापस्यात्यात् प्रणासानदक्षिणादिः

ते घूममभिसमर्चन्ति, घूमाद्रात्रि रात्रेपक्षीय-माण पक्षमपरपक्षान्यान् पण्मासानदक्षिणादि-त्य एति मासेभ्यः पितृष्ठोकमित्यादि ॥ शतपथ-प्रवात्–मरण समयमें इस माणीकी तीन गति

स्रवीत्-मरण समयमें इस प्राणीकी तीन गति होती हैं, देवलोक पितृलोक, स्रधोलोक, उसमें पि-तृलोक का गमन कहते हैं कि-यज्ञ दानादि कर्म करने वाले मनुष्य धूप से राजि में कृष्णपत्त, उस से दिस्तिणायन स्रोर वहां से पितृलोक को गमन करते हैं। स्रोर जो सत्कर्मा नहीं वे कीटादि गोनि को प्राप्त होते हैं। इस से स्पष्ट सिद्ध हुसा कि पितृ-

यज्ञादि शुभ कर्म करने वाले पित्लोकादि उत्तम लोकोंमें जाते हैं। ग्रीर पितलोक एक स्वतन्त्र चि-रकाल आनन्दप्रद लोक है। यथा-

(स एक: पितृणां चिरहोकलोकानामानन्द:०) तैतिरीयोपनिषद् ॥

सो यह पितृलोक (विधूर्ध्वभागे पितरी वसन्ति) [सिद्धान्ति श्रिरोमणी]

चन्द्रलोक के भी जपर है जहां पितरींका नि-वास है। तथा-

उदन्वतीचो रवमापीलुमतीति मध्यमा । तृतीया ह प्रद्योरिति

यस्यां पितरत्रासते। अधर्व वेद कां० १८ अन्० २ मं०॥ ४८॥

इस मन्त्रका सम्पूर्ण भावार्थ आगे द्वितीय श-ध्याय में स्पष्ट करदिया है वहां ध्यान देकर पहें ने तो अच्छी तरह चान होगा कि "प्रद्यी" नाम वाले माकाश के तीसरे भाग में पितृ लोक है जहां पितर देव रहते हैं॥

अब आपका द्वितीय मन्न है कि पित्लोक चि-वासी पितरीं का ग्ररीर कैंसा होता है और उन्हों का राजा कीन है?

सो है महाशय जी ! इन पितृलोक निवासियों

का प्रारीर वायुत्तत्व प्रधान है। यथा-

त्र्याप्यतेजसवायव्यानि ली-कान्तरे प्रारीराशि । भयकं ३१११२ हिन्

स्वर्यात्-जलतत्व, तेजतत्व स्रयवा वायुतत्वम-धान शरीर वनकर, जीव लोकान्तरों को जाता है। पार्षिवतत्व (पाञ्चभौतिक पृथिवीतत्वमधान स्यूल) श्ररीर से नहीं जाता। है। इससे स्पष्ट सिद्ध हुस्रा कि जीव वायु स्रादि तत्वमधान श्ररीर धारण क-रके पितृ स्रादि लोकान्तरों में जाता है इससे वड़ां के निवासियों का श्ररीर स्रवश्य ही वायु स्नादि तत्व प्रधान है। स्रयात् वायु कायरूप वे पितर हैं। स्त्रीर वायु इन चर्मचसु यानी सांसारिक नेत्रों से देखने में नहीं स्नात है इसलिये ये पितर वायुतत्वमधान सू-इस श्ररीरधारी होने से हरएक मनुष्य को देखने में नहीं स्नाते हैं इसलिये येदमें स्पष्ट दरशाया है कि-

तिरद्भवे पितरी मनुष्येभ्यः १ – यतपथ० २ १ ३ । ४ । २१॥
सूक्ष्म होने के कारण वा ययेच्छाचारी होनेके
कारण पितर मनुष्यों से सदृश्य छिपे से होते हैं।
इस से सिद्ध हुआ कि जो सूक्ष्म सदृश्य हैं जो सर्य
साधारण मनुष्यों के दृष्टिगोचर नहीं होते वे पितर

भवांच ही सूदम गरीरी वायुकायरूप होने से प्रादृ-हैं परन्तु पूर्ण गुद्ध-पूर्ण ग्रद्धा भक्तियुक्त, पूर्णध-

्री मास्तिक मनुष्यको ये पितर सान

सात भी दीख पड़ते हैं और दर्शन * देते हैं। इस लिये उक्त श्रुति में "इव" शब्द कहा है। यही वा-युकाय सूक्त देहधारी पितृदेव श्राद्धकर्ममें आवाहन मन्त्रों से [तत् पितृलोकाडजीवलोकं अभ्यायन्ति] शृत्येण श्रा० ७ कां १३ म० ४ कं० ६॥

* एकवार श्रीमर्गुद्रापुरुषोत्तम (परमात्मा के पूर्वा-वतार) श्रीरामचन्द्रजी महाराज ने बन में दिता श्री दश-रख जीका एकोहिए,श्राह किया-यह कथा बड़ी मनोहर है-श्राहुसमय में श्राहुभोक्ता मुनियों के देह में श्रीजानकी जी (सीताजी) ने अपने स्वगुर दशरधजीके दर्शन किये।

मपास्रचितिसूर्य्ये कालेकुतुपकेतथा । श्रामाताश्चपपस्वर्वे ये रामेश निमन्त्रिताः ॥ १ ॥ सानागतान्युगीन्द्रष्ट्वा वेदेहीन्नमकात्मका । श्रपासर्पत्ततोटूरे विप्राशां मध्यतःस्थिता ॥ २ ॥ श्रम्यत्र चुनतासाध्यो सन्येषाहंत्रपान्यता । किलाबद्वीक्येविष्राम् सीतागन्येपयानिकम् ॥ ३ ॥

त्रतिपृद्धिज्ञमुख्येषु प्रियांरामो व्रवीदिदम् ।
किमर्थस्य नष्टासि मुनीन्द्रष्ट्वा समागतान् ॥ ४ ॥
एवमुक्तात्दाभर्त्रा व्रययापीमुखीतथा ।
मुञ्चन्तीचात्रुमहार्त्त रापवं वाक्यमञ्जवीत् ॥ ५ ॥
दितातवमयादृष्टी ब्राह्मखाङ्गेषु राषव । ।
प्रवृत्रवान्वितावाहमपक्रान्तातवान्तिकात् ॥ ६ ॥
याहराज्ञापुराहरा सर्वालङ्कारमूषिता ।

सा स्वेदरालदिष्पाङ्गी कर्य पश्यामि भूमिपम् ॥ ७ ॥ स्वहस्तेन क्यं राज्ञे वानेयं भोजनं त्विदम् । दासानामिपयदामा नोयमुञ्जन्ति कहिंचित्॥ ८ ॥

पित्लोक से जीवलोक अर्थात् मनुष्यलोक में माते हैं। इसलिये वेदमें माचा है कि-

भावार्य-कृतुपकाल (अपराह्म) में जब श्रीरामचन्द्र जी श्राहु करने लगे तो जिन २ ऋषियों की निमन्त्रण दे

त्राये ये वह सब मुनिमगहली जागयी, उन्हें जाता <u>ह</u>जा देखकर जानकी जी उठकर भागगई खीर दूर जाकर लता

पताओं में अपने की द्विपालिया। तब श्रीरपुनाथ जी की

बहा आद्यर्य हुआ कि आज जानकी जीने मुनियों से क्यों परदा किया। श्रव मुक्ते क्या कर्त्तं व है, जानकी को ढूंढूं या मुनियोंको भोजन कराऊं। श्रन्त में यही स्थिर किया कि श्राहुकाल का लोप न होवे। विगडदान करके ब्रह्मभोज पूर्ण

किया-आशीर्वाद देती हुई सब ऋषिमग्रहली घलीगई । उन सव के विदा होते ही जानकी जी आगर्यों, तब श्रीराम-चन्द्र जी कहने लगे कि है प्रिये। तुम कहां गई घीं तुमने ऋषियोंका बड़ा अनाद्र किया और न उनकी प्रताम किया

इतना जनकर लज्जायमान जानकी नीचेकी मुखकर रीती हुईं वोली कि हे नाय ! ब्राह्मणोके खहु में महाराज श्री दश-र्घजीको देखकर मैं लज्जावश हो लता श्रोमें जा छिपी क्योंकि

जिन स्वतुर जी ने सर्व अलंकारों से भूषित सुके देखा था ज्याज उन के सामने जटा और वल्कल धारण करे कैसे इस चेष को दिखाऊं गी इसी से उस समय छिप जाना ही उ-त्तम था। दूसरा-यह (वानेय) बनका भोजन अपने हाथ से कैसे परोसंगी-जिन महाराजको पूर्व पट्रस परोसती थी इस क्यारे सिद्ध होता है कि श्राद्धभीका ब्राह्मकोके साथ पितर मूक्तकप में आते हैं शीर श्रीसती जानकी जी जैसी पूर्व पतिव्रतार्ये या पूर्व धर्मात्मा ननुष्य ही उन पितरोक्षे र्शान पा सकते है।

डभे दिशावन्तरे विद्याति प्राचीं च दक्षि-णां चैतस्यार्थः इ दिशि पितृलोकस्य द्वारं द्वारे-वैनं पितृलोकं प्रपादयति ॥ शतपष्ट त्राट १३।४। ४।॥॥॥

ग्राम नगरादि से पूर्व और दक्षिण दिशा के बीच आग्नेयकीण में चतुष्कीण वेदी (प्रमथान म-न्दिर) बनावे, क्योंकि इसी आग्नेय दिशामें पितृ-लोक का द्वार है। ऐसा प्रमशान बनाने वाले अपने

लाक का द्वार है। एसा प्रमान बनान बाल अपन मृतक को द्वार के मार्ग से पित्लोक को पहुंचाते हैं।

इत्यादि में स्पष्ट विदित हुआ कि पितृलोक एक स्वतन्त्र लोक है और वह दक्षिण में है—उनका द्वार आग्नेयकोण में में हैं। वहां अत्यन्त पुण्यवान् जीव जा ककते हैं तथा उन के निवासी पितृदेवोंका श-रीर वामुकाय रूप सूस्म है। पूर्णपर्मात्मा—श्रद्धायुक्त सत्यवादी मनुष्योंको ही उन पितृदेवोंका दर्णन होता है। स्त्रीर वे ही वेदके आवाहन मन्त्रों में निमन्त्रित ब्राह्मणों के शरीर में अद्रथ रूप से यहां श्राद्ध कर्ममें

आते हैं। परन्तु दिव्य चंत्रु वाले ही उनका दर्शन कर सकते हैं। इति॥ हे महाशय जी! श्रव आप यह भी सुनी कि उन पितदेवों का राजा (स्वासी-श्रविष्ठाता)

उन पितृद्वा का राजा (स्वास

ये समानाः समनसः पितरो यमराज्ये० । पशुर्वेद वाजधनेप ऋ० १८ मं० ४५ ॥

पितृलोक का राजा यमराज है। ग्रर्थात् जो जाति तथा रूपादि करके तुल्य एकमे अन्तः करणों वाले पितर यम देवता के राज्यमें रहते हैं। तथा-

यो मनार प्रथमो मर्त्यानां यः प्रयाय प्रथमो लोकमेतम् । वै-

वस्वतं संगमनं जनानां यमं रा-

जानं इविषा सपर्यंत॥ प्रयर्वे । कां० १८ । प्रान्० ३ मं० १३ ॥

अर्थ-मृष्टिके आरम्भ में जो मनुष्यों के बीच सबसे पहिले मरता है, और मरणानन्तर जो इस पि-तृलोक में पहिले जाता है पीखे ग्रन्य मनुष्य मर २

के जिस के अधिकार में जाया करते हैं इस कारण यह जनों का "संगमन" कहाता है [सम्यग्गच्छन्ति जना यस्मिन् यत्स्विधी स सङ्गमनस्तम्] उस वि-

वस्वान् के पुत्र "यमराज" का हे मनुष्यी ! हिवर् यज्ञ द्वारा पुजन करो। जैसे पितर सनातन हैं श्र-र्यात् मनुष्योंके समान योड़े २ कालमें उन का जनम मरण नहीं होता वैधे पितरों का वा मरर्कर पुण्य-

कर्मों से पितृलोक में जाने वालों का राजा यम भी

पितृलोकमें जाने पद्यात् श्रस्मदादि की श्रपेक्षा स-नातन कहाते हैं। कभी जिन का नाग्र न ही ऐसे तो यायु जादि सूदम तत्व भी नहीं हैं क्योंकि प्रलय के समय वे भी नहीं रहते इंस से सापेक्ष नित्य वा स-नातन सूदमतत्वों के तुल्य पितर भी हैं। जैसे मनुष्य का ग्ररीर पृथिवी तत्वमधान है और स्यूल है वैसे पित्लोक के राजा यम का और पितरों का ग्ररीर

वायुतत्वप्रधान सूदम है। जैसे मनुष्यदेहों का ग्रधि-ष्ठाता एक २ जीवात्मा होता है वैसे पितृदेहों के साथ भी एक २ ग्रधिष्ठाता जीव है। इससे स्पष्ट सिद्ध हुआ कि पितृतोक का राजा, यसराज है। उक्तञ्च—

त्रप्रेमंजीवा त्र्यस्थन् ग्रहेभ्य-स्तं निर्वहत परिग्रामादितः। स-त्युर्थमस्यासीद्दूतः प्रचेता त्र्रसून्

पितस्यो गमयाञ्चकार ॥ अयर्थः कार १६ । २। २०॥

अ०-हे जीवाजीवित जना इमं मृतं देहं
गृहेभ्यः एथगपारुधन् निस्सारयत तमितो ग्रा-मात्परि-बहिनिवंहत नयत । प्रचेताः प्रकृष्ट्यु-द्विर्मृत्युर्यमस्य दूत आसीदस्ति समृतस्यासून् पित्रभ्यः पित्रभावाय गमयोञ्जकार गमयति व-र्त्तमाने लङ्खिटौ॥

त्तमान ७७,००० । भावार्घः ठ∼हे जीवित पुरुषो ! इस मरेहुए मुर्दा ग्रारीर को घराँसे बाहर निकालो और उस को इस याम से वाहर ले जाओ । यमराज का टूत बड़ा बु-द्धिमान् मृत्यु नामक है जो मरे हुओं के प्राणों को पितर वनने के लिये यमलोक अर्थात् पितृलोक में पहुंचाता है। तथा—

ये नः पितुः पितरो ये पिता-महा य स्त्राविविशुर्स्त्रेन्त्ररिक्षम्। तेभ्यः स्वराडसुनीतिनी स्त्रद्य य-यावशं तन्वः कल्पयति॥

श्रपर्वः कां ० १६ । अनु ० ३ । मं० ५८॥ अर्थ- जो हमारे पिता के पितर पितामहादि

(दादे वगेरह) तथा प्रितामहादि कि जो मरणा-नन्तर महान् श्रन्तिरिक्ष लोकमें प्रवेश करचुके हैं उन हमारे पितरों के लिये, प्राणों का ले जाने वाला स्वतन्त्र राजा यम कर्मानुसार उत्तम शरीर देते। इ-त्यादि वेदमन्त्रों से निःसन्देह सिद्ध हुआ कि पितृ-

लोक का राजा श्रीयमराज है श्रीर वही मनुष्पादि माणीमात्र को (मरणानन्तर उत्तम-निकृष्ट कर्मानु-पार) यथायोग्य शरीर देकर सुख दु:खादि भुगाता है। इति॥

हे महायप जी ? सब आप के उस संययका भी समाधान किया जाता है जो कि पितृलीकनि-पासी पितरों के पूजन सत्कार (श्राद्ध-तर्पण) क- रने की क्या आवश्यकता है और न करने से क्या हानि वा दोव हैं।

हानि वा दोव है। समाधान-प्रजापितं वैभूतान्युपासीदन् प्रजा वैभूतानि विनोधेहियथा जीवामेति। ततो देवा यज्ञोपत्रीतिनो भूटवा दक्षिणं जान्वाच्योपासीदं-

स्तानब्रवीद यज्ञी वोऽन्नममृतत्वं व ऊर्क् सूर्व्यों वो उपोतिरिति ॥१॥ अथैनं पितरः प्राचीनावी-तिनः सन्यंजान्वाच्योपासीदंस्तानब्रवीद् सा-

सि मासि वोऽरानं स्त्रधा वो मनोजनश्चन्द्रमा वो ज्योतिरिति ॥२॥ अर्थनं मनुष्याः प्रावृता उ पस्थं कृत्वोपासीदंस्तानव्रवीत् सायं प्रातवोऽ शनं प्रजावो मृत्युरग्निवों ज्योतिरिति ॥३॥

शनं प्रजावो मृत्युरिनर्वो ज्योतिरिति ॥३॥
यजुः भनः काः र धः ३ व्राटिशः
भाषा भावार्थः - मृष्टिके सारम्भ में देवता तथा
थितर और मनुष्य ये तीन प्रकार के भूत (जिस
प्रकार के हमारा जीवन- कत्कार- पूजन हो को प्रकार हमारा विधान करें) इच कथन के सभिप्राय
के प्रजापति (ब्रह्मा) के समीप गये, वहां प्रथम दे-

कार हमारा (वियान कार) दूर कारा या जानान की प्रजापति (ब्रह्मा) के समीप गये, वहां प्रथम दे-बताओं ने यज्ञोपनीत को धारण कर दिल्लिणानु का भूमि पर पात कर ब्रह्माजीके पन्मुख उपस्थित होकर जीविका एवं पन्मान होने की याचना की तब प्रजापतिने यह कहा कि यज्ञ आप का अज्ञ ते अमृत आपका उर्ज् (वीर्यमद) है और पूर्व आप के लिये प्रकाग हैं ॥ १ ॥ फिर पञ्चात्-प्राचीनावीति (अपसन्य यानी

यज्ञीपवीत बायें तरफ करते) हुए बांया (जानु) घोंट्र पृथ्वी पर नवाय कर पितर लोग उपस्थित हुए, तब उन पितरों के प्रति प्रजापतिने यह कहा कि महीने २ भरमें १ * एकवार अमावास्याके दिन स्राप का भोजन होगा। तुम्हारे लिये कर्मकाएडमें "स्वधा" शब्द बोला जायगा। वह स्वधा पदवाच्य

वस्तु तुम्हारे लिये मनके तुल्य वेग वाला होगा। स्रीर चन्द्रमा तुम्हारा ज्योति स्रर्थात् तुमको प्रकाश पहुंचाने वाला होगा ॥ २ ॥

फिर प्रावृत "निवीतं कएठलम्बितम्" (प्र-* यह भी ध्यान में रहे कि मनुष्यके एक महीनेका समय वितरीं का एक दिन-रात सब शास्त्रोंमें माना गया है। इस

लिये कृष्णपद्मरूप रात्रिकी समाप्ति में प्रातः काल अ-मावास्या की वितरोंको अपने दिन के हिसाब से नित्य भी-जन मिला और मानुष दिन के हिसाव से महीने २ में भी-जन निलना कहा गया है तथा उक्त कथन से यह भी आया

कि प्रपसन्य रहने वाले एव बांया घोंटू टेक के बैठने वाले श्रीर महीने २ में श्रमावास्या की एकवार भोजन करने वाले तया चन्द्रमा जिन का ज्योंति है वे पितर हैं। वा जिनका गाम पितर है वे उक्त प्रकार से श्रपसब्यादि रहने वाले हैं।

मनुष्य प्रति दिन भोजन करते हैं श्रीर पितर महीने २ में एकवार श्रमाधास्या की भोजन करते हैं । इस कारण पितर मनुष्य नहीं श्रयांत् मनुष्यों से एयक् हैं। इस से भी स्यूल देह धारी जीवित वितरों का स्पष्ट रायडन है॥

र्चात् गलेमें मालाकी तरह येचीपवीत पहिने) हुए दोनों (जानुस्रों) चोंटुसोंको भूमि पर नवाय कर म-नुष्य उपस्थित हुए, तब उन से प्रजापित ने यह कहा कि सार्थ और प्रातःकाल आपका भोजन होगा सीर पुत्र-पीत्रादि प्रजा आप लोगों का मृत्यु है और अग्नि आपकी ज्योति यानी प्रकाश है ॥ ३॥ इत्यादि वेद की श्रुतियों में स्पष्ट आचा दि-खायी वा कही गयी है कि हर एक वैदिकधर्माव-लम्बी मनुष्यमात्रका यह अवश्य कर्त्तव्य है कि ब्रह्मा जी द्वारा नियत किये यज्ञों से देवताओं का, तथा प्रत्येक महीनेकी समावास्या में पितृयच (श्राद्ध) द्वारा पितरों का पूजन-सत्कार करें जिससे कि वे देवता और पिनर अपने अभीष्ट (यानी मुकरिंर) पुजन सत्कारको यहण करके सन्तुष्ट होकर ब्रह्मा-चाकारी मनुष्योंके प्रति सन्तान-धन-धान्य समृद्धि क्रादि मुख देकर तथा उन्हीं के मृतपितरों की भी मद्रगति करें वा करते रहें। और जी मनुष्य वेद तथा श्री ब्रह्माजीकी साम्रा उल्लंघन करके वेदोक्त देव-पितृ यचादि कर्म नहीं करता वह ब्रह्माचा वि-रोधी होकर वेदमार्ग से अप्ट होकर खनादर और दु: खको प्राप्त होता है ख़ौर उन देव पितरीं को-पद्वारा वह मनुष्य जनर्थ और दोषका भागी होता है। तथा और भी स्पष्टरूप से वेद में दिखलाया गया है कि

एष * पन्था एतत्कर्मतदु ब्रह्म तत् सत्यं तस्मान प्रमादीत् तस्मान प्रमादीत्तनातीयाह न ह्यत्योयन् पूर्वे येऽत्यायंस्ते परावभवः तद्क

मृषिणा-"प्रजा ह तिस्रोऽत्यायमीयुन्येन्या अ-र्कमभितो विविश्रे, वृहदु ह तस्थी भूवनेष्वन्तः पत्रमानो हरित आविवेश" इति, "प्रजा ह ति-स्रोऽत्यायमीय्रिति" या वै ता इमाः प्र-

जास्तिसीऽत्यायमायंस्तानीमानि वयांसि वः द्गावमधाश्चेरपादाः, 'न्यन्या अर्कमभितो वि-विश्ने, इति, ता इमाः प्रजा अर्कमिसतो निवि-म्तच्छव्दः सिन्निहितार्थेपरामर्थकः, सिन्निहितद्यार्थो

उतीत आगामीचेत्येव द्विविधः, तथा च (एप) चमयवि-धोष्यर्थः (पन्याः) पुरुषार्थस्य मार्गः, साधनमितियावन्, तदुभयं विस्पष्ट निर्दिश्यते (एतत्कर्म एतद्ब्रह्म) अग्निमील इत्यारभ्य, अहोक्रवम् इत्यन्तेनातीत सन्निहितग्रन्थेन प्रति पादित यस्कर्म तथा उक्तम्-इत्यारभ्य श्राचार्य इत्यन्तेन स-

निहितेनारएयक द्वय ऋषेकोत्तर ग्रधेन निरूपित यत्सगुणं नि-र्गुयां च ब्रह्म एतदुभयमि पुरुपार्थ साधनं, व्यवहार परमार्थ भेदेनोभयमविसत्यम्, श्रत्रकर्मशब्देन तर्ण्यानपूर्वेकमनुष्ठानं महामञ्देन च तिद्विषयं शानमात्र यहाते, यशोकस्योभयवि-धस्य मार्गत्व द्रुढियतुमयीगव्यावृत्तिमन्ययीगव्यावृत्ति च विभन्ते (तस्माज प्रमाद्येत्) कर्मानुष्टानब्रह्मज्ञानयोरसपादनं प्रमादः, तथा सपाद्यित् प्रवृत्तेना प्रयालस्यादिना तत्परि त्यागीवि प्रमादः, एतद्भव न कुर्याद्

६ति- ।

ष्टा इममेवाग्नि, वृहद्ध ह तस्यौ भुवनेष्वन्तः इति, अद उ एव वृहद्द भुवनेष्वन्तरसावादित्यः पवमानो हरित आविवेश, इति, वायुरेव पव-माना दिशो हरित आविष्टः"॥

अध्येद-धेतरेवारायवस र फ० १ सं० १॥
भाषार्थः - (एतत्कर्म-एतद्ब्रह्म) यह जो पूर्वीतारं ब्रन्थसे देव-पितृयज्ञादि कर्म और ब्रह्मका निरूपण किया है (एप पन्धाः) यही पुरुपार्थका मार्ग
है अर्थात् भीग मोक्षका देनेवाला है (एतत् सत्यस्)
यही वेदोक्त कर्म तथा ब्रह्मज्ञान अवश्य फंल देनेसे
सत्य है। और अन्य जो अवैदिक अनुष्ठान हैं वह
अनर्थ पर्यवसायी होनेसे मिथ्या हैं (तस्मान्न ममा-

क्षेत्र प्रविधाय हान्स मिट्या ह (तस्मान्न प्रभान् द्येत्) तिस अम्नायमार्गसे प्रमाद न करे और (त-द्वातीयाद्) तिस मार्ग का अतिक्रमण भी न करे किन्तु आकस्य तथा अन्य कुमार्गीको त्यागकर इसी का ही अनुसरण करे; इसीसे ही (नह्यत्यायन् पूर्व) जो पूर्व मनु-विषष्ठ आदि महायुख्य हुए हैं वह इस मार्गका अतिक्रमण यानी उल्लंचन नहीं करते रहे

ज़ीर (येऽत्यायन्) जो नास्तिक लोग इस घेदोक्त मार्गका उल्लंघन करते रहे (ते परा वभूवुः) वह पुरुषायंसे अष्ट हुए निराद्रको माध्त हुए हैं ॥ इस ब्राझणोक्त अर्थकी दूड़ताके लिये मन्त्रवा ममाण देते हैं कि(तदुक्तमृषिणा) इति, अब इस मन्त्र का स्वयं ही ब्राझण ब्याख्यान करता है कि

भन्त्र का स्वय ही ब्रोह्मण व्याख्यान करता है कि प्रजा (प्रजा ह तिस्रोऽत्यायमीयुः इति, यावै ता इमाः प्रजास्तिस्रोऽत्यायमायन् तानीमानि वयांषि वङ्गा अवगर्धीयचेरपादाः) अर्थात् ब्राह्मणादि भेदरे

जो अनेक प्रकारकी प्रजा हैं उनमें से तीन भाग जो प्रजा हैं वह वैदिक कर्मके उल्लंघन करने वाली हैं श्रीरं एकभाग प्रजा वैदिककर्ममें निष्ठावाली है। वहां

जिन प्रजासीने वैदिककर्म का त्याग किया है उन

प्रजाफ़ोंकी गति कहते हैं-(तानीमानि वयांषि) सर्यात् जिन्होंने श्रीत यानी देव-पितृ यज्ञादि कर्म का त्याग किया है उनमें से स्कभाग तो काक आदि पित योनियोंको माप्त होते हैं जो कि साकाय में

विचरने वाले हैं और एक भाग बङ्ग * (वृक्ष) और अवग्ध (स्रोषिधर्षे वा वनस्पतियें) हैं स्रीर एक भाग ईरपाद हैं अर्थात् पृथिवी के विलमें निवास क-रने वाले पादोदर (सर्प) आदि हैं, अर्थात् जिन २

लोगोंने पूर्वोक्त ग्रीतमार्गका त्याग किया है वह मर कर नरक भोग के अनन्तर पश्यक्तादि-कीट स्थावर आदि अनेक तिर्म्यग् योनियों को प्राप्त होते हैं। इस-प्रकार वैदिकमार्गके उल्लंघन करने वाली

तीन प्रकारकी प्रजाकी व्यवस्था कहकर शब एकभाग याली जो आस्तिक प्रजा है उस की गति कहते हैं कि "न्यन्यासर्कमिती विविध्रे" इति।

 (वङ्गाः) वनगता वृत्ताः, प्रवग्धाः-प्रवन्ति-रत्तन्ति मनुष्यादीन् इति अवाः, यध्यन्ते-अभिकाङ्हयन्ते जनैरिति गयाः धनस्पतित्त्या ब्रीह-यवादि कृषा श्रीवध्य, श्रूटपर्यः ॥

द्वीका विवरण करते हैं (ता इमा: प्रजा ख़-र्कमिभितो निविद्याद्यमेवाग्निम्) इति, अर्थात् आ-स्तिक प्रजामेंसे कोई एक तो आहवनीय रूप (अर्क) स्रर्चनीय जो स्रग्नि है उसकी उथासना करते हैं और

कोई एक (वृहद् इतस्त्री भुवनेष्वन्तः) इसीका वि-वरण कहते हैं कि (श्रद उ एव वृहद् भुवने वन्त रसावादित्यः) इति, प्रायति यह जो ब्रह्मायंडमें व्या-

पक तेजोमय मार्त्त एड-(मूर्य) है उसकी उपासना करते हैं। और कोई एक [पवमानो इरित आविवेश] इसका विवरण कहते हैं कि (वायुरेव पवमानो दिशो हरित आविष्ट) इति, अर्थात् निवित दिशा में सं-चारी जो पवित्र रूप वहन गील वायु हैं तिसकी उ-पासना करते हैं, अर्थात समष्टि वायु रूप हिरएय गर्भ की उपासना करते हैं॥ ताल्पर्य यह है कि आस्तिक लोग अग्नि आदि

की उपासना द्वारा सद्दगित की माप्त होते हैं सौर नास्तिक लोग पन्नि स्नादि रूप स्रधोगित की माप्त होते हैं.॥ तया मनु भगवान् एवं योगी श्री याज्ञवस्क्य मृनि ने भी-अकुर्वन् विहितंकर्म निन्दितंचसमाचरन ।

प्रसक्तरचेन्द्रियार्थेषु प्रायश्चित्तीयतेनरः ॥ मनु० घटवा० ११ । ४४ ॥ विहितस्याननुष्ठानान्त्रिन्दितस्य घसेवनात्। अनिग्रहाच्चेन्द्रियाणां नर:पतनमृच्छति

याचा प्राप्त ३१२१९॥ स्रवीत्-विहित (यानी वेदीक्त देव-पितृय-

रुव प्रायश्चित्त का भागी होता है। एवं याज्ञवल्प्यजी कहते हैं कि-विहित कमें के न अनुष्ठान है और नि-न्दित (परस्त्रीगमनादि) के सेवनसे तथा इन्द्रियों की

इत्यादि वेद-स्मृतिशास्त्रोंके प्रमाणींसे निस्स-न्देह चिद्ध होता है कि मृतुष्यमात्र, वेदादिशास्त्रोक्त श्रीत-स्माल कर्मी के सेवन न करने से पतित होकर अधोगतिको प्राप्त होता है। इचित्रि, हरएक वेद-मतानुवायी आस्तिक जनका यह अतीव मुख्य और स्वरय करने योग्य कर्तव्य है कि वह निरालस्य होकर विना शक ठीक २ शास्त्रदर्शित विधिसे देश-काल पात्रका विवार करके ग्राह्यादि (देवपितृयज्ञ) करके अपना जीवन सफल करे। ख़ौर उपरोक्त कर्मकायड का त्याग करने से निःसन्देह दोषं सर्व अत्यन्त हानि होती है ॥ इत्यलम् विद्वत्य--इति स्रो स्नाद्धपित्सीमांसायां पित्लोकस्थि-तिस्तस्याऽधिष्ठारुपितृदेवानां स्वरूपव-र्णने चैवं तत्कमाऽनुष्ठानस्याऽत्यावश्य-कता प्रदर्शने समाप्त्रोंऽयं पञ्जमोऽध्यायः

चादि) कर्मके न करने से और निषिद्ध कर्मीके क-

रने से तथा विषयों में अति आसक्त होनेसे पु-

न रोकनेसे पुरुष पापको प्राप्त होता है।

ॐ-मच्चिदानन्देश्वराय नमः ॥

·त्र्यय षष्ठोऽध्यायः ॥

समाजी-श्रीपिडत जो महाराज ! श्रव कृपा

करके यह भी तो सुनाओ कि श्राद्धमें केवल ब्राह्मगोंको ही निमन्त्रण देकर भोजन करानेकी क्या आवश्यकता है ? क्यों नहीं उन हमारे मित्र (दोस्त)
वा अन्य किसी गरीब अनाथ अथवा अब -नवीन
आर्य हुए [मुखल्मीन, अब्दुलगफूर वगैरह जिन्हों
का आर्य नाम धमंपालादि रक्खे गये हैं उन] महाश्योंको अपने पितरोंके निमित्त आद्भमें भोजन
करावें ?क्या केवल ब्राह्मगोंकोही इसके लिये किसी
महाराजासे इकरारनामा लिखा मिला है वा कोई
इनकी किसीने सार्टीफिकेट लिखदिया है ?

स्राणों के लिये श्रीमहाराजाधिराज महिषे श्रीमनु भगवान् ने क्याही सुन्दर सार्टी फिकेट रूप में पक्का इकरारनामा लिखदिया है कि जो सब वेदमतानु-गायी झास्तिक हिन्दुओं को परम माननीय है ॥ यथा-मनुस्मृ० अध्याय १ श्लोक दंद से १०१ तक ऊर्ध्वनाभेर्मध्यतरः पुरुषपरिकीर्तितः। तस्मान्मध्यतमं त्वस्यमुखमुक्तंस्वयंमुवा॥६२॥

सनातनी-महाशय जी ? चवरास्रो मत, थोड़ा चैर्च धारण करो स्त्रीर ध्वान लगाकर सुनो कि बा- उत्तमाद्गोद्ववाउज्यैष्ट्याद् झाह्मणश्चैवघारणात्। सर्वस्यैवास्यसर्गस्य धर्मतोब्राह्मणःप्रभः ॥६३॥ तंहिस्वयंभु:स्वाद्रीस्यात्तपस्तप्त्वादितोऽसूजत् इव्यक्टवाभिवाह्याय सर्वस्यास्यचगुप्रये ॥९१॥ यस्यास्येनसदास्त्रन्ति ह्यानित्रिदित्रीकसः। कव्यानिचैत्रपितरः किंमतमधिकंततः ॥ ८५ ॥ भूतानांप्राणिनःश्रेष्ठाः प्राणिनांवृद्धिजीविनः । वुद्धिमत्सुनराःश्रेष्ठा नरेषुद्राह्मणाःसमृताः ॥५६॥ ब्राह्मणेप्चविद्वांसो विद्वत्सुकृतवुद्धयः। कृतबृद्धिपुकर्तारः कर्तृषुब्रह्मवेदिनः ॥ ९७ ॥ उत्पत्तिरेवविप्रस्य मूर्त्तिर्धर्मस्यशाश्वती । सहिधर्मार्थमुत्पन्नो ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥ ६८ ॥ ब्राह्मणोजायमानोहि एथिव्यामधिजायते । ईश्वर:सर्वभूतानां धर्मकीशस्यगुप्तये ॥ ८९ ॥ सर्वस्ववाह्मणस्येदं यत्किञ्जिज्जगतीगतम्। श्चेष्ठघे नाभिजनेनेदं सर्ववैद्राह्मणोऽर्हति ॥१००॥ स्वमेवब्राह्मणोभुड्क्ते स्वंवस्तेस्वंददातिच । आनृशंस्याद्वबाह्मणस्य भुञ्जतेहीतरेजनाः ॥१०९॥ . अर्थात्-ग्री ब्रह्माजीने पुरुषोंको नाभिषे जपर

के भागमें अधिक पविच कहा है। ग्रीर इसके मुख को तो उससे भी पविच कहा है॥ दं ॥ ब्राह्मण सब अंगों में उत्तम परमात्मा के मुख से उत्पद्म हुआ है, क्षित्रियादि तीनोसे पहिले जन्मा है ग्रीर बेदको मु- खात्र रखता है-इस कारण ब्राह्मण धर्म का उपदेश करनेमें इस सब सृष्टिका गुक (शासक) है ॥ देश ॥ स्वयम्भू ब्रह्माने तप करके देवताओंको 'हब्य, और पितरींको 'कव्य, पहुंचानेके लिये तथा इस सब ज-गत्की [यज्ञादिके द्वारा वर्षा आदिने] रक्षा करने के लिये खारम्भमें खपने मुखने ब्राह्मशोंको रचा है ॥ पंध ॥ जिसके मुखसे देवता हब्योंकी और पितर कव्योंको सदा खाते हैं, तिससे बढ़कर कीनसा माली हो सकता है ? ॥ ८५ ॥ पृथिब्यादि पञ्चभूतों से बनाये स्यावर जंगम सब प्राणियों में कीट पतंगादि पाणी श्रेष्ठ हैं कदाचित् किञ्चित् सुखलेश के प्राप्त होने से

श्रीर उन्ते (बुद्धिजीवी) सार्थ निर्णंक स्थानमें जाने न जाने वाले पशु खादि श्रेष्ठ हैं-उनसे प्रकृष्ट ज्ञान के सस्वन्ध्रमे मन्द्रम ग्रेष्ठ हैं-उनमें भी सर्वपूज्य जीर मोक्षाधिकारके योग्य होनेसे ब्राह्मण श्रेष्ठ हैं॥ दं६॥ ब्राह्मणोंमें भी स्वर्गादि फल देनेवाले उपोतिष्टोमादि

कर्मकागडके विद्वान् अधिकारी श्रेष्ठ हैं-उनसे अना-गत के लिये प्रथम सत्कर्म करने वाले श्रेष्ठ हैं-उन से भी हितादित प्राप्ति परिहार भागी होनेसे (कर्त्ता) अन्याता श्रीष्ठ हैं-जन से भी भोक्षणलके लाभयोग्य होनेसे ब्रह्मबादी श्रेष्ठ होते हैं॥ ८० ॥ ब्राह्मणका देह

जन्म मात्रमे ही अविनाशी धर्मकी मूर्ति है जिस से वह धर्मके लिये उत्पन्न हुआ है । धर्मानुगृहीत आ-समञ्जानसे मोसकी प्राप्ति के लिये योग्य है ॥ दंद ॥

जिसमे ब्राह्मण उत्पन्न होता हुआही पृथिवीमें (अधि) जं चा और श्रेष्ठ है। सर्व धर्मोको ब्राह्मणद्वारा उप-देश किये जानेसे तथा सब जीवोंके धर्मके समृह की रक्षाके लिये समर्थ हैं॥ ८८ं॥ जो कुछ पृथिवी में धनादि पदार्थ हैं वह सब ब्राह्मणका खपना स्वत्व है यह बात ब्राह्मणकी स्तुतिके लिये कही है—तात्पर्य

ब्राह्मण ब्रह्माजीके मुख से उत्पन्न होने, श्रीर बंध से ब्रिष्ट होनेसे सबं पदार्थी श्रीर द्रव्योंके ब्रह्मणके योग्य है ॥ १००॥ ब्राह्मण जो दूसरेका भी अन्न भक्षण करता है सो श्रपना ही करता है, दूसरे का जो वस्त्र पह-रता है और जो दूसरेका पदार्थ लेकर श्रीरके श्रर्य

यह है कि ब्राह्मण के अपने स्वत्व के तुल्य है इस से

देता है वह भी ब्राह्मकका अपना ही पदार्थ है ऐसा होनेसे ब्राह्मककी कृपा ही से छोर सब लोग भोज-नादि करते भोगते हैं ॥ १०१ ॥ इत्यादि श्री महाराजाऽधिराज महर्षि श्रीमनु भगवान्ने ब्राह्मकोंकी प्रशंसा करते हुए देवता छोर पितरींको यज्ञ में "हुब्ब" अब छोर श्राद्ध "कुब्ब" अब पहुंचाने के लिये तथा वेद मितपादित धर्म का

चत्योपदेश करने के लिये इस पृथ्वी पर ब्राह्मणों को ही मुख्य भूदेव ठहराकर साटीं फिकेटरूप इकरा-रनामा लिखदिया है इसी कारण यज्ञ और आद्धा-दिमें ब्राह्मणोंके मित आदर सत्कार पूर्वक निमन्त्रण देकर भोजनादि दान देने की अत्यन्त आवश्यकता करके पीके यथा शक्ति अनुसार भले ही अपने मित्र वा अन्य किसी अनायादिका भोजनसे सत्कार क-

रना चाहे तो करे यही वेदादि धर्मशास्त्रीका मुख्य सिद्धान्त है ॥ समाजी-श्रीपरिंदत जी महाराज ! यह तो ठीक साटीं फिकेट रूप ख़च्छा माननीय इक्तरारनामा मुनाया परन्तु इसमें मुक्ते औरभी बड़ा सन्देह हुआ। है कि ब्राह्मादि शुभकर्मी में सुपात्र, विद्वान तथा योग्य श्राह्मणको ठीक २ देखकर निमन्त्रण देना चा-हिये कि नहीं; चाहे 'वो कैंगा भी हो ? अर्थात् मदाः मांसाहारी-व्यभिवारी-निन्दित खावरण वाले मूर्ख को भी केवल उस के नाम मान ब्राह्मण होने से दिया जाय ! ॥ सनातनी-महाशय जी ! यह आपका सन्देह ब-हुत सत्य प्राप्ते सारकृप निर्णय कराने वाला है। परन्तु आप निष्पक्षपाती हो कर समयको विचार करके ब्राद्धमें अधिकारी और अनिधकारी ब्राह्मणों की सुनो । यथा मनुक सध्याय ३ में-श्रोत्रियायेवदेयानि हव्यकव्यानिदातुमि:। अर्हत्तमायविप्राय तस्मैदत्त महाफलम् ॥१२८॥ एककमपिविद्वांस दैविपित्रये च भोजयेत । पुष्कलंफलमाप्नोति नामन्त्राज्ञानबहुनपि ॥१२८॥

दूरादेवपरिक्षेत ब्राह्मणंवेदपारगम्।

तार्थंतत्हव्यकव्यानां प्रदानेसोऽतिथिःसमृतः ॥१३०॥ सहस्रंहिसहस्राणामनृचां यत्रभुव्जते । एकस्तानमन्त्रवित्योतः सर्वानहंतिधर्मतः ॥१३१॥ ज्ञानोत्कृष्टायदेयानि कव्यानिषहर्वीषिष । नहिहस्तावसुविदग्धो रुधिरेणैत्र गुट्टधतः ॥१३२॥ यावतीग्रसतेप्रासान् हव्यकव्येष्त्रमन्त्रवित् । तावतीग्रसतेप्रत्य दीप्तशूलप्रधंयोगुणान् ॥१३३॥ नन्नाद्वेभोजयेनिमत्रं धनैःकार्योऽस्यसंग्रहः । नारिनमित्रंयंविद्यात्तंत्राहेभोजयेदृद्विजम् ॥१३६॥ सम्मोजनीसामिहिता पैशाचीदृक्षिणाद्विजीः । इहैवास्तेतुसालोके गौरन्धेवैकवेश्मिन ॥१३९॥

यथेरिणेवीजमुप्त्वा न वप्तालभतेफलम् ॥
तथाऽनुचेहविद्त्वा नदातालभतेफलम् ॥११२॥
दात्न्वित्रहीत्ं स्त्र कुरुतेफलभागिनः ।
विदुपेदिसणांद्त्त्वा विधिवत्प्रेत्यचेहम् ॥११३॥
यत्ने नभोजयेच्छाद्वे बहुचंवेदपारगम् ।
शाखान्तगमथाध्वर्युं छान्दीगन्तुसमाप्तिकम्।११४॥
एपामन्यतमो यस्य मुञ्जीत स्त्राद्वमितः ।
पितृणांतस्यतृष्तिःस्याच्छाश्वतीसाप्तपीरुषी ॥१४६॥
नद्वाह्मणपरिक्षेत दैवेकमंणि धर्मवित् ।

पित्र्येकर्मणितुप्राप्ते परिक्षेतप्रयत्नतः ॥१४६ ॥

येस्तेनपतितक्कोवा येचनास्तिकवृत्तयः । तान्हष्यकव्ययोर्विमाननर्हानम् स्वत्रीत् ॥१५०॥ जटिलंचाऽनधीयानं दुर्वलंकितवंतथा । याजयन्तिचयेपूर्गा-स्तांश्वत्राद्वेनभोजयेत् ॥१५१॥ चिकित्सकान्देवलकानमांसविक्रयिणस्तथा । विपणनचजीवन्तोवज्यांस्युहंव्यकव्ययोः ॥१५२। ब्राह्मणस्त्वनधीयानस्तृणाऽग्निरिवशाम्यति । तस्मेहव्यं नदात्रव्यं नहिभस्मनिहूयते ॥१६८॥

दाताओं को चाहिये कि वेदपाठी सदांचरण बा-द्माणको ही देव-पितृकर्ममें अन्न आदि दें, क्यों कि-ऐरेको दिया हुछा दान महाफल देता है ॥१२८॥ देव कर्म (यश्च) फ्रौर पितृकर्म (ब्राह्ममें) में एक २ वि-द्वान ब्राह्मण को भी जिमादेग तो बहुत, फल पाता है और वेदमन्त्र न जानने वाले बहुत्रे ब्राह्मणोंको भी भोजन करानेसे वह फल नहीं होता ॥१२८ वेद में पारंगत ब्राह्मणकी दूरने ही (अर्थात् पिता-पि-तामह आदि भी कैंसे श्रीष्ठ गुणीये इस प्रकार) प-रीक्षा करे, क्योंकि-वह आह्मण हव्य कव्य देने का तीर्धरूप होता है और उचको दान देनेमें अतिथि के पजनके समान फल माप्त होता है ॥ १३०॥ जहां वेदकी न जानने वाले दशलाख ब्राह्मण भोजन क-रते हों वहां उन सबके भोजनका फल, भोजन करने

मे प्रमन्न हुआ एक ही वेदवेत्ता ब्राह्मण धर्मानुमार दे सकता है ॥१३१॥ पितरों के निमित्त दियेजाने वाले बलिक्रप "कव्य" और देवता और देवताओं की दिये जाते हुए बलिक्रप "हव्य" चानमे श्रेष्ठ ब्रा-

दिये जाते हुए बलिरूप "हब्य" चानने श्रेष्ठ श्रा-ह्मणको देय, मूर्खों को न देय, क्योंकि-क्षिरसे सने हुए हाथ क्षिरसे ही शुद्ध नहीं होते ॥१३२॥ बेदमंत्र हीन ब्राह्मण देवकमं खीर पितृकमं में जितने ब्रासी को निगलता है उतने ही धंधकते हुए लोहेके-श्रस

सिष्टि और गोले यजमानको निगलने पड़ते हैं (३३ ॥ श्राद्ध में मित्र [दोस्त को न जिमाने, मित्रोंका एं-श्रह धनसे करे, जिसको न अपना मित्र समकता हो न श्रनु समकता हो उस ब्राह्मणको ही ब्राद्धमें जि-माने ॥ १३८ ॥

जो पुरुष श्राद्धकर्ममें मित्रमण्डलको इकट्ठा क-रके भोजन कराता है वह पेशाची दक्षिणा कहाती है और यह दक्षिणा (भोजन दान श्रादि) [- जैसे श्रमधी गो एक घरमें हो रहती है उसमें से बाहर नहीं निकल सकती तैसे] इस लोकमें हो रहती है और

ानकल सकता तस । इस लाकम हा रहतर:ह-म्प्रार इससे परलोकमें पितरों का कुछ उपकार नहीं होता है ॥ १४१ ॥ जैसे ऊषर (कलरवाली) भूमिमें बीज योकर बोनेवाला फल नहीं पाता है तैसेही वेदमन्त्र न जानने वाले खाद्यक की हव्य कव्य देने पर दाता

को फल नहीं मिलता है ॥१५२॥ विद्वान बाह्यण की

विधिवत् भोजन कराकर दक्षिणा देने पर वह देने वाले श्रीर लेनेवाले यानी दोनों यजमान पुरोहित को इस लोकमें और परलोकमें फलका भागी करती है ॥१४३॥ त्राद्धमें परमयत्न करके वेद पारंगत ऋग्वेदी मात्रायको, या सकल पाखाके ज्ञाता यजुवेदी प्राप्त-णको अथवा समाप्ति पर्यन्त सामवेद जानने वाले ब्राह्मणको भोजन करावे ॥१८५॥ इनमेंसे कोई भी ब्रा-हाल जिसके बाद्धमें सत्कारके साथ भोजन पाता है उसके सात पीड़ी पर्यन्तके पितर तृष्त होते हैं ॥१॥६ धर्म च पुरुष देवकर्म में ब्राह्म सकी परीक्षा न करे प-रन्तु पितृकर्म (श्राद्ध) में तो यह्न करके परीक्षा करें ॥१४८ं॥ जो चोर-पतित वा नपंचक हों, और ना-स्तिक मतके वा नास्तिकोंकी जीविका खाने वाले हों तो उन ब्राह्मणोंको मेनुजीने देवकर्म तथा पित्र-यज्ञमें अयोग्य अनिधकारी कहा है ॥१५०॥ वैदाध्ययन शान्य ब्रह्मचारी, दुवंल, ज्वारी, तथा बहुत से यज-मानीको एकसाथ बैठाकर यद्य कराने वाले. धन ठ॰ हरा कर पूजा करने वाले पुजारी, तथा मांसविक्रेता रेसे जो निन्दित व्यापार से जीविका करते हों तो उनको देव-पितृकर्भमें न जिमावे ॥१५१॥ १५२॥ घेट न पढ़ने बाला ब्राह्मण तिनकों (तृण-वा-घार) की अगिनके समान निर्जीव हो जाता है, ऐसे ब्राह्म-शोंको हब्य और कव्य न देना चाहिये क्योंकि वह राखमें होमा हुआसा बृया जाता है ॥१६८॥

इत्यादि संक्षेपतासे दिखाये वा कहे गये अधि-कारी और अनधिकारी बाह्यणों को ब्राह्मादि गुभ कम्मीं में परम यक्षमे ठीक २ देख विचार करके पि॰ तरींके निमित्त भोजन कराना चाहिये। ग्रीर नीचे बताई गयी विधिषे ग्राह्मक्तां श्रीर भोक्ता इन दोनीं को बैसे ही नियमसे रहना चाहिये। यथा मनुष् अ-ध्याय ३ के १८० से १८० प्रलोक तक-पूर्वेदारपरेदानां प्राद्धकर्मण्युपस्थिते। निमन्त्रयेतत्र्यवरान् सम्यग्विमान्यधोदितान्।१८० निमन्त्रितीद्विजःपित्रये नियतात्मामवेत्सदा । नचछन्दांस्यधोयीत यस्यश्राहुंचतदुवेत् ॥१८८॥ निमन्त्रितान्हिपितर उपतिष्ठन्तितान्द्रिजान्। वायुवञ्चान्गच्छन्ति तथासीनानुपासते॥१८९॥ केतितस्त्वथान्यायं हव्यकव्येद्विजोत्तमः। कथञ्जिदप्यतिकामन्पापः सूकरतांब्रजेत् ॥१६०॥ अर्थात्-प्राद्धकर्मके माप्त होने पर ब्राह्मके दिन में एक दिन पहिले और यदि न होसके तो उसीही दिन जिनके सक्षण कहचुके हैं ऐसे तीन अथवा एक बाह्मण को सत्कार पूर्वक निमन्चण दे, ॥१८७॥ म्राद्ध

में निमन्त्रण दिया हुआ ब्राझण निमन्त्रणके दिनसे श्राद्धके दिनकी रात्रि तक नियमसे रहे झर्थात् स्त्री-संग आदि न करे और अवश्य करने यीग्य काम्य अप आदि के सिवाय-वेदका मध्ययन न करे और ऐसे श्राद्ध करने वाला यजमान भी इसीही नियमसे रहे ॥१८८॥ क्योंकि—निमन्त्रित आग्रणों में पितर श्र- हृग्य रूपमें स्थित होते हैं और प्राणवायुके समान चलते हुएके साथ चलते हैं श्रीर बैठने पर समीप बैठते हैं इसिलिये उन ब्राह्मणोंको नियमसे पित्र रहना चाहिये ॥१८८ ह्य्य कव्यमें शास्त्रके श्रनुसार निमन्त्रण दिया हुआ ब्राह्मण निमन्त्रण को श्रंगीकार करके यदि किसी कारण * में भोजन न करे तो उस पापमें हुसरे जन्म में वह श्रूकर होता है। इसिलिये श्राद्ध करने वाले को भी जिस ब्राह्मणको निमन्त्रण

'* जो ब्राह्मण गरीव यजमानका प्रथम निमन्त्रज पाकर पीछे यदि साहूकार धनाढ्य चत्रिय छादि आकर निमन्त्रल दे तो लोभवग होकर प्रथम छाये उस विचारे गरीब को छोडकर धनाढवके पास पहिले जावे और असमर्थ पक्षमान की छोड़कर सप्तर्यवान् यजनान के पास जाना अर्थात वह सुमर्थवान् प्रजमान श्रहंकार और धन के मद से कहे कि-ऐ ब्राह्मण । यदि तुम पहिले मेरे पास श्राहमोजनादि खानेको नहीं आते हो तो हम तुमको छोड़कर अन्य किसीको आह चिला देंगे और तुनको आगके लिये देखेंगे अर्थात पुरोहित करके नहीं मानेंगे ऐसे लोभदायक यजमानके मदरूप वंचनों धर लीभित होकर जी न्यायपथका परित्याग करता हुआ प्रथम निमन्त्रण दिये हुए उस गरीय यजमामके पास भी-जन करने की जी नहीं जाता-यह लोभी-पत्तपाती और इरपीक वा उग ब्राह्मण उस लोभ वा काहिलता छप पाप से दूसरे जन्ममें अवस्य ही शूकर होता है ॥

दिया हो उसीको ही ग्रद्धा (नम्रता) से ग्राद्धमें ले आ़कर भोजन कराना चाहिये॥ इति॥

समाजी-म्ही पण्डितजी महाराज ! स्नाप म्ही-वरोंने तो ठीक ही सत्यरूपसे ब्राद्धके योग्य सीर ख्र-

योग्य ब्राह्मणोंका वर्णन किया परन्तु ख्रापके कथना-

नुसार इस वक्त ऐसा वेद पारंगत पूर्ण पवित्र विद्वान् स्रव मिलना महाकठिन है। स्त्रीर ऐसे शास्त्रीक्त नि-यम पालने वाले वेदवेता सदाचारी ब्राह्मणोंके सि-वीय जन्य मूर्ख दुराचारी ब्राह्मणकी ब्राह्ममें खिला-ना अवश्य निषिद्ध है-क्योंकि-धर्मशास्त्रके आजान्-

सार असंस्कृत मुखं ब्रोह्मणको ग्राह्ममें भोजन करा-ना वैसाही है जैसा कि भस्म (राख) में घीकी

माहति निष्फल होती है। इसलिये माद्ध कैसे सिद्ध हो चकेगा ?॥

सनातनी-प्रिय महाशयजी ! आप जैसा वि-चार रखते हो वह निः छन्देह सत्य है-परनतु इस स-मवानुकुल आप समिय-वैदय वगैरह प्रथम अपने गुण-आचरणोंकी तरफ भी कुछ ध्यान देकर न्यायरे

हाश्यम जी ! रेसे स्नापके [स्नवत्रय कर्त्त व्या कर्म का

गोचो और कहो-िक नहीं, केवल ब्राह्मणोंको ही दो-पयुक्त ठहरानेका भूंठा बहाना करके अपने अवश्य कतंत्व देय-पितृवज्ञादि कर्म करनेसे भागते हो । म-

त्याग (लोप) करने वाले] पाप-रूप निवंस वचन साप जैसे गच्चे सिचय बेरगों के सन्तान के मुख से

निकलें-तो इससे ज्यादा। अपने बड़ोंकी [पूर्णभक्ति नमुताभावने होनेवाले अश्वमेध राजमुवादि यज्ञोंमें पाई हुई] वीरता सीर मितहामें धब्बे लगाने वाले श्रीर कीनसे वचन बाकी रहे ?! श्रा हा ?! "विना-यकाले विपरीतवृद्धिः" इस महावाक्य के अनुसार ठीक देखा जाता है कि कलि महाराजके मताप से बुद्धि और वीरता तथा नित्य कर्मकाएडों में प्रेम विपरीत (उलटा) हो गया ?!? तीभी है ऋषि म नियोंको सन्तानो ! और सच्चे ग्रुरवीर पवित्र स-विय-वैत्रयोंके पुत्रो ? ख़ब जरा जागो और विचा-ररूपी आंखने देखो- मोचो कि हमारे ही जैंमे निर्वल मंतान पर दयाके भगडार महर्षि श्रीमनु महाराज ने अपने द्याभाव से अवश्य करने योग्य श्राद्धादि कर्मी की रहा होनेमें कलिकालके समय योग्य और अयोग्य ब्राह्मणादिकोंका किम तरहमे निर्णय करके बतलाया है कि-अन्वेक्टतयूरोधर्मा-स्त्रेतायां द्वापरेऽपरे । जन्येकिष्यमेनृणां युगहासानुहपतः ॥ ८५ ॥ तपःपरंकृतयुगे त्रेतायांज्ञानम्च्यते । द्वापरेयज्ञमेवाह-र्दानमेकंकलीयुगे॥ ८६॥ ल्लर्थात्-सत्ययुग में ज़ौर धर्म, चेतामें ज़ौर, द्वापरमं श्रीर तथा कलियुगमं और । चेतादि यगों में पर्गाकी हीनता (घटती-बढ़ती) होनेसे धर्म सीर सधम की भी विलक्षणता हो जाती है।

colours and nourishment at thier due time, such as"
"spring season" and less in the other seasons similarly
in the times of Sityayuga spirituality and religions
are more Predom mants and very much less in respective Yugos Treta, Dwaper and much less in
Kaliyuga"

अर्थात्-जैमे ऋतुओं में पदार्थोक्षे स्वभाव बदल जाते हैं तैसे ही युगों में भी शक्तियों के फेरफार से पदार्थीका स्वभाव वदल जाता है ज़ीर रस, कस, यक्ति-आकार-उमर और कर्म फल आदि भी युगों में बदल जानेसे बदल जाते हैं। यदापि तपश्चर्या-आत्मञ्चान-यज्ञ और दान वगैरह सब कर्म सत्य आदि सब युगोंमें सदा सेवन योग्य हैं तथापि सत्य-युगर्मे तपञ्चर्या प्रधान (मुख्य) और अत्यन्त फल-दायक है। चेतामें आत्मज्ञान, द्वापरमें यज्ञ और कलियुगर्मे दान ही मुख्य फलदायक है। इसलिये वेद्यास्त्र पठन और उनके अनुसार धर्म कर्म-अनु-ष्ठान करनेमें जो हीनता हुई है वह केवल ब्राह्मणों में नहीं किन्तु सब वर्णाश्रमोंमें कलियुगके प्रभावसे समान ही हो रही है। फिर केंबल ब्राह्मणोंका ही श-धिकार मनुस्मृतिके अनुसार देखा जावे तो किञ्चित् सपने सापकी सोर भी सब लोगोंसे दृष्टि की जावे कि मुभमें विशेष धर्मीकी स्थिति तो किनारे रही

परन्तु मनुष्यमात्रका सदा शाचरणीय सामान्य धर्म भी कोई है या नहीं। किन्तु केवल ब्राह्मणों के ही अधिकार का निर्णय करने पर ओर लगाना और अपनी ओर कुछ नहीं देखना यह बुद्धिमानों और न्यायवर्ती विचारवानींकी रीति नहीं है। क्योंकि श्राद्वादि कर्म करने वाले क्या ब्राह्मण क्या और जातियोंके सब मनुष्यमात्र । अर्थात् सब वेदमता-नुयाइयोंको सत्-धर्मका आचरण अपने वर्णाश्रमके मुताबिक ठोक २ करना चाहिये। जैशा कि-महा-भारत अनुशासन पर्वमें लिखा है कि-न्यायार्जितधनस्तत्व-ज्ञाननिष्ठोजितेन्द्रियः। श्राद्वकृत्सत्यवादीच सत्कर्मामुच्यतेनरः ॥ १ ॥ अर्थातु न्यायरीति से जो धनसंचय करता है, ईश्वरके तत्वज्ञानके विचार मे जिसका निद्यय है, जिसने अपनी इन्द्रियोंको खोटे विषय भौगोंसे रो-काहुआ है अर्थात् गृहस्याध्रमके धर्मोमें दढ स्थित है तथा ब्राह्मदि देव-पितृकर्म जो बदा करता है शीर सत्य बंचन बोलता है तथा इष्टापूर्तादि सत्-कर्म करता है वह मनुष्य सब कोई चाहे किसी भी वर्ण का हो तो जन्म मरणरूप संसारवलेण से कृट

जाता. है। यही श्लोक याज्ञवल्क्यस्मृतिमें है परन्तु क्द भेद है । इस प्रलोक में लिखे बाद्धादि सत्कर्म करने वाले सब मनुष्यों में जी र गुण चाहिये सी वे ही लोग न्यायद्धि से अपने २ में देखें कि उन में जवर लिखे-गुण कितने और कहांतक हैं-तो सो-चने से निश्चय हो जायगा कि इन गुणोंमें से थोड़ा संग भी सब के , ब्राह्म कादि करने वाले सब मनुप्यों में किठनता से प्राप्त हो सकेगा। तो फिर केवल ब्राह्मणों के ही धर्म का निर्णय करने में किठबढ़
होकर प्रवृत्त होना छोर अपनी छोर [कि कैंसे २
कुक्म सेवन करने छोर केसे २ झन्यायों से धन संचय करना छोर शास्त्रोक्त सदाचार किंचित् भी
कभी झाचरण नहीं करना] दृष्टिमान नहीं करनी
यह कीन न्याय छोर बुद्धिमत्ताकी बात है। महा-

यह कीन न्याय और बुद्धिमत्ताकी बात है। महा-यय जी! ब्राह्मशों में तो कोई न कोई कुछ न कुछ वेदशास्त्र पहें हुए और उनके अनुनार अपना धर्म कर्म अनुष्ठान करने वाले शायद मिलही जावें प-रन्त ऐसे मशकर्ता महात्मा को अपनी ओर अपने

साथियोंकी श्रोर दृष्टि करके न्यायसे सोचना चा-हिये कि वे लोग सनातनधर्मको रीति से नित्यक-

संब्य धमं कर्मका अनुष्ठान (चेवन) करना तो जाने दो परन्तु उनके नवीन मतके गुरु के उपदेश किये यन्थों के अनुसार भी कितने संस्कार उन्हों के हुए हैं और होते हैं। और कितना वेद और वेदाङ्गों का तथा और शास्त्रोंका अध्ययन और प्रतिदिनके सन्ध्यादि पंचयज्ञ कर्म कितने किये जाते हैं कि जिन महाग्रयोंको दो चार वेदमन्त्रोंके स्वर सहित गुद्ध पाठमात्र उच्चारण करनेका जान नहीं है तो

उनका अर्थ जानने की तो क्या वात है। तो इन सब ऊपर लिखे वा कहे कारणोंसे यदि विद्वान् स-स्कर्मी पात्र प्राद्यण जहांतक ब्राह्यकर्म करनेके वास्त मेलें तहांतक वे अवश्य खोज करके भी ब्राद्धकर्ममें ताने योग्य हैं –परन्तु जो समयके सनुसार प्रधिक उत्तम अधिकारी पात्र ब्राह्मण न मिले ती धर्मरक्षक महर्षि मनुभगवान्ने अध्याय २ प्रतोक १९८ में --गायत्रीमात्रसारोऽपि वरंविप्रःसुवन्त्रितः। नायंत्रितंस्त्रिवेदोऽपि सर्वाशोसर्वविक्रयो ॥११८॥ अर्थात्-केवल गायत्रीमात्र जानने वाला भी यदि (सुयन्त्रित) शास्त्रनियमित श्रर्थात् स्रभद्दय भ-क्षणादि रहित और व्यभिचारादि कर्मी रहित है तो वह थोड़ा पढ़ाहुआ भी ब्राह्मण समयानुसार अ-त्यन्त ग्रेष्ठ और ब्राद्धादि कर्मोंमें योग्य पूजनीय है। परन्तु (अर्थवित) जो निषिद्ध मद्ममांसादि भक्षण करने वाला और वेंचने वाला है तथा नित्य कर्त-ष्य संघ्योपासनादि कर्म नहीं करने वाला ख़ीर व्य-भिचारी वह यदि वेदवेत्ता महान् परिवृत भी हो तो भी वह श्रेष्ठ नहीं औरन श्राद्धादि कर्मीमें लाने योग्य है। अब विचारपूर्वक देखो कि अन्तमें ्त्री म-हर्षि मनुभगवान् ने कम से कम केवल गायवीमाव जानने वाले मुलक्षण मुपाच येटणव ब्राह्मण को ही श्रीष्ठ मीर श्राद्ध के योग्य सिद्ध किया है। इसलिये महिषं श्रीमन्जीकी खाजा से सत्यन्त विद्वान् धर्मज ब्राह्मणके सभाव में केवल गायत्रीमात्र जानने वाले ज़ीर सदाचारी सुपात्र ब्राह्मण को ही सत्कारपूर्वक

निमन्त्रण देकर शाह्यमें श्रृह्वाचे भोजन कराकर पि-तृयज्ञको चिद्ध करना हम वेदमतानुषायियोंका मुख्य कर्त्तव्य है। सीर जंगल वा म्लेच्छादि देशमें सर्वया ऐसा केवल गायत्रीमात्र जानने वाला भी यदि सु पात्र ब्राह्मण न मिल सके ती-अलाभेब्राह्मणस्यैव कोशःकार्योबदुःप्रिये। तथा=विधायवादर्भबट्न् आसनेपुसमाहितः। प्रेपानुप्रेवसंयुक्त-विधानंप्रतिपादयेत् ॥१॥ महर्षि श्री देवलस्यृति, प्रयात्-सुपात्र ब्राह्मण के ग्रभाव में दर्भी की खोटी प्रतिमार बनाकर उन को ही ब्राह्मणरूप में

कल्पित करके पविच स्नासनों पर बैठाकर शाद्ध के मन्त्रीसे (मैपानुमेष) एष गन्ध-सुगन्ध-धूप दीप नैवेद्यादिकों में सर्थात् गंध (चन्दन) पुष्प धूप दीप भीजनादि को उन कल्पित ब्राह्मणो के प्रति ग्रद्धारे अर्पण करके नाप ही ग्राद्धकर्मका अन्छान पूर्ण करे। यदि वैसा भी न हो सके तो श्रीकात्या-यनस्मृतिके वचनानुसार-आपद्मनम्नीतीर्थेच प्रवासेपुत्रजनमनि । आमन्नाद्वप्रकृवीत भार्यारजसिसंक्रमे ॥ १॥ अनिनरधनीवापि तथैवद्यसनान्वितः।

आमश्राद्व'द्रिज.कुर्याद्व घृष**टस्तुसदैवहि ॥ २** ॥

अर्थात्-आपत्कालमें, तथा अग्नि के न मिल सकनेमें, तीर्थमें प्रवास वानी मुसाफरीमें, पुत्रजन्म के समयमें और रजीधमं में तथा मंक्रान्ति अर्थात् पुरवकालमें "श्रामण्याद्ध" यानी कच्चा चीधा लेकर पितरोंके निमित्त यच्चोपवीत वामपार्थ्व करके "स्व-धा पितृभवः इदं अञ्चं समर्पर्यामि" ऐसा उच्चारण क-रके सुपान चदाचारी गरीब ब्राह्मणके घरमें वह सन्न देकर भाद्धकर्म पुराकरे परन्तु भूद्रजाति हमेशा "आमगाद्ध" करे अर्थात् कच्चासीघा संकल्प करके ब्राह्मणोंको दे। यदि इतना भी न हो सके तो-सर्वोऽभावेक्षिपेदग्नौ गवेदचादथाप्सुवा । नेत्रप्राप्तस्यछोपोऽस्ति पैतुकस्यविशेपतः ॥ १ ॥ महर्षि देवलस्मृति॥ ल्लात्-कुछ भी नहीं हो सके तो भी किंचित कञ्चावा पकाया हुआ भोजन पितरोंके नामसे श-निनमें, अथवा जलमें वा गीको देवे परन्त् पितृकर्म का सोप न करे। ख़ीर यदिमनुष्यदरिद्री (कंगाल) श्रथमर्थ होनेके कारण इतना भी न कर सके तो-वृहन्नारदीय पुराणशास्त्रके वचनानुसार-अथवारोदनंकुर्यात्-अत्युच्चैविजनेवने । दिद्रोहंमहापापी वदेदितिविचक्षण:॥॥ व्हवारदीय पुराग अध्याय २६॥ इस नारदीय वाक्यानुसार श्राद्धके दिन निर्जन

वनमें जाकर "मैं महापापी दिरद्री (कंगाल) हं"

सर्वाभावेवनंगत्वा कक्षमूलप्रदर्शकः ।

भी संकोच करे तो-

पितृकर्मका त्याग न करे। श्रीर यदि रोदन करनेमें

सूर्व्यादिलोकपालानामिदमुच्चै:पठिष्यति ॥५०॥ नमेऽस्ति वित्तं न धनं न चाऽन्यत्, श्राहु-

स्य योग्यं स्वपितृत्रतोस्मि । सप्यन्तु भक्तया पितरो मयैते भुजीततोवहर्मनिमारुतस्य ॥५०॥ श्रीवाराहपुराण श्रध्याय १३ में ॥ अर्थात्-वन में जाकर दोनों भुजाओं को जपर करके नमुता और दीनभावने हाय जोड़कर मूर्यादि लोकपालोंके सन्मुख अपनी कुद्धि दिखाकर उच्चस्वर में कहे कि-हैपितृदेवी ! मेरे पाम इतना अज्ञ, धन तथा अन्य कोई भी श्राद्धोपयोगी-पदार्य कुछ भी नहीं है-इचलिये में अपने पितरोंको केवल नमस्कार पूर्वक प्रार्थना करता हूं कि हे मूर्यादि लोकपालो ! इस मेरी भक्तिरूप प्रार्थना से मेरे पितर तृप्त होकर मुभपर प्रमन्न रहें ॥ इति ॥ समाजी-श्रीमान् पण्डित जी महाराज ? यह म्भे लाप श्रीवरों ने ऐसा न्यायरूव युक्तियुक्त ब्रा-स्मणोंका निर्णय करके वतलाया है कि जिस से सब मुभे कोई भी मन्देह वाकी नहीं रहा और आपत्ति में भी ग्राह्म करनेका ऐसा धर्मशास्त्रीक्त उत्तम सर्व

मान्य मार्ग वतलाया कि वस अब मैं पूर्णकृतार्थ हुआहूं॥ हे प्रिय परमपुज्य परिडतजी ! परब्रह्म परमा-मा ख्राप जैसे धैयंवान् सुधील विद्वान् सत्योपदेशक बाह्म शकी सदा मितिष्ठा यश बढ़ाये और आप श्री-वरोंको सदा प्रसन्न रक्खे कि जिन श्रीवरोंने निता-न्त् परमार्थरूप महान् उपकार करके मेरे छीर व-लिक अन्य मेरे समाजी भाइयों के तथा आस्तिक साधारण सनातनी भाताओंके भी अति कठिन स-न्देह रूप सन्धकारको प्रवत्तयास्त्र प्रमाण और स-काट्य सद्युक्तियुक्त वचनों से ऐसे दूर किया है कि जैसे मूर्यनारायणके प्रखर तेजने संपूर्ण जगत्का अ-न्धकार नाम व हर ही जाता है-इसलिये में इस ब्राद्धविषयमें तो निःसन्देह आप धर्मरक्षकको गुक समभ कर छाप सद्गुक्झोंके चरणकमलों में प्रेम से शिर नवाता हूं। हे प्रभी! मुभपर समा करी ख़ीर मुभको आशीर्वाद देखी !? मनातनी-प्रिय महाशय जी ! मदामुखी भव ? श्रायुष्मान्-भव ! ? इति श्री श्राह्मपित्रमीमांसायां श्राह्मकर्मणि

ब्राह्मणानामधिकाराऽनधिकारनिर्ण-यने समाप्नीयं पष्ठीऽध्याय: ॥ श्रीसाम्बर्शिवार्पणमस्तु ॥ ओ३म्-शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

"ॐ-नमोऽन्तर्यामिणे"

॥ त्र्रथ सप्तमोऽध्यायः ॥ 👕

मेरे प्रिय आधुनिक आर्यंचमाजी महार्ययोंको निम्नदर्शित बाद्धविषयक त्रिशत् (३०) प्रश्नों के शास्त्रमाण युक्तियुक्त उत्तर देनेके लिये प्रार्थना॥

प्रम्न १-स्वा० द्यानन्दजीने बन् १८९५ के सत्यां र्धमकाशमें ''जितने जीवित हों उनके नामचे तर्पण न करे किन्तु जो २ मृराये हों उनके नामचे तर्पण करें" लिखा है चो इचको तुमममाण क्यों नहीं मानते ?। यदि मानते हो तो जीवितोंको श्राह्मतर्पण कहना मिथ्या क्यों नहीं है । यदि कहो कि स्वा० द० ने ऐसा नहीं कहा और न लिखा किन्तु खपाने श्रोधने वालोंने वैंसा बनादिया है, तो क्या तुम में चे कोई भी समाजी महाश्रय वेंद पुस्तक हायमें लेकर श्रयचे कहदेगा कि यह सत्य है। स्रयांत्र स्वान्तानीने नहीं लिखा किन्तु खपाने श्रोधने वालोंने ही मिलादिया ॥

प्रमु २-जय स्थायंत्रेद १८। ११ ४४ ॥ (स्रबंध स्वान्ता स्वान्ताने स्वान्ताने

र्दयुः) मन्त्रांयका अर्थ प्राणवायुमान सूक्ष्मदेहधारी पितर निकक्तके अनुसार सिद्ध हो चुका है तो जी-यित स्यूल देहधारियों में वह त्रर्थ कैसे घट सकेगा। क्या उससे मृतिपतर सिद्ध नहीं हैं! तथा अयर्ववेद १८। २। ४६ (य झाविविगुहर्वन्तरिसम्०) जो पि-

तर बड़े अन्तरिक्ष लोक में प्रवेश करचुके सी क्या तुम्हारे जीवित ही पितर खन्तरिक्ष खाकाशमें मवेश कर सकते हैं ?। यदि नहीं कर सकते तो मृतपि-तरोंका ग्राह तर्पण उक्त मन्त्रसे सिद्ध क्यों नहीं है ?॥ मश्र ६-जब सम्पर्ववेद १८। ३। ४४ ॥ (सम्नि-ष्वात्ताः पितर एह गच्छत)यहां हविष् खानेके लिये उन पितरोंको बुलाया गया है कि जो मरणानन्तर अग्निमें जलाये गयेथे। क्योंकि (यानग्निरेव दह-न्तस्वदयति ते पितरोऽग्निष्वात्ताः) जिनको जलाता हुआ अग्नि चार जाता है वे पितर अग्निष्वास कहाते हैं यह अग्निष्वात्त पदका खर्च शतपथ ब्रा॰ में लिखा है तब वे अग्निप्वास पितर जीवित कैसे हो सकते हैं। इस प्रमाणमें भी मरोंका बाद्ध होना चिद्ध क्यों नहीं है ? क्या तुम्हारे मतमें जीवित ही जलादिये जाते हैं ज़ौर क्या जलजाने पर भी वे लोग जीवित ही बने रहते हैं। यदि ऐसा हो तो दाहकर्म होजाने पर किशी समाजी को क्या जी-वित दिखाओंगे ? ॥ प्र०४ – ऋषर्ववे० १८ । ३ । ७२ (ये ते पूर्वेपरा-गता:) जो पहिले पितर पूर्वकालमें व्यतीत होगये उनके लिये भी तपंश करना चाहिये। क्या इस प्र-माण में मरेहुंगे पितरों का ब्राद्ध तर्पण सिद्ध नही होता ! ग्रीर क्या ऐसा कथन जीवितों में घट सकता है !

प्र- प्र- अवर्ष वे० १८ । ४८ । (मृताः पितृषु चंभवन्तु) मरे हुए पितर पितृयो निमें प्रगट हों उन्हीं के लिये ब्राद्ध तर्पण होता है । क्या यहां मूल- वेदमें मृत शब्द नहीं ? स्त्रीर क्या इसने मरीका ब्राद्ध तर्पण सिद्ध नहीं होता ।॥

मर्व-अथर्व० १८ । ४। ६३ (अधामानि पुन-रायातनो गृहान्०) यहां पार्वणादि मासिकश्राद्धमें पितरों का विसर्जन करके महीनेभर वाद फिर बु-लाना कहा है। सो क्या जीवित पितरोंको तुम म-हीने २ में एकही वार भोजन देते ही? क्या वे ऐसा करने से जीवित रह सकते हैं? यदि हां कहो तो ऐसे कौन हैं ? ग्नीर (नमः पितृभ्यो दिविषद्भ्यः०) अयर्व वे० १८। ४। ८०। दिवि नाम स्वर्गलोक में रहने वाले पितरींको यहां नमस्कार कहागया है। मो क्या जीवित ही समाजियों के पितरस्वर्गमें जाते हैं ? यदि कोई जीवित स्वर्गमें जाते नहीं दीखें तो इसमे मरोंका ग्राह्म करना सिद्ध क्यों नहीं है?॥ प्र0 अ-क्या तुम लोग (अपराह्यः पित्लाम्) इस ग्रतपथ प्रमाणके अनुसार भूखे पिताको भी दो-पहरके बाद ही भोजन दोगे ? ख़ौर मनुष्यके भी-

जनका समय मध्यान्ह लिखा है तो क्या तुम्हारे जीवित पितर मनुष्य नहीं हैं? जब कि मनुष्य हैं तो मनुष्यों और पितरोंका भिन्न समय क्यों रक्खा है? क्या इससे जीवित मनुष्यों से पितरोंका भिन्न होना सिद्धें नहीं ? तया जद ग्रतपय कारड २ । इ ४। में लिखा है कि (तिरद्ववै-पितरो मनुष्येभाः) मनुष्यों से पितर छिपे नाम अट्टश्य होते हैं। सो क्या जीवित सनुष्य पितर सनुष्यों से कभी छिपे नाम प्रदृष्ट रह मकते हैं ? क्या इससे मृतपितरींके लिये श्रद्ध स्पष्ट सिद्ध नहीं है ? एवं श्रतपथमें पिरखदान के क्षाद पीठ फेर लेनालियां है मो क्यातुम जी-वित यितरोंको भोजन परोच कर उनकी छोर पीठ करदेना ठीक सममते और वैसा ही करते हो ?॥ प्रश्न ८-पदि सापके ही मतमें स्वामी द्यानन्द जीने स्वव मंस्कारविधि खदी स० १८४० के पृष्ठ १०४ समावर्तनसंस्कारप्रकरण में लिखा है कि "हाय में जल लेका, अपस्व यानी यच्चोपवीत वामपार्श्वक-रके दक्षिणदियाकी तरफ मुख करके "ॐ पितरः शु-न्धध्वम्" इस मन्त्रसे यह जल पृथ्वी पर छोड़े" सो क्या तुम इससे भी जीवितींकी जलहान मानीगे यदि जीवितों का ही तपंश मानना चाहते हो तो (भूक्ति पर जल छोड़े) को काटकर (पिकाको भूमि में लिटाकर उस के मुख में जल छ ड़े) ऐसा क्यों नहीं बना देते हो ? क्या स्वा० द० के ऐसा लिखने से प्राव भी मरोंका तर्पण मानना फिद्ध नहीं है ? ॥ प्र० टे-संस्कारविधि सं० १८४३ पृ० १९८-गृहास्रम म-वारणमें वलिवेशवदेवविधि-(शोइम् पितृभ्यः स्वधा-विभ्यः स्वधानमः) इस मन्त्रसे एक ग्राम दक्षिणमें

रखनेको लिखा है सो यह ग्रास वा भाग किनको दिया जाता है ? ख़ीर दक्षिणमें क्वों घरा जाता है ? क्या इसमें मृतग्राद्ध मानना सिद्ध नहीं है?॥

प्र० १०-ऋग्वेदादि भूमिकामें स्वा० द० ने "अ-ग्निष्वात्त" का अर्थ अग्निविद्याको जानने वा अ-ग्निसे विशेष कार्य साधन करने वाले खंजनके डाई-वर ख़ादि किया और ख़ागरे शास्त्रार्थ में स्वा० तु-लगीराम आदि भमाजी उपदेशकों ने जलेहुए मुर्दा के परमाणु अर्थ किया इन परस्पर विरुद्ध दोनोंमें कौन अर्थ सत्य और दो में कौन एक मिच्या है? प्र० १३ क्या समाजी लोग ग्रन्निष्वात्त पितरी को वुलानेके समय काले २ अंजनके ड्राईवरींका आ-षाहन करते हैं अथवा पं० तुलसीरामके किये अर्था-नुसार जले हुए मुदिक परमाणु मोंको (अग्निय्वा-त्ताः पितरएह गच्छत चदस्यदस्यदत) महते हैं कि है जले हुए मुद्दिक परमाणुख़ी ? तुम लोग यहां छा-क्रो, जपने २ आसन पर बैठो और भोजन करो त-या भोजनके वाद हमको बहुतसा धन दे जालो। मो वया मुद्कि जले हुए परमाणु आते, आपनींपर बैठते, जीर भोजन करके धन दे जाते हैं। इससे क्या ममाजियों के पितर मुर्दा के जलेहुए परमाणु चिद्ध

नहीं हैं ? ॥ प्र० ९२-सम्बेद भाष्यभूमिकामें स्वा० द० ने प्र-तिज्ञा की है कि हम निहक्त-यतपथादि भाषीन

आषंग्रन्थों के प्रानुक्ल वेदार्थ करते और मानते हैं, फिर अग्निच्वात्त पदका अर्थ शतयय से विसद्ध मन-माना व्याकरण की स्वरप्रक्रिया से भी विरुद्ध किया है-सो मिटवा क्यों नहीं ? और ऐसा करनेसे स्वा० द० की पहिली प्रतिज्ञाका खग्डन क्या नहीं होगवा? इसका तुम क्या जवाब रखते हो ?॥ प्रश्न १३-सत्यार्थ-प्रकोश छपे सन् १८८३ के पृष्ठ ंटं में स्वामी द० जीने ग्राद्धतपंश का अर्थ करके अखीर में कहा है कि यह जीवितों को है मरों को नहीं, फ्रीर फिर ऋषितर्पण पितृतर्पण शिखके इस से म्रागे लिखे मर्थ सिद्ध किये हैं कि-११ ग्यारह प्रकार के पितर ये हैं---नं १-नो परमेश्वर परमात्मा और पदार्थवि-द्यामें निपुण हो वह (शोमसद) नं २-जो अग्नि अर्थात् विद्युदादि के जानने वाले हों वे (ग्रग्निप्वात्त) नं १-जो उत्तम विद्या वृद्धि युक्त उत्तम व्य-वहारमें स्थित हों वे (वर्हिपद्) नम्बर ४-जो ऐश्वयके रक्षक महीपधिके पान करनेसे रोग रहित और अन्य के ऐखर्य रक्षक, औ-पधियों की देकर रोग नाशक हों वे (सोमपा)

पितर हैं। नम्बर ५-जो मादक (नग्रेकारक) श्रीर हिं-भाकारक द्रव्योंको छोड़कर भोजन करते हैं वे (ह-विभेज) पितर ॥

नम्बर ६—जो जाननेके योग्य श्वस्तुके रक्षक स्रीर घृत दुग्धादि खाने पीने वाले हों वे (स्राज्यपा)

पृत दुग्धाद खान पान वाल हाव (आज्यपा) नम्बर ७-जिनका अच्छा धर्म करनेका सुखरूप

समय हो वे (सुकालिन्) पितर हैं ॥ नम्बर ८-जो दुष्टोंको दएड और श्रेष्टोंका पा-

लन करने हारे न्यायकारी हों वे (यम) ॥ नम्बर ं-सन्तानोंके अनु और सत्कारसे रक्षक

व जनक हों वे (पिता)॥

नम्बर १०-जो सन्न स्वीर सत्कारीं से सन्तानींका मान करें वे (माता)॥

नम्बर ११-अपनी स्त्री, भगिनी, सम्बन्धी ख़ीर एक गोचका तथा ख़न्य कोई भद्रपुक्त व वृद्ध हो तो उन्ह मुखको सुरुषक सुद्धाने उत्तम सुन, सुन्दर

उन सबको अत्यन्त श्रद्धासे उत्तम श्रद्धा, बस्ल, सुन्दर पानादि देकर अन्न प्रकार जो तृष्टित करना है वह श्राद्ध व तर्पण कहा जाता है॥ इति ॥

श्रव समाजी महाश्रय यहां पर स्पष्टरूपमे बतावें कि नम्बर एक १ के पितरों में पदार्थविद्या जानने वाले चाहे वह हिन्दू हों या मुसलमान या ख़गरेज,

प्रयथा सभी ही पितर होंगे वा नहीं ?॥

नम्बर २ दूसरेफे पितरोंमें अग्नि और विद्युत्
(यानी विजुली) आदि को समक्तर उससे टेलीग्राम और टलीफोन खादि काम करने व बनानेवारों
तारवास समेरह और अग्नि से रेल का श्रञ्जन तथा

और मधीन वगैरह बनाने व चलाने वाले इद्धिनि-

में पितर होंने या अन्य कोई ? वयों कि इस वक्त अ-

ग्नि और विजलीको ज्यादा समभने व काममें लाने वाले तो ये ही उपरोक्त विलायत के महाश्रय श्रीर हिन्दुस्तानके मिस्त्रो वगैरह हैं ॥ नम्बर ३ में तो श्रंयेजों के चिवाय शीर, कोई होंगे ही नहीं। क्योंकि वे ही १०० में ८८ तक पहें हुए और चायन्समे इस वक्त सबसे बढ़े चढ़े हैं कि जिन बुद्धिमानोंकी राह लेकर व उन्होंके रिवाजकी पसंद करते हुए अपनी समाजिनी लेडियोंको खंगरेजी ले-डिवॉके समान छूट चूमने फिरने खीर जलगों (उ-त्मवीं) में महस्त्रों मनुष्यों के वीच बैठने व लेक्चरारी करनेमें स्वतन्त्रता देकर हमारी भारतवीरांगना श्लोक चनातन पतिव्रत धर्ममर्यादा को तोड़ते हुए स्त्रियोंके परम लज्जारूप आभूपर्णीको अपने ही हाथोंसे खीन रहे हैं कि जिसका नतीजा अब यह निकल रहा है कि वे समाजिनी विदुषियें नियोग और विधवावि-बाह करना मंज्र करके ग्यारह ११ पति तक खश्चम करना चाहरही हैं और दूमरा खमम तो बहुतेरी खान्दानी समाजिनी विधवालों ने किया है विस्क संडित तुलसीरामादि समाजी उपदेशकों ने तो इस निन्दित, व्यभिचाररूप नियोग वा विधवाविवाह पर और भी जोर लगाकर पचकन्याचिर्चादि * छोटे कोटे ट्रैक्ट रचकर मसिद्ध करते हुए उन तप्त वि-दुचियोको मसन्न किया है। बाह ! वाह ! ! ये ही ती

इन आर्थ्याभाषिथों के धर्म हैं !!! अफ्षोस ! स्रीर स्रीर लज्जा ! हे प्रभो ! हे नाय : तू ही भारतवी-रांगनाओं के पतिव्रतधर्म व सनातन आर्थ्यमर्थादाकी रक्षा कर ॥ अस्तु ॥

नम्बर ४ में शायद डाक्टर ख़ीर हकीम ही होंगे। क्योंकि वही लोग ख़ीयिध जानते व दूसरों को ख़ीयिधयें देकर ख़ाराम करते हैं॥

नम्बर ५-में बरावगी, वैष्णव, श्रेव यह होंगे।
क्योंकि इन लोगों के बराबर हिंगाकारक मांच श्रीर
मिदरा श्रादि मादक द्रव्यों से ज्यादा परहेज दूसरों
को नहीं होता॥

नम्बर ६ में तो सम्पूर्ण संसार ही पितर होगा क्योंकि घी दूध सब ही खाते हैं। विलक भंगी च-मार ख़ादि ख़ौर पशु भी दूध पीते हैं। इसिलये घी ख़ौर दूध खाने पीने बाले सब ही इन समाजियोंके "ख़ाउयपा" नाम बाले पितर होंगे॥

"आजया" नाम वाल पितर होग ॥

नम्बर ९ के पितरों में चिर्फ अमीर लोग ही
होंगे। क्योंकि उन्हींका मुखरूप अच्छा चमय जाता है
और नम्बर ६ में तो चिवाय राजाके कोई हो
ही नहीं चकता? क्योंकि दुधें को दण्ड देनेवाला

 इन व्यभिषार प्रचारक निन्दित पुस्तकोका मुखतीड अवाय और सद्युक्तियुक्त ख्रव्हन श्री सनातमधर्मरक्त वि-द्यावायस्पति विद्वद्वर ५० भीमसेन शर्मादि महोपदेशको के रिषत "विधवाविवाहनीमासा" और "पञ्चकन्यायरित्रा-दि" पुस्तकोर्मे देसो ॥ न्यायकारी राजा ही हो सकता है। अब कहिये कि स्वामी जी के लेखानुसार तो संसारभर चाहे कोई जाति हो स्नाप का पितर सर्घात् पिता हुसा स्नीर पुत्र का नाम ही न रहा क्या यह बात यथार्थ है? और इसको छाप मानते हैं कि नहीं। छगर मानते हैं तो वस खबरदार हो जाइये? व झाजसे रिश्तेका नाम मिटा दीजिये क्योंकि जाहिरा देखनेमें स्नगर्चे वह आपका भाई या भतीजा या लड़का है या कोई दूसरी कम कीम है परन्तु उस ने भी दूध पिया है व अभीतक दूध पीता होगा आजरे उस को पिता ही कहिये और फिर अगर आप के समाजियों में से किसी को कोई जाति जंच नीच भली बुरी गाली दे या मारबैठे तो इस का बुरा न मानिये क्योंकि वह भी शायद स्वामी जीके लेखानुसार किसी कि-स्मके वितरीं मंसे आपका वितर जरूर ही होगा और कदाचित् अगर और किसी नम्बर में न भी छाया तो द्रध पीने वाले पितरोंमें तो ख़वश्य ही ख़ावेगा सिवाय इसके अब किसी आदमीकी ताबेदारीमें व-ल्कि जुतातक उठानेमें खापको परहेज न करना चा-

हिये क्योंकि संसार में पितृसेवा ही मुख्य क धर्म है

+ बाह!! स्वामोजीने क्याही अच्छा (जीवित कि.

तरोका) आहु तर्पण कराया। पन्य भाग्य है उन आपु
निक आर्थोंके कि जो सम्पूर्ण संसारभर के मनुष्योंकी अ-

स्रगर स्राप इतने पर कहैं कि पितृशंब्द्वे पिता का सर्य नहीं है तो स्राप ही किहवे क्या होगा ? जरा

स्वामी जीका लेख सत्यार्यमकाश पृ० ८८ पंक्ति २३ वा उन्हींका यजुर्वेदभाष्य अध्याय १८ को देखली जिये। अग्र १४-स० प्र० ५०० के "धनवन्तरये स्वाहा।

अञ्च १४-स० प्र० पृ० १०० में "धनवन्तरये स्वाहा। सहस्रावापृचिवीभ्यां स्वाहा। ॐ सानुगायेन्द्राय नमः।

सहस्थानापृथिवास्या स्वाहा । अ वानुगायन्द्राय नगर। स्रो३म्-चानुगाय यमाय नमः । स्रो३म्-वनस्पतिभ्यो नमः । त्रिये नमः । भद्रकाल्ये नमः । दत्यादि लि-खकर कहा है कि रेती वा पृथिवी ही पर पत्र विद्या-

कर उन पर पूर्विदिशादिके क्रमानुसार उपरोक्त मंत्र पढ़कर अन्नके भाग यानी याम रक्खे, पीछे जो कोई अतिथि हो उम को खिला देवे और नमक मिला-हुआं अन्न अर्थात् दाल भात रोटी शाक वगेरह उ-

हुआं अन्न अर्थात् दाल भात रोटी प्राक वंगैरह उ-ठाकर (६) छै भाग पृथिवीमें धरे ॥ इति ॥ े है प्रिय महाययो ! अव जिद्द और पत्तपात कें पर्दे नेवों से हटाओ और अपने उपदेशकों से पूडो

पर्दे नेंडों से हटाओ और अपने उपदेशकों से पूबो कि स्वार्व द० जीने इन उपरोक्त मन्डोंका अर्थ स्व- एतया क्यों नहीं लिखा ? क्या इस में कोई भेद है क्योंकि और जगह तो स्वाभी जी ने एक ग्रन्ट भी

पना पिता माता समकक्षर उनका अत्यन्त प्रेम य अहारी आहु तर्पण करते हैं। परन्तु न मालूम कि वह समाजी अ-पनी खियोको (स्वा० द० रचित नम्बर ६ के "नाज्यवा" माम बाले पितरोमें समकते व मानते हुए भी) क्या मा-नेंगे वा कहेंगे अर्थात हुए पी राने के कारण अप्रथ्य ही

दम शपनी खियोको पिन-मन्ता में निर्नेते ॥

(43) व्यर्धनहीं छोड़ा है फिर यहां अर्घीका क्यों भोजन करगये ? क्यों सादव ! इन भागोंसे क्या प्रयोजन हे ? म्राप तो विद्वानींका नाम देवता कहते हैं फिर यह भाग किसके ?क्षा वनस्पति और ल्इमी रोटी खाती है या पृथिवी खाने जाती है? ई्या मूर्तिके सामने तो भीग रखनेमें आप को बड़ा होता है और आप पृथिवी जड़ पदार्थको भीग रखते हैं यह क्या सात है जीर फिर अनुवर्धे (लग्जर व केना) स-हित इन्द्र, वरुण, यम इत्यादिके नानोंने रखना और उन को भाग देना यह तो आप सनातन कया ले क्षेठे, खगर पुरानी नहीं है तो किह्ये यम का नाम महां भी हाकिम ही का होगा या नही ? सीर जब गागद वह अनुवरी के सहित आजावेंगे तब कहिये गरीवका क्या हास होगा उस का तो एक हो दिन मे दिवाला नियालता है फिर ये रोज २ का नियम प्र १५-माप तो विद्वानी को ही देवता कहते कहांतक चलेगा ॥ हैं फिर कहिंवे यह भद्रकालो, बनस्पति, जा भए।

हैं फिर कहिंगे यह महकाला, जनरवात, जा नवर इत्यादि भी काई विद्वान् घर र फिर्ने वाल हैं जि-इत्यादि भी काई विद्वान् घर र फिर्ने वाल हैं जि-नहें पृथ्व र भाग देने को बतानाया है, जीर जब वि-द्वान् ही देवता हैं तो यह पन्द्रह सोलह नाम जल-द्वान् ही देवता हैं तो यह पन्द्रह सोलह नाम के साथ हदा जलहदा क्यों, क्या उन विद्वानोक नामके साथ यह भद्रकाली वनस्पति इत्यादिका विश्वानोको रोज है सिवाय इमके इन पन्द्रह सोलह विद्वानोको रोज रोग कहातक कोई खिलावेगा इस पर जगर जाप कहें कि एक २ ग्राम निकालें तो कहिये कि क्या वे एक ग्रामने मन्तुष्ट हो सकते हैं कभी नहीं! सगर आप कहें कि ये ईखर के नाम हैं तो हम कहते हैं कि ईखर एक है एक ही भाग निकालना योग्य है और अगर आप कहें कि उनके अनन्त नाम हैं ती नामान्सार भाग भी अनन्त होना चाहिये फिर ये पंद्रह गोलह ही क्यों ? स्रोर स्रापका ईश्वर निरा-कार है फिर निराकार ईश्वर कैंग्रे इन गाकार प-दार्थी को खावेगा क्या निराकार ईखर को पाञ्च भौतिक प्राणीदी तरह भूंख लगती है ? यदि नहीं कहो तो फिर ये ज्ञापके दिये सब भाग व्यर्थ हैं? अगर्चे हां कही कि ईखर हमारे इस भक्ति को व्या-पक रूप से देखकर प्रसन्न होता है तो ख़ब ख़ाप ही फैंगला करो कि हम मनातनी फ़ौर खाप ममाजि-थों में पक्के (कट्टर) मूर्त्तिपूजक कीन हुए ? प्रश्न १६-(ल्राम्। श्विक्ताः पितरश्वप्रीणिता एका क्रिया द्वर्धकरी मिसद्धा) व्याकरण महाभाष्य के इस प्रमाण से भी मृत पितरोंका तर्पण करना सिद्ध है। तब ऐसे प्रमाण वेदोक्त होने पर भी मरों के थाद्ध तर्पण मानने में तुम क्यों हिचकिचाते हो। क्या इमने मृत पुरुषों के श्राद्ध तर्पण की चिद्धि में बेदादि के जो अनेक प्रमाण दिये हैं उनके लिये तुम्हारा कोई उपदेशक वा पण्डित हाय में वेद पुस्तक लेके अपय कर कह सकेगा कि मृत श्राद्धके

सिये ये **फत्य २ प्रमाण नहीं हैं** ॥

प्रश्न १९-(तृतीयाह प्रद्योरिति यस्यां पितर सामते सथवं० १८। २। ४८) यहां में जपर प्रदाी नामक तीवरा लोक है जिस में पितर लोग रहते हैं। मो क्या तुम्हारे जीवित पितर कहीं आकाश में लटका करते हैं। श्रीर मंत्रमें कहे वे ही पितर हैं जिन के लिये ग्राह्म तर्पण किया जाता है। तब वया इससे जीवितों के ग्राह्म माननेका खरडन नहीं होता ?॥ प्रश्न १८-सिद्धान्त थिरोमणि पुस्तक को स्वा० दं ने प्रामाणिक माना है उसमें लिखा है कि (ततः श्रेषाणि कन्याया यान्यहानितुषोडग । क्रतुशिस्ता-नितुल्यानि पितृभ्योदत्तमसयम् ॥) वया यह सन्या के सर्घ्य में होने वाले कनागत बाह्रों के लिये आ-र्ष प्रमाण नहीं है ?। प्रश्न १८-व्या तुम लोगों ने यह मिच्या कृतर्क नहीं किया है कि राजा कर्ण से चलने के कारण कर्णागत कहाये फिर कनागत अपभंश हो गया। इस से कर्ण राजा के पहिले कनागत श्राह नहीं थे। क्योंकि जब सिद्धान्त थिरोमणि के प्रमाणा-नुसार कन्यागत शब्द से कनागत हुआ कनागत श्चाद्ध सनातन अनादि काल से बिद्ध होने पर तु-म्हारा कृतर्क मिथ्या चिद्ध क्यों नहीं हो गया। क्या अपनी ऐसी २ ऐसी २ मिडवा कल्पनाओं का निर्मल खर्डन ही जाने पर शब भी लिजित नहीं होगे ? ॥

प्रश्न २०-(श्राद्धे घरदः । पाo ४।३। १२ ॥ ম-रदि भवं छारदिकं ब्राह्म) पासिनि आचार्य के व्याकरण का यह मुच है। अर्थ यह है कि शरद् चतुनाम कार्तिक मे हीने वाले श्राद्ध शारदिक कहाते हैं। यहां अन्य ऋतुन्भें के ब्राह्में का विचार कोड़ के शरद् ऋतु के खाम श्राह्मों का अमाण होने से पया इन कनागतों का प्रचार पाणिनिः आचार्यसे भी पहिले खति पाचीन कालने चला निद्ध नहीं हैं।॥ मश २१-यदि तुम्हारा यह मत है कि पुत्र के दिये श्राद्ध का फल पिता को नहीं पहुंच सकताती-मृतानामिहजन्तूनां, श्राद्वचेत्र प्रिकारणम् । जीवतामिहजन्तूनां, वृथापाथेयकल्पनम् ॥ मरे हुए प्राणियों को यदिः ब्राद्ध का फल,मिल चकता है तब जीवित मनुष्य जब मुचार्फिरीमे जावे तय घर के मनुष्य ब्राह्म द्वारा उसकी तृष्ति मार्गमे क्यों नहीं कर सकते। इस नास्तिक चार्वाकंके छीरी ्र तुम्हारे मत में क्या भेद है ? यदि कुछ भेद नहीतो

तुम्हारे मत में क्या भेद है ? यदि कुछ भेद नहीतो तुम भी नास्तिक चिद्ध क्यों नही हुए ? प्रश्न २२-तुम कहते हो कि मरे हुए पितादिको जन्मान्तर मे श्राद्ध तृपंख का फल मिलने का कीई मत्यस मनाख वा उनके हार्यकी रसीद नहीं त्याती

मत्यस मनाण वा र्डनके हार्यकी रचीद नहीं त्याती तो फल पहुँचता है यह के सान लोहें । तर्ब तुमसे पूजा जाता है कि नपने किये शुभाऽर्युभ कमीं का फल जन्मान्तर में त्याने की मिल जाता है इस में क्वा प्रमाण है। क्वा इसमें प्रत्यत्त प्रमाण वा रसीद दिखा सकते हो ? जब नहीं दिखा सकते तो यहां दिखा सकते हो ? जब नहीं दिखा सकते तो यहां

भी चार्वाक नास्तिक का मत (चर्यकृत्वा घृर्गीप-येत्) क्यों नहीं मान लेते हो ? ॥

प्रश्न २३-तुम कहते हो कि मरजाने पर प्रन्य

प्रश्न २३-तुम कहते हो कि मरजाने पर प्रन्य
के किये कर्म का फल प्रन्य को नहीं पहुंच सकता
को किर कोई राजा रईस द्यालाख रुपयों का कि

के किये कर्म का फल अन्य का नहा पहुच सकता तो यदि कोई राजा रईस द्यालाख रुपयों का कि सी खात्र के नाम वा सभा के नाम वसीयत नामा कर जावे कि इस धन से अनावालय, सदावें तो पाठशाला आदि धर्म के अमुक २ काम किये जा-

यां करें, सीर वे काम ठीक र वेसे ही हो तो क्या उन कामों से होने वाले उपकारों का फल उस धन उन कामों से होने वाले उपकारों का फल उस धन दाता की जन्मान्तर में नहीं मिलेगां? यदि कर्ता-द्वाता की जन्मान्तर में नहीं मिले का कमाया धने नहीं श्लोंको मिलना कहो तो उन का कमाया उसको फल न है ख़ीर जिसने वसीयत नामा किया उसको फल न मिले तो क्या ऐसा पुष्य का काम निष्फल होगा?

मिले तो क्या रेसा पुरंप का काम निष्फल होगा ? फिल पहुंचना मानना पड़ा तो उसी कापदे से आ-फल पहुंचना मानना पड़ा तो उसी क्यांदे से आ-द्धादि धर्म करनेके लिये पिता अपने पुचको धनादि द्धादि धर्म करनेके लिये पिता अपने पुचको धनादि सर्वस्त्र से पता है तब पुच कृत आद्धादि, का फल प्रवस्त्र से पता है ति सेलेगा ?॥

ापता का प्यापका कि (ज्ञात्मावे पुवनामाधि)
प्रम २४-जब कि (ज्ञात्मावे पुवनामाधि)
(ज्ञात्मावेजायते पुवः) इत्यादि म्रुति छीर (ग(ज्ञात्मावेजायते) (भाषापुत्र:स्वकातनः) इत्यादि
भीभूत्वेहजायते) (भाषापुत्र:स्वकातनः) इत्यादि
भीभूत्वेहजायते) (भाषापुत्र:स्वकातनः) इत्यादि
स्मृतियों में पुत्र के पिता का सभेद वा एकता दिस्मृतियों में पुत्र के पिता का सभेद वा एकता दिस्मृतियों है तब तुम फूट रूप भेद वा प्रन्य २ होने।का
साइ। क्यों लगाते हो !

उपसंहार में निवेदन

श्रीवर परम पूर्वनीय श्रात्वर प्रिय भूदेव ब्राह्मणी के चरणारविन्दों में सयिनय प्रार्थना यह है कि वे क्रवया इस कराल विश्विकाल समय का ठीक विचार करके अपने बाल-को का वेदानुकूल संस्कार कराकर उन्होंके पूर्ण ब्रह्मचर्यकी रता व पालना करने के लिये ब्रह्मचर्घादि आध्रमों में भेज कर निज सातृ भाषा संस्कृत बिद्या का पूर्णतया अध्ययन (;श्रम्यास) कराने में दिल व जानसे कोशिय क्रें। जिससे: कि वे वालंक सुशितित होकर कम पूर्व कर्मकाग्छ -उपास-ना खीर चान रूपी अमूल्य रहीं से जड़ी हुई तेजीनय स्फ-दिक मालाको धारण करके सदाचार रूपी ज़िरह (कवच) पहिनकर और ब्रह्म बिद्या रूपी संपूर्ण के य नाशक अस लेकर वर्णात्रम धर्मानुसार, अशिवित अनिमन सुतर्कवादी युवको के महामीह रूपव सनातन सन्मार्ग मे गिराने वा-ले शतुकी की निर्मूल करते हुए अवयवी (अंग) रूप च-न्निय-वैर्यादि द्वारा वेदोक धर्न यानी वेदोक देव-पिट्या-दि प्रजी का विधि पूर्वक ठीक र प्रचार कराकर यीच ही इस भारत भूमि यांनी भारत माता का गीमाग्य बढावें और सनातन धर्म को रक्षा करें !!! को तत्वत-इति शान्तिः ३ ॥ ः सु० ब्राह्मणो का दास र्भ गाँउ निवेदक-मोकुलचन्द्र ॥ ठठा ॥ ब्रत्तमान स्थान करांची (सिंधु) ॥ समाप्तम् ॥

नवीन पुस्तकों की सूचना।

१-ग्राद्धिपतृमीमांसा-पद्म पुस्तक देवनागरी क्रजर श्रीर हिन्दीभाषामें छपा है। इसमें वर्त्तमान श्रार्थं समाजियों के जितने (स्राहुव पितृयज्ञ) कर्म में चन्देइ स्रयवा स्राज्ञेप होते हैं उन सर्वोक्ता प्रश्नोत्तरक्रपर्ने श्रत्यन्त प्रवत प्रमाण तथा चट्युक्तियों से ऐसा निवारण किया गया है कि जिनको एक-बार भी आदिसे अन्ततक पढ़नेसे थोही बुद्धि वाला भी आर स्तिक जन ठीक समभ्र सकता है कि (श्राहुव पितृयज्ञ किस कर्मका नाम है, इसका रहस्य क्या है और वेट्रिंट् सच्छास्त्री

में यह कर्म किनका ऋर्यात् जीवितोंका वा मृतपितरोंका द-र्शित है ? । पुस्तककी साईज १८४-२२ है ॥ [वेदसंचाविचार] – इस पुस्तकर्मे वेदादि ग्रन्थ और

निरुक्तादिने ब्राह्मणग्रन्थों का वेदत्व सिद्ध किया है। तथा आर्यसमाजियों के इसके विषद्यमें दिये प्रमाणों का सरहन है

मू०)॥ पुस्तक नागरी भाषामें है।। .(३)-[आधुनिक महर्षिकी पोल)-यह ट्रैक्ट

श्री १००८ परमपूष्य जगत्गुरुश्रीद्वारकाशारदापीठाघीशस्त्रा-मी शङ्कराचार्यजीके सम्मति पत्र समेत देवनागरी अत्तर हि-न्दीभाषामें खपाया गया है । इस में स्वा० द्यानन्द्सरस्वती

(वर्तमान स्नार्यस्मन्योंके ऋषि गुरुजीका संस्कृत स्याकरण में चत्यववत्तार्मे (प्रचात् उनके चत्यवादी होनेर्मे) तथा उनकी स्वरचित ग्रन्थोंके पूर्वापर विरोध द्वानेमें खुब ही पोल खोली व दिखायी गई है कि वह स्वामीनी व्याकरणमें कैसे विद्वान

ये ?। मृल्य)॥ हाकसर्च ऋलग॥ मिलनेका पता-सेक्रेटरी सनातनपर्ने मरहलान्तर्गत गीता-पाठशाला सुम्बई वाजार करांची चिन्ध वैद्यराज नेठ मृलवन्द्र (साध) श्रीगिरिधारीजीके

मन्दिरके पास ठट्टा---सिम्प